नौ-दस

Acc No
3718

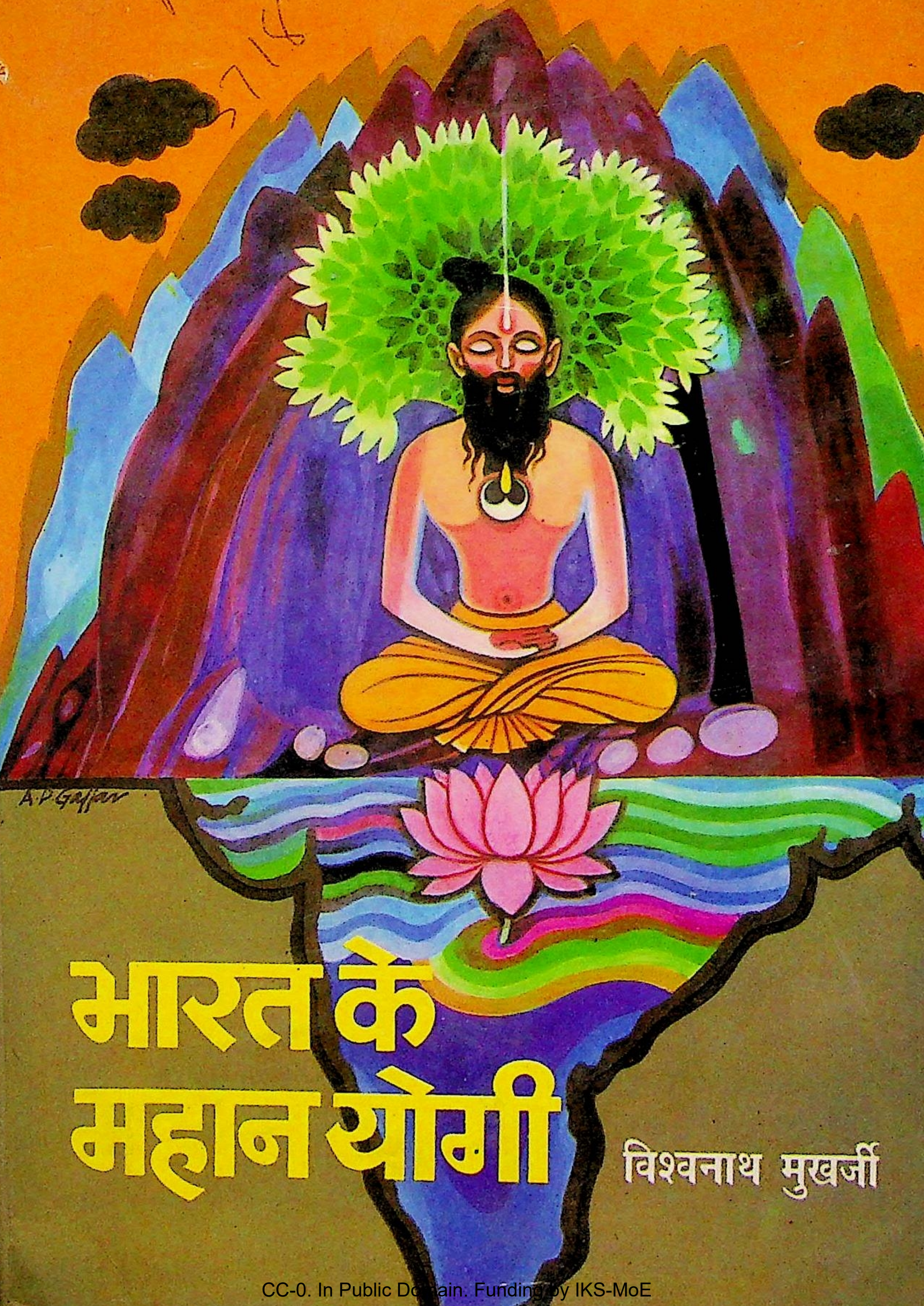

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

भारत के महान् योगी

खण्ड नौ-दस

विश्वनाथ मुखर्जी

स्कैन्ड/ Scanned

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

कथनिका

जनवरी, १९९५ के समाचार पत्रों में प्रकाशित सूचना के अनुसार अब आधुनिक वैज्ञानिकों का ध्यान मानव में निहित उस अपार-शक्ति की खोज की ओर गया है जिसकी खोज भारतीय ऋषि-मुनि लाखों वर्ष पूर्व कर चुके हैं और परम्परा के अनुसार आज के अनेक संत उस साधना को अपनाये हुए हैं। भारतीय योगी इस रहस्य को केवल उपयुक्त शिष्यों को समर्पित करते थे।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह स्वीकार किया है कि मानव में निहित शक्ति से समुद्र सूख सकता है, पृथ्वी मनचाही जगह ट्रांसमिट हो सकती है। ज्वालामुखी तथा भूकम्प शान्त हो सकते हैं। इस पृथ्वी को तहस-नहस किया जा सकता है और सुन्दर भी बनाया जा सकता है।

अब तक इस शक्ति का सम्बन्ध योगियों, तांत्रिकों और जादूगरों से रहा है। योगियों की भाषा में इसे परामानसिक तरंग कहा गया है, सम्मोहकों ने इसे इच्छा-शक्ति अथवा चुम्बकीय-शक्ति कहा है। यह शक्ति साधारण मनुष्यों में सामान्य रूप में है जिसे प्राणायाम और यौगिक क्रियाओं द्वारा बढ़ाया जा सकता है। अगर इस शक्ति को हजार या लाख गुना तक बढ़ाया जाय तो कोई भी व्यक्ति चमत्कार दिखा सकता है। इसे 'सिण्डीरियन' कहा गया है।

सिण्डीरियन दो रूपों में प्राप्त होता है। प्रथम तरंगों और दूसरा किरणों से प्राप्त किया जा सकता है। जिन लोगों ने महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज द्वारा लिखित स्वामी विशुद्धानन्द की जीवनी तथा अन्य रचनाओं का अध्ययन किया है, उन्हें ज्ञात होगा कि विशुद्धानन्दजी सूर्य किरणों के माध्यम से अनेक चमत्कार दिखा चुके हैं। उन्होंने योग को विज्ञान कहा है। सूर्य विज्ञान के वे प्रणेता थे। उन्होंने कहा है कि सूर्य विज्ञान की भाँति चन्द्र विज्ञान, वायु विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान आदि कई प्रकार के विज्ञान हैं जिनकी शिक्षा ज्ञानगंज में दी जाती है।

विशुद्धानन्दजी को यह ज्ञान उनके गुरुओं ने ज्ञानगंज में दिया था।

सिण्डीरियन के बारे में सुश्री सुमन रस्तोगी ने कहा है कि यदि इस शक्ति को १० लाख गुना बढ़ा लिया जाय तो इसके द्वारा अनन्त आकाश में किसी भी सौर-मण्डल में मौजूद ग्रह की समस्त गतिविधियों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ से संदेश भेज सकते हैं। शायद भविष्य में कोई भी रहस्य अछूता नहीं रह जायगा।

यहाँ तक कि इस साधना के जरिये हम आकाश में विचरण कर सकते हैं, सूक्ष्म शरीर धारण कर सकते हैं तथा एक स्थान पर रहते हुए दूरस्थ किसी व्यक्ति से सम्पर्क कर सकते हैं। अगर विज्ञान को इस दिशा में सफलता मिली तो सामान्य लोगों को योगियों का रहस्य ज्ञात हो सकेगा।

प्रस्तुत खण्ड अन्य खण्डों से अलग किस्म का है। नरसी मेहता को स्वयं शंकर भगवान् कृष्ण के दरबार में ले गये थे। उनकी हर मुसीबत में मदद भगवान् देते रहे। इसी प्रकार अन्नदा ठाकुर जो कि स्वप्नदर्शी थे यानी उन्हें भविष्य की जानकारी और निर्देश स्वप्न से ज्ञात होता रहा, वे भी राधा-कृष्ण से सहायता प्राप्त कर चुके हैं।

पाण्डिचेरी की श्रीमाँ की साधना अपने आप में अद्‌भुत है। ओरावित उनकी ऐसी देन है जो विश्व में अपने ढंग का अकेला है। महर्षि अरविन्द के सम्पर्क में आने के बाद उन्हें अपनी साधना के माध्यम से अधिमानस ज्ञान प्राप्त हुआ। महाप्रभु गौरांग के छः गोस्वामियों की देन को नरोत्तम ठाकुर ने सम्पूर्ण बंगाल में प्रचारित कर वैष्णव-धर्म की ध्वजा को स्थापित किया था।

संत कबीरदास केवल समन्वयकारी नहीं थे, बल्कि ऐसे महान् योगी थे जिनके साहित्य की व्याख्या आज भी हो रही है, पर संपूर्ण रहस्य स्पष्ट नहीं हो सका है। वास्तव में वे उच्चकोटि के साधक और क्रान्तिकारी थे। स्वामी विवेकानन्द की तरह योगानन्दजी अमेरिका जाकर वहाँ के लोगों को क्रियायोग का ज्ञान देते रहे जिनके गुरु और गुरु के परमगुरु इस योग के प्रणेता थे।

शेष संतों का चरित्र कम अद्‌भुत नहीं है। कुछ संतों को अपने गुरुओं से ज्ञान प्राप्त हुआ है तो कुछ ऐसे संत हैं जिन्हें ऐशी-शक्ति बचपन में ही ईश्वर से प्राप्त हुई है।

संत-साहित्य के पाठकों को यह पुस्तक अधिक पसन्द आयेगी, ऐसा लेखक को विश्वास है। अन्त में उन लेखकों, संतों के भक्तों का आभारी हूँ जिनसे मुझे प्रेरणा तथा सहायता मिली है। सबसे अधिक आभारी उन पाठकों का हूँ, जिन लोगों ने अपने प्रेम से मुझे सींचा है।

— विश्वनाथ मुखर्जी

अनुक्रम

पृष्ठ

१. भक्त नरसी मेहता २

२. सन्त कबीरदास २०

३. नरोत्तम ठाकुर ३६

४. श्रीम ५०

५. स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ ६६

६. सन्तदास बाबाजी ८२

७. बिहारी बाबा १०२

८. स्वामी उमानन्द ११६

९. पाण्डिचेरी की श्रीमाँ १३८

१०. महानन्द गिरि १५६

११. अन्नदा ठाकुर १७२

१२. परमहंस योगानन्द गिरि १९२

१३. साधु दुर्गाचरण नाग २०८

१४. निगमानन्द सरस्वती २१८

१५. नीब करौरी के बाबा २३२

१६. परमहंस पं० गणेशनारायण २४८

१७. अवधूत अमृतनाथ २६०

१८. देवराहा बाबा २६६

भारत
के
महान् योगी

●

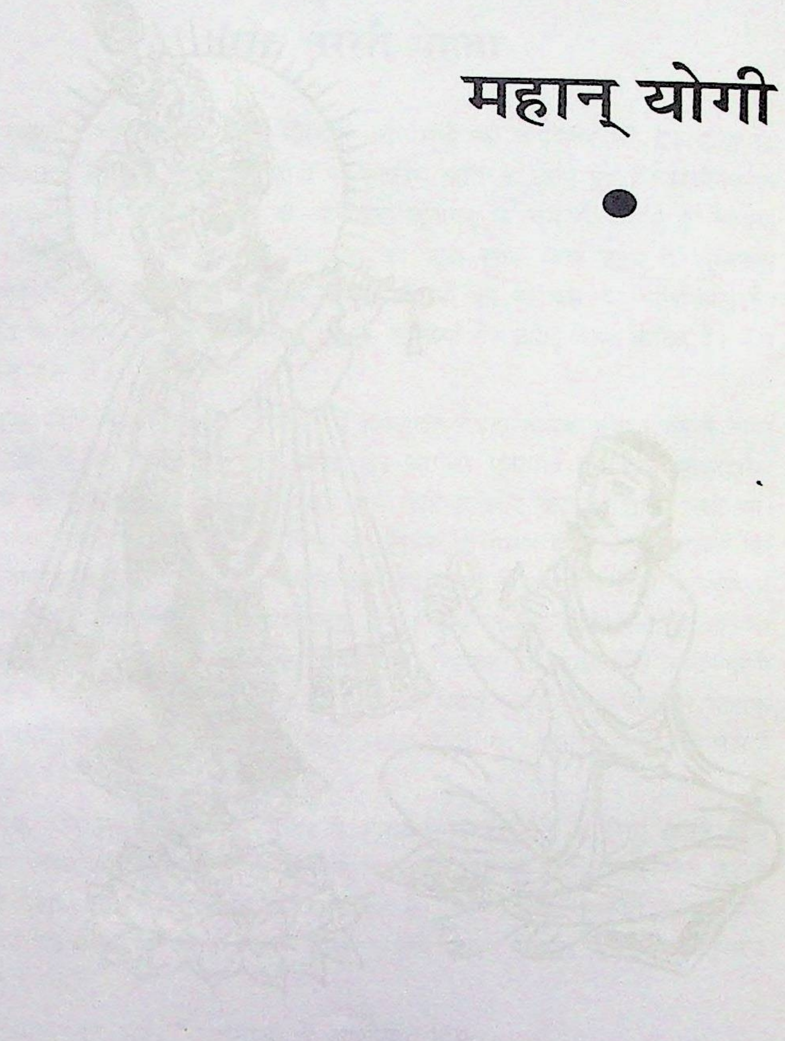

खण्ड ९-१०

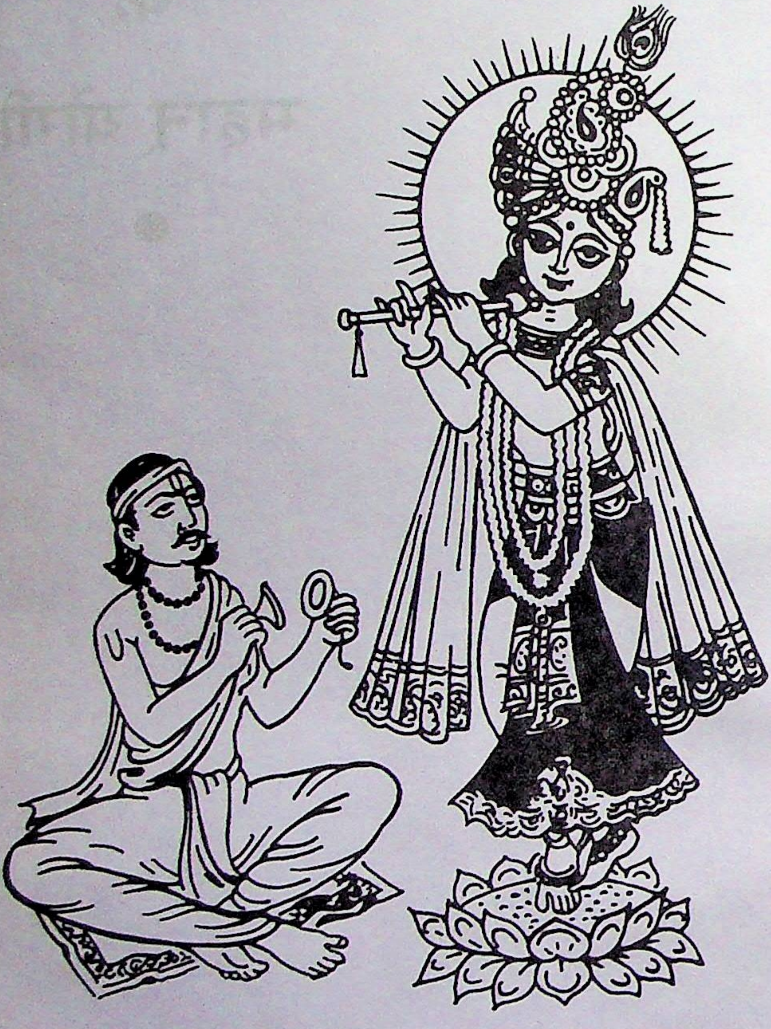

भक्त नरसी मेहता

भक्त नरसी मेहता

गुजरात स्थित गिरनार पर्वत योगियों और संतों की तपोभूमि रही है। भारत के अनेक साधकों को इसी पर्वत की चोटी पर दत्तात्रेय ऋषि के दर्शन हुए हैं। प्राचीनकाल में इस नगर का नाम गिरिनगर था जो आजकल जूनागढ़ के नाम से प्रसिद्ध है। रैवतक पहाड़ी (गिरनार) को जैन तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म-स्थल कहा जाता है। नेमिनाथ और पार्श्वनाथ का मंदिर यहाँ होने के कारण जैनियों का भी यह नगर तीर्थस्थल है। इस पर्वत के शिखर पर चढ़ने के लिए ९९९९ सीढ़ियाँ हैं। चढ़ाई बहुत कठिन है। कम लोग चढ़ पाते हैं।

इसी जिले के कुतियाड़ा तहसील में विष्णुदत्त मेहता नामक एक गुजराती नागर ब्राह्मण रहते थे जो मुंशी का कार्य करते थे। आपका एकमात्र पुत्र था—कृष्णदास। कृष्णदास दो पुत्रों के पिता बने। बड़े का नाम वंशीधर और छोटे का नाम नरसी था। दोनों बालक अभी छोटे ही थे कि पिता का निधन हो गया। दोनों अनाथ बच्चों का लालन-पालन दादी जयकुमारी को करने के लिए बाध्य होना पड़ा। दादी परमवैष्णव थीं। दोनों बच्चों पर दादी का प्रभाव पड़ता गया। बड़ा लड़का वंशीधर ठीक था, पर नरसी बचपन से ही गूँगा था। नरसी को लेकर दादी चिन्तित रहा करती थीं। कभी-कभी सोचतीं कि क्या यह जीवन भर गूँगा ही रहेगा या भगवान् इस पितृ-मातृहीन बालक पर दया करेंगे। उन्हें नरसी का हर वक्त ध्यान रखना पड़ता था। अकेला कहीं नहीं भेजती थीं।

एक दिन जयकुमारी शिव मंदिर में भागवत-कथा सुनने के लिए अपने साथ नरसी को लेकर गयीं। कथा समाप्त होने के बाद वे मंदिर की सीढ़ियों से नीचे उतरने लगीं तो देखा—एक किनारे एक संन्यासी बैठे हैं। उनकी भव्य आकृति ने भक्तमति जयकुमारी को आकर्षित किया। पास जाकर उन्होंने प्रणाम किया। दादी का अनुसरण नरसी ने किया।

"आयुष्मान भव।" स्वामीजी ने आशीर्वाद दिया।

जयकुमारी ने उदास भाव से कहा—"महाराज, यह बालक जन्म से गूँगा है। ऐसा आशीर्वाद दीजिए ताकि बोलने लगे। इस गूँगे को लेकर मैं परेशान रहती हूँ।"

संन्यासी ने नरसी को सिर से पैर तक कई बार देखा और तब मुस्कराते हुए कहा—''माताजी, तेरा यह बालक भाग्यवान है। तेरे वंश का महापुरुष।''

इतना कहने के बाद स्वामीजी ने अपने कमण्डल से जल निकालकर नरसी पर छिड़का और फिर उसके कान के पास मुँह ले जाकर कहा—''बोलो, राधाकृष्ण।''

''राधाकृष्ण।'' नरसी ने कहा।

पौत्र को बोलते देख जयकुमारी खुशी से नाच उठीं — ''मेरा नरसी बोलने लगा ?''

संन्यासीजी के चरणों के पास जयकुमारी ने माथा टेककर प्रणाम किया। उनके चरणों की धूल लेकर वे अपने पौत्र पर छिड़कने लगीं।

''आप मेरे लिए भगवान् हैं। मेरा बेटा कृष्णदास अगर आज जिन्दा होता तो आपको कंधे पर बैठाकर घर ले जाता।''

संन्यासी ने मुस्कराते हुए कहा—''अब घर जाओ, माँ। बालक को 'राधाकृष्ण' नाम रटाते रहना।''

पोते को गोद में उठाकर जयकुमारी घर आयीं। नरसी बोलने लगा है सुनकर घर के लोग प्रसन्नता प्रकट करने लगे। दूसरे दिन संन्यासी को सिद्धा देने के लिए जयकुमारी जब मंदिर आयीं तब देखा—वे वहाँ नहीं थे। स्थानीय लोगों ने बताया—''हमने कभी किसी संन्यासी को यहाँ बैठते नहीं देखा।''

उन दिनों पूरे गुजरात में दूध का व्यवसाय ब्रज के ग्वाले करते थे। नरसी ब्रज के लोगों से ब्रज के बारे में, श्रीकृष्ण और राधा के बारे में प्रश्न करता और उनकी जबानी कहानियाँ सुना करता था। ब्रज के लोगों में एक विशेषता यह थी कि वे श्रीकृष्ण-लीला की चर्चा अधिक करते थे। 'नमस्कार-प्रणाम' के स्थान पर 'राधे-गोविन्द' कहा करते थे। नरसी का बाल-मन श्रीकृष्ण की कहानियाँ सुनते-सुनते आत्मविभोर हो जाता था। ब्रज के बाद द्वारिका कृष्ण की दूसरी राजधानी थी। गाँव में जहाँ कहीं कीर्तन-भजन होता, वहाँ नरसी अवश्य जाते। इस प्रकार बचपन से ही उन पर कृष्ण-भक्ति का रंग चढ़ता गया। कृष्ण ही उनके आराध्य बन गये।

बड़ा भाई राज्य का कर्मचारी था। आर्थिक तंगी नहीं थी। लेकिन नरसी का घुमक्कड़पन घर में किसी को पसन्द नहीं था। सभी यही चाहते थे कि वह लायक बने, घर के काम में हाथ बटाये ताकि वह घर-गृहस्थी के योग्य बन सके। फलस्वरूप भाई-भाभी के अलावा दादी से भी वे झिड़कियाँ सुना करते थे। नरसी मेहता पर इन बातों का असर नहीं पड़ता था। एक प्रकार से वे चिकना घड़ा बन गये थे।

पोते का रंग-ढंग देखकर दादी ने सोचा—अगर नरसी का विवाह कर दिया जाय तो इसका पागलपन दूर हो सकता है। पत्नी के आने पर गृहस्थी की जिम्मेदारी समझेगा

और तब नौकरी या रोजगार में मन लगायेगा। उन दिनों भारत में बाल–विवाह की प्रथा थी। जयकुमारी अपने निश्चय के अनुसार रघुनाथ–पुरुषोत्तम की कन्या मानिक बाई से नरसी का विवाह कर दिया। मानिक बाई न केवल रूपवती थी, बल्कि गुणवती और बुद्धिमती भी थी।

विवाह के पश्चात् जयकुमारी ने कहा—"अब कहीं नौकरी कर ले। घर में बहू आ गयी है । भाई के भरोसे कब तक रहेगा ? अपनी गृहस्थी सम्हालने का गुण मेरे रहते सीख ले। अगर अब भी ध्यान नहीं दिया तो बहुत भोगेगा।"

नरसी मेहता ने दादी के वचन को इस कान से सुना और उस कान से निकाल दिया। पहले की तरह मंदिरों में जाते और कीर्तन में लगे रहते थे।

कुछ ही दिनों के भीतर मानिक बाई यह समझ गयी कि उसकी जेठानी दुरित बाई केवल कलह–प्रिया ही नहीं, बल्कि दिल की बहुत काली है। इस घर में आने के बाद से घर का सारा काम मानिक बाई को करना पड़ता था, फिर भी जेठानी ताना देने से बाज नहीं आती थी। पति के बेकार होने के कारण उन्हें सारी पीड़ाएँ चुपचाप सहनी पड़ती थीं।

जयकुमारी को विश्वास था कि विवाह के बाद नरसी के व्यवहार में परिवर्तन होगा, पर ऐसा नहीं हुआ। देखते–देखते कई वर्ष गुजर गये। इस बीच नरसी एक पुत्र तथा एक पुत्री के पिता बन गये। लेकिन नरसी ने रोजगार या नौकरी के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। नरसी के इस व्यवहार के कारण दादी क्षोभ से असंतुष्ट रहने लगीं। नित्य भला–बुरा कहती रहीं। इस बीच नरसी के जीवन में एक घटना हो गयी।

बड़े भाई के घोड़े के लिए नित्य नरसी जंगल से घास काट कर लाते थे। उस दिन थके–माँदे घास का गट्ठर सिर पर लादे घर आये। आंगन में गट्ठर रखने के बाद उन्होंने कहा—"भाभी, एक गिलास पानी देना। बड़ी प्यास लगी है।"

एक तो देवर के निकम्मेपन से भाभी नाराज रहती है। उसके पति की कमाई पर चार–चार प्राणी खा रहे हैं। ऊपर से नखरे दिखाते हैं। तुरंत वह बोली —"घास काटने के बहाने सबेरे निकल जाते हो तो शाम को घर लौटते हो। इतनी बड़ी गृहस्थी कैसे चलती है, इसकी चिन्ता तुम्हें है ? चार पैसे कमाने की फिक्र नहीं, सिर्फ करताल बजाना और नाचना आता है। खाने को चार–चार प्राणी। शर्म नहीं आती ? अब यह सब घर में नहीं चलेगा। दूर हो जाओ यहाँ से।"

मानिक बाई दूर खड़ी सारी घटना को देख–सुन रही थी। पति की अकर्मण्यता पर उसे भी क्षोभ था। पता नहीं, कैसे पत्थर दिल के आदमी हैं। अपमान की पीड़ा भी इन्हें नहीं सताती। अगर कमासुत होते तो यह सब सुनना नहीं पड़ता।

पानी देने के बदले भाभी जिस ढंग से पेश आयी, उससे नरसी ने अपमानित अनुभव किया। बिना कोई प्रतिवाद किये वे घर से निकलकर जंगल में चले गये।

कंटकाकीर्ण मार्ग से क्रोधित होकर चलने के कारण उनका शरीर लहूलुहान हो गया। कई जगह से रक्त बहने लगा। इस ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया।

चलते-चलते सहसा ठोकर लगने के कारण नरसी के पैर रुक गये। सामने नजर जाते ही उन्हें आश्चर्य हुआ। उनकी आँखों के सामने एक मंदिर था। आखिर इस जंगल में यह मंदिर कहाँ से आ गया ? घास काटने के लिए नरसी अक्सर इधर आते थे, पर आज के पहले इस मंदिर को उन्होंने कभी नहीं देखा। क्या कभी मैं इधर नहीं आया था ? दु:ख और क्रोध के कारण वे अधिक सोच नहीं सके। इतनी दूर भूखा-प्यासा आने के कारण थककर वे वहीं सो गये।

पता नहीं, कब उस सुनसान जंगल में एक दैववाणी सुनाई दी —''वत्स नरसी, उठो! तुम्हारी मृत्यु अभी नहीं होगी। तुम भाग्यवान व्यक्ति हो। श्रीकृष्ण तुम्हारे माध्यम से जगत् का कल्याण करना चाहते हैं ! तुम्हारे माध्यम से लीला करना चाहते हैं। ऐसे देवता जिसके सहायक हैं, उसे किस बात की चिन्ता ?''

इस मधुर वचन को सुनकर नरसी की आत्मा आनन्द से परिपूर्ण हो गयी। जो व्यक्ति अहरह दादी, भाई, भाभी से ताने सुनता आया है, उसे आज प्रथम बार स्नेहपूर्ण वचन सुनने को मिला।

आँखें खोलने पर उसने देखा—साक्षात् शंकर भगवान् खड़े हैं। लोगों की जबानी शंकर भगवान् के बारे में जो कुछ उन्होंने सुना है, ठीक उसी रूप में खड़े हैं। उनके शरीर से निकलने वाली ज्योति से सम्पूर्ण क्षेत्र आलोकित हो उठा है। नरसी को समझते देर नहीं लगी कि वह स्वप्न नहीं देख रहा है। शंकर भगवान् प्रत्यक्ष रूप में दर्शन दे रहे हैं।

भक्ति से गद्गद होकर उसने शंकर भगवान् को साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा—''न जाने किस पुण्य बल के कारण मुझ जैसे व्यक्ति को आपका दर्शन मिला। मैं आपसे कोई वर नहीं चाहता। मुझे अपनी शरण में ले लीजिए।''

आशुतोष भगवान् ने कहा—''तुम जिसके भक्त हो, वही तुम्हें अपनायेंगे। आओ, हम उन्हीं लीलामय की गोपी-लीला देखने चलें। लेकिन हम वहाँ गोपी के रूप में चलेंगे, वर्ना गोपियाँ हमें वहाँ रहने नहीं देंगी। गोपी रूप में हम अपने को छिपा लेंगे।''

यह कहकर शंकर भगवान् ने अपना तथा नरसी का रूप बदल डाला। इसके बाद उन्होंने कहा—''बिना गोपी बने हम श्रीकृष्ण की रासलीला में भाग नहीं ले सकते।''

वृन्दावन रवाना होते समय नरसी ने आश्चर्य के साथ देखा—मंदिर की सीढ़ियों पर उनका स्थूल शरीर पड़ा है और वे सूक्ष्म शरीर में गोपी रूप धारण कर हवा में उड़ते जा रहे हैं।

रासलीला की भूमि पर आने के बाद नरसी ने देखा —शरत्–पूर्णिमा की चाँदनी चारों ओर छिटकी हुई है। मल्लिकादि कुसुमों से वनभूमि सुशोभित है। मन्द–मन्द वायु में श्रीकृष्ण की बाँसुरी के स्वर गूँज रहे हैं। उपस्थित सभी गोपियाँ मुरलीधर के समीप जाने के लिए व्याकुल हैं। कुछ गोपिकाएँ श्रीकृष्ण के साथ नृत्य कर रही हैं।

अपने गोल में दो नयी गोपियों को देखकर शेष गोपिकाएँ चकित हैं। उनकी आँखें एक दूसरे से टकराकर पूछ रही हैं —ये दोनों सखियाँ कहाँ से आ गयीं ? दूसरी ओर श्रीकृष्ण शंकर और नरसी को गोपी रूप में देखकर मुस्करा रहे हैं। ये लोग भी इन गोपियों के साथ नृत्य करने लगे।

रासलीला समाप्त होने के बाद नरसी रूपी गोपी को श्रीकृष्ण ने अपने पास बुलाकर पद–सेवा करने की आज्ञा दी। भगवान् भक्त की सेवा से प्रसन्न होकर बोले—"वत्स, मैं तुम्हारी सेवा–भक्ति से प्रसन्न हूँ। बोलो, क्या चाहते हो ?"

नरसी ने भाव विभोर होकर कहा —"प्रभो, जब आप मिल गये तब मुझे कुछ और नहीं चाहिए। मेरी यही इच्छा है कि जागरण में, शयन में, मरण में, प्रत्येक क्षण में, आपके चरणों का ध्यान करता रहूँ।"

श्रीकृष्ण ने कहा—"प्रिय वत्स, तुम्हारी तरह भक्ति परायण, कामना–वासना–हीन इस जगत् में अन्य कोई नहीं है। आज से तुम सभी ऋणों से मुक्त हो गये। मेरी पूजा मन में करते हुए संसार–धर्म का पालन करते रहना। तुम्हारी सारी जिम्मेदारी आज से मैं ले रहा हूँ। मुसीबत के वक्त मेरा स्मरण करते ही तुम छुटकारा पा जाओगे। लोक–कल्याण के लिए घर–घर जाकर कीर्तन करते रहना।"

इतना कहने के पश्चात् श्रीकृष्ण यमुना में जाकर जल–क्रीड़ा करने लगे। प्रभु की इस लीला को तट पर खड़े नरसी देखते रहे। धीरे–धीरे प्रभात होने लगा और यह सारा दृश्य पल भर में गायब हो गया।

इस दृश्य के गायब होते ही नरसी का हृदय हाहाकार कर उठा और वे मूर्च्छित हो गये। मूर्च्छा भंग होने पर उन्होंने देखा कि वे जंगल में स्थित उसी मंदिर की सीढ़ियों पर पड़े हुए हैं।

तो क्या मैं स्वप्न देख रहा था? सामने तो शंकरजी का मंदिर है। अपने शरीर को गौर से देखने पर लगा— सारे घाव मिट गये हैं। नरसी दौड़कर मंदिर के भीतर गये और शंकर की मूर्ति को प्रणाम करते हुए आँसू बहाने लगे।

दीर्घकाल तक तपस्या करने पर भी साधक को भगवान् के दर्शन नहीं मिलते, उस दर्शन को शंकर भगवान् की कृपा से नरसी ने अनायास प्राप्त कर लिया। अगर भाभी की फटकार सुनकर यहाँ मरने के लिए न आते तो प्रभु का दर्शन कैसे मिलता? लीलामय प्रभु, तुम्हारी माया अपरम्पार है।

मंदिर से चलकर नरसी घर आये तो लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। बड़े भाई ने विस्मय से पूछा —"एक सप्ताह कहाँ गायब रहा ?"

इस प्रश्न को सुनते ही नरसी का रूप बदल गया। वह कभी हँसने, कभी रोने और कभी नाचने लगा। दूसरे ही क्षण दोनों हाथ ऊपर उठाकर 'जय श्रीकृष्ण' कहते हुए कीर्तन करने लगे। घर के लोगों ने अंदाजा लगाया कि नरसी जरूर पागल हो गया है। पिछले एक सप्ताह से गायब था। जरूर कोई घटना हुई है। ऐसे आदमी को घर में रखना उचित नहीं है।

आखिर एक दिन भाई-भाभी ने नरसी के पूरे परिवार को घर से बाहर निकाल दिया। यह भी प्रभु की इच्छा है, समझकर नरसी हमेशा के लिए पैतृक निवास छोड़कर नगर के बाहर की ओर चल पड़े।

मानिक बाई की आँखें सावन-भादों बरसाने लगीं। पति एक छदाम कमाता नहीं, कल क्या होगा? कम-से-कम यहाँ दो कौर भोजन तो मिल जाता था। सिर छिपाने की जगह थी। अब भूखों किसी पेड़ के नीचे रहना पड़ेगा।

मानिक बाई को कल की चिन्ता खाये जा रही थी, पर नरसी के चेहरे पर चिन्ता की कोई रेखा नहीं थी। वे मन ही मन कह रहे थे —प्रभो, दुःख देकर परीक्षा ले रहे हो? कम-से-कम इतनी शक्ति दो कि इसे सहन कर सकूँ। जब आप मेरे मालिक हैं, तब मुझे कोई चिन्ता नहीं है। जय श्रीकृष्ण।

चलते-चलते जब वे लोग थक गये तब एक धर्मशाला में आये। इनकी हालत देखकर रक्षक ने कहा —"यहाँ केवल तीन दिन ठहर सकते हो।"

दो दिन अनाहार में गुजर गये। आज तीसरा दिन है। गाँव रहता तो कहीं से कुछ माँगकर मानिक बाई ले आती। बच्चों का पेट भरता। इस परदेश में भला कोई क्या देगा? भूख से बिलबिलाते बच्चों को देखकर मानिक बाई स्वयं रोने लगी। दूसरी ओर अटल विश्वास के साथ नरसी अपने कीर्तन में मस्त थे। उनकी यह गति देखकर मानिक बाई कड़ी बात कहने ही जा रही थी कि अचानक दरवाजे की साँकल बज उठी। मानिक बाई ने सोचा—शायद धर्मशाला से बाहर चले जाने को कहने के लिए कोई आया है।

इस अनजान जगह में और कौन आ सकता है? कहीं बड़े भैया तो नहीं आये हैं। दरवाजा खोलने पर मानिक बाई ने देखा—कोई अपरिचित व्यक्ति है। पूछा—"कहिये, क्या बात है ?"

अपरिचित व्यक्ति ने कहा—"जय श्रीकृष्ण, जय श्रीकृष्ण।"

प्रभु का नाम सुनते ही नाम जपनेवाले नरसी मेहता उछलकर खड़े हो गये। पास आकर बोले—"भाईजी, मैं आपको पहचान नहीं सका। जबकि आप मेरा और मेरे प्रभु का नाम ले रहे थे। इस गरीब के घर कैसे पदार्पण हुआ? मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

आगन्तुक ने कहा —"मैं जाति का बनिया हूँ। मेरा घर बहुत दूर है। मैं सर्वदा साधु–सन्तों की तलाश में लगा रहता हूँ। उनसे हरि कथा सुनता हूँ। उनकी सेवा करना धर्म समझता हूँ। मार्ग में आपके बारे में सुना तो सेवा में हाजिर हो गया। मैं आपकी सेवा करके धन्य होना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि आप लोग निराश्रय हैं। आप लोगों के रहने लायक एक घर ठीक कर आया हूँ। आपके ठाकुर को भोग देने लायक कुछ अन्न उस घर में रख दिया है। कृपया आप लोग मेरे साथ चलिए और उस घर को आबाद कीजिए।"

नरसी मेहता को समझते देर नहीं लगी कि यह सब उनके प्रभु श्रीकृष्ण की देन है। उस बनिये के साथ उसके ठीक किये भवन में पूरा परिवार आ गया। नरसी का पूजा घर अलग है। भण्डार में खाद्य–सामग्री पर्याप्त मात्रा में है। किसी बात की कमी नहीं है।

इस मकान में रहते हुए नरसी श्रीकृष्ण के प्रेम में मगन हो गये।

+ \+ \+ \+

कुछ दिनों बाद एक अपरिचित व्यक्ति इनके पास आया और कहा—"मैं द्वारिका–दर्शन के लिए जाना चाहता हूँ। कृपया आप एक सौ रुपये की हुण्डी लिख दीजिए। यहाँ के कई महाजनों के पास गया, पर कोई लिखने को तैयार नहीं हुआ। कुछ लोगों ने आपका नाम बताया। अगर आप लिख दें तो मैं द्वारिका तीर्थ दर्शन कर आऊँ।"

नरसी ने सोचा—शायद प्रभु की यही इच्छा है। द्वारिका में मेरा कौन है जो मेरी हुण्डी को स्वीकार करेगा? प्रभो, अगर तुम यही चाहते हो तो यही सही। प्रकट रूप में उन्होंने कहा—"एक सौ रुपये से क्या होगा? मैं एक हजार रुपयों की हुण्डी लिख देता हूँ। वहाँ जाकर श्यामल साह से ले लेना। वे मेरी हुण्डी स्वीकार कर लेंगे।"

उक्त सज्जन द्वारिका सकुशल आ गये। यहाँ के महाजनों से श्यामल साह का नाम पूछने लगे। जब कोई श्यामल साह होता तब लोग पता बताते। सभी लोगों ने कहा कि द्वारिका जैसे छोटे स्थान में इस नाम का कोई आदमी नहीं है। उक्त सज्जन सोचने लगे कि क्या मुझे धोखा दिया गया है? अब इस परदेश में क्या करूँ? घर कैसे जाऊँगा।

अचानक एक व्यक्ति उनके पास आया और पूछा —"क्या आप जूनागढ़ से आये हैं?"

"जी हाँ।"

"नरसी मेहता की हुण्डी साथ लाये हैं?"

"जी हाँ।"

उस व्यक्ति ने कहा—"आज ही मेरे पास जूनागढ़ से नरसी मेहता का एक पत्र

आया है कि उन्होंने मेरे नाम एक हजार की हुण्डी लिखकर किसी के हाथ भेजी है।''

यह बात सुनकर उस व्यक्ति ने कहा—''वह व्यक्ति मैं ही हूँ। क्या आप ही श्यामल साह हैं? यहाँ के लोग तो कहते रहे कि इस नाम का कोई भी व्यक्ति यहाँ नहीं रहता।''

श्यामल साहरूपी श्रीकृष्ण ने कहा—''कोई आदमी रहता है या नहीं, इससे आपका क्या मतलब। मुझे सभी लोग नहीं जानते। आप हुण्डी दीजिए और रुपये ले लीजिए।''

+ \+ \+ \+

नरसी की दो पुत्रियाँ थीं। पहली वाली विवाह के योग्य हो गयी थी। मानिक बाई ने कई बार उसके विवाह के बारे में नरसी से चर्चा की, पर हर बार यही कहते—''यह कार्य मुझसे नहीं होगा। जो कुछ करना है, प्रभु श्रीकृष्ण करेंगे। तुम बेकार परेशान होती हो। मैंने अपना सब कुछ उन्हें सौंप दिया है।''

मानिक बाई मन ही मन यह अनुभव जरूर करती रही कि प्रभु की इच्छा से उनकी गृहस्थी चल जरूर रही है, पर विवाह के बारे में बिना प्रयत्न किये अपने आप कैसे हो जायगा? घर में इतनी रकम भी नहीं है कि सारा इन्तजाम किया जा सके।

एक दिन नरसी सबेरे पड़ोस के एक गाँव में एक भक्त के घर चले गये। वहाँ कीर्तन का आयोजन था। इन्हें विशेष रूप से बुलाया गया था। इसी दिन एक ब्राह्मण इनके घर आया। उसने कहा —''मैं ऊना गाँव के ब्राह्मण श्री रंगधर मेहता का कुल-पुरोहित हूँ। उन्होंने मुझे आपसे यह कहने के लिए भेजा है कि वे आपकी पुत्री को कुलवधू के रूप में अपनाना चाहते हैं। मैं उसे अपने साथ ले जाना चाहता हूँ। आप इसके लिए सारा प्रबंध कर दें।''

मानिक बाई को इस समाचार से प्रसन्नता हुई, पर घर में कुछ भी नहीं है। आखिर खाली हाथ लड़की को कैसे भेजी जाय?

बोली —''मेहताजी घर में नहीं हैं। वे दूसरे गाँव गये हुए हैं। उनके आने तक आपको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।''

इतना कहकर वह भीतर जाकर सोचने लगी कि अतिथि को खिलाने लायक सामान भी घर में नहीं है, फिर लड़की को कुछ सामग्री देकर भेजना पड़ेगा। पता नहीं, कहाँ जाकर बैठ गये हैं।

पड़ोसी के यहाँ से वह चावल, दाल, तरकारी माँग लायी। इस प्रकार अतिथि का स्वागत हुआ। दोपहर को जब नरसी आये तब अतिथि ने उन्हें अपने आने का कारण बताया।

सारी बातें सुनने के बाद आदत के मुताबिक नरसी ने कहा —''चिन्ता करने की जरूरत नहीं। प्रभु इच्छा से सब कुशल पूर्वक निपट जायगा।''

कुल पुरोहित ने कहा —''अगर आप कल बहू को मेरे साथ विदा कर दीजिए तो अच्छा होगा।''

नरसी ने कहा —''कृपया दो दिन आप ठहर जाइये। लड़की की विदाई की व्यवस्था कर लूँ तब आप चले जाइयेगा।''

लाचारी में कुल पुरोहित को रुकना पड़ गया। लेकिन समस्या हल नहीं हो रही थी। निर्धारित दिन को सबेरे पत्नी और पुत्र श्यामलदास को लेकर नरसी मंदिर में आये और भजन गाने लगे —''राखो प्रभु लाज हमारी।''

कुछ देर बाद एक नवदम्पति मंदिर में आया और बोला —''हम लोग अपने एक मित्र के निर्देश पर यहाँ आये हैं। उन्होंने आपकी लड़की के विवाह के लिए हमें उपहार देकर भेजा है। आप यह सब सामग्री ग्रहण करें और अपनी लड़की को विदा कर दीजिए।''

इतना कहने के पश्चात् सारा सामान मानिक बाई के पास रखकर वह दम्पति जैसे आया था, उसी प्रकार चला गया। कृतज्ञता प्रकट करने का मौका नहीं मिला। नरसी ने खड़ा होकर देखा —वह दम्पति हवा में विलीन हो गया था। नरसी समझ गये कि यह मेरे प्रभु की कृपा है। घर वापस आकर उन्होंने उसी दिन कन्या को विदा कर दी।

पग–पग पर प्रभु की कृपा–वर्षा होते देख नरसी का अनुराग उनके प्रति बढ़ता गया। अब वे श्रीकृष्ण के भजन में दिन गुजारने लगे।

पुत्री के विवाह के पश्चात् पुत्र के विवाह की चिन्ता मानिक बाई को सताने लगी। दरिद्रता की चक्की में पीसते–पीसते वह थक गयी थी। घर में एक बहू आ जाय तो कुछ भार हल्का हो जायगा। दूसरे ही क्षण सोचती कि कौन हमारे जैसे दरिद्र परिवार को अपनी लड़की देगा? यहाँ दोनों जून पेट भर भोजन तक नसीब नहीं होता। भगतजी दिन–रात भजन–कीर्तन में लगे रहते हैं। घर की फिक्र ही नहीं करते।

+ \+ \+ \+

गुजरात के भावनगर में नागर ब्राह्मणों की काफी आबादी है। इस राज्य के दीवान मदन मेहता काफी धनी तथा सम्मानित व्यक्ति माने जाते थे। वे अपनी लड़की के लिए योग्य लड़के की तलाश में थे। अपने कुल पुरोहित को उन्होंने जूनागढ़ इसी उद्देश्यं से भेजा। उन्हें यह ज्ञात था कि जूनागढ़ में नागर ब्राह्मणों के नेता सारंगधर हैं। वे इस कार्य में मदद दे सकते हैं। उन्हें अपने यहाँ के योग्य लड़कों की जानकारी होगी। उन्होंने सारंगधर के नाम पत्र लिखते हुए लिखा कि इस दिशा में मेरे कुल पुरोहित की मदद कर दें।

जूनागढ़ आकर कुल पुरोहित कई ब्राह्मण नागरों के घर गये। उनमें से उन्हें एक भी लड़का पसन्द नहीं आया। कोई गूँगा, कोई बहरा, कोई तोतली जबान का और कुछ तो बज्र मूर्ख मिले। कुल पुरोहित के नखरे देखकर सारंगधर नाराज हो गये। उसकी अयोग्यता प्रमाणित करने के लिए वे कुल पुरोहित को नरसी मेहता के घर ले आये।

यहाँ का रहन-सहन और श्यामलदास का रूप-रंग देखकर कुल पुरोहित मुग्ध हो गया। बातचीत पक्की करके वे भावनगर लौट आये। यहाँ आकर उन्होंने मदन मेहता से कहा —''लड़का सर्वगुण सम्पन्न है, केवल गरीब है।''

मदन मेहता ने सोचा —गरीब है तो क्या हुआ? सर्वगुण सम्पन्न तो है।

इस घटना के कुछ दिनों बाद बदले की भावना से सारंगधर ने मदन् मेहता को पत्र लिखा कि आपके कुल पुरोहित कितने योग्य हैं, इसकी जानकारी आपको हो जायगी। उसने नरसी के पुत्र को आपकी लड़की के लिए वर चुना है। नरसी तो भिखमंगा है, जातिच्युत। वैरागियों के साथ रहता है। आपके सम्मान के लायक नहीं है। अच्छा होगा कि अन्यत्र अपने दामाद की तलाश करें।

इस पत्र को पाकर मदन मेहता परेशान हो गये। कुल पुरोहित के घटियापन से वे नाराज हो गये। बात पक्की हो गयी थी, सहसा रिश्ता तोड़ना अशोभनीय होगा। इस प्रकार की अनेक बातें सोचने के बाद मदन मेहता ने नरसी को इस आशय का पत्र लिखा—

मान्यवर, आपके सुपुत्र चि० श्यामलदास के साथ मेरी पुत्री का विवाह अगले माह शुक्ल पंचमी को होना स्थिर हुआं है। कृपया मेरे सम्मान योग्य बरात लेकर आयें। अगर ऐसा करने में असमर्थ हों तो मैं अपनी लड़की का विवाह अन्यत्र करने के लिए बाध्य होऊँगा। नमस्कार।

आपका

मदन मेहता

इस पत्र को पाकर नरसी मेहता चिन्तित हो उठे। अपने प्रभु का स्मरण करते हुए उन्होंने पत्रोत्तर दिया —''श्रीकृष्ण की कृपा से ऐसा ही होगा। आप निश्चिन्त रहें।''

शुभ दिन करताल बजाते हुए कौपीन धारण किये वैष्णवों का दल भावनगर की ओर रवाना हुआ। न बाजा, न पालकी, न घोड़ा। केवल सभी बराती 'जय श्रीकृष्ण' कहते हुए चले जा रहे हैं। जूनागढ़ के लोगों को यह मालूम हो गया था कि नरसी अपने लड़के की बरात लेकर भावनगर जायँगे। बरात की यह दशा देखकर सभी हँसने लगे। बराती हैं या पागल?

भावनगर जब कुछ दूर रह गया तब नरसी तथा साथ आये वैष्णवों ने देखा—एक खुले मैदान में बाजा, हाथी, घोड़ा, पालकी के साथ एक बरात जा रही है। सभी बराती मूल्यवान पोशाक पहने हुए हैं। शायद किसी राजकुमार की बरात है।

एकाएक बरातियों में से एक सज्जन ने आगे बढ़कर नरसी से कहा —"वत्स, मैं तुम लोगों के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। मेरे रहते तुम्हें किस चीज की कमी है ? लो, यह पोशाक तुम अपने लड़के को पहना दो। ये लोग तुम्हारे बराती हैं। अब शान के साथ जाओ।"

कृपासिन्धु की बातें सुनकर नरसी आत्मविभोर हो गये। झट चरण-स्पर्श कर पागलों की तरह श्रीकृष्ण नाम जपते हुए नृत्य करने लगे।

बरात का रंग-रूप देखकर मदन मेहता के होश उड़ गये। इस वक्त सारंगधर मिल जाता तो उसका गला दबा देते। घबराये हुए वे नरसी के पास आकर बोले —"मेरा अपराध क्षमा कर दें। मैं आपके सम्मान के लायक स्वागत करने में अपने को असमर्थ पा रहा हूँ।"

विवाह सम्पन्न हुआ। कन्या-पक्ष ने विवाह की प्रशंसा करते हुए कहा —"जूटी बाई को अच्छा वर मिला है।"

बरात विदा हुई। मार्ग में श्रीकृष्ण मिले। उन्होंने अपना सारा तामझाम वापस ले लिया। बरात जब जूनागढ़ आयी तब लोग नरसी के भाग्य पर ईर्ष्या करने लगे।

+ \+ \+ \+

इसी प्रकार नरसी के नाती का भी विवाह हुआ था। 'भक्तमाल' के रचयिता लालदासजी महाराज ने लिखा है —"उन दिनों नरसी की तरह भगवान् श्रीकृष्ण का अन्य कोई भक्त नहीं था। यही वजह है कि उनकी हर मुसीबत में श्रीकृष्ण नरसी की सहायता करने चले आते थे। नरसी के जीवन में अनेक अलौकिक घटनाएँ हुई हैं जो भक्त-भगवान् की लीला की कहानियाँ बनकर रह गयी हैं।"

नरसी की बड़ी लड़की की ससुराल की स्थिति अच्छी नहीं थी। वह अधिकतर अपने पिता के पास रहती थी। ससुराल में आर्थिक कष्ट था। अपने पुत्र के विवाह के बाद जब वह पुनः ससुराल आयी तब एक दिन सास ने कहा —"बहू, घर की हालत कैसी है, देख रही हो। अपने पिता से कुछ मदद क्यों नहीं माँगती? किसी को भेजकर कुछ मँगवाओ ताकि हम कुछ दिन पेट भर भोजन कर सकें।"

लड़की ने एक आदमी को पीहर भेजा जिसे नरसी ने खाली हाथ वापस कर दिया। यह देखकर सास आग बबूला हो गयी और खूब खरी-खोटी सुनाई। बेटी अपने पीहर की हालत जानती थी। लाचारी में पुनः एक आदमी भेजा कि मेरी कुछ सहायता नहीं कर सकते तो कम-से-कम एक बार आकर देख तो जाओ।

नरसी इस प्रार्थना को अस्वीकार नहीं कर सके। तुरंत बेटी के घर रवाना हो गये। फटे कपड़े, हाथों में करताल और मुँह में श्रीकृष्ण का भजन।

नरसी की इस हालत को देखकर समधी समझ गये कि इस व्यक्ति से कुछ वसूल

नहीं किया जा सकता। जिसकी यह दशा है, वह क्या सहायता करेगा? 'भक्तमाल' के अनुसार लड़की की ससुराल में उनकी घोर उपेक्षा की गयी। एक टूटी झोपड़ी में उनको ठहराया गया।

भक्तों की दृष्टि में झोपड़ी और राजमहल दोनों ही बराबर होते हैं। सास द्वारा की गयी उपेक्षा से लड़की मन ही मन क्षुब्ध हो उठी। बरसात का मौसम था। झोपड़ी में चारों ओर से पानी टपकने लगा।

इसी समय नरसी बेटी के पास आकर बोले —"बेटी, पूजा के कुछ फूल, बताशा और पानी दे जाओ।"

कुछ देर में लड़की सारी सामग्री ले आयी। नरसी पूजा करने बैठे तो मूसलाधार वर्षा होने लगी। पूजा करते हुए उन्होंने कहा —"हे इन्द्र, तुम इतने निष्ठुर हो गये हो कि मेरे प्रभु की पूजन–सामग्री को चौपट करने लगे।"

इतना कहना था कि झोपड़ी पर पानी का गिरना बंद हो गया। शेष स्थानों पर पानी बरसता रहा। यह दृश्य देखकर समधी चमत्कृत हुए, पर उनके मन की भावना नहीं बदली।

भोजन के पश्चात् बेटी ने कहा —"पिताजी, इन लोगों के ताने सुनते–सुनते मैं तंग आ गयी हूँ। पूरा परिवार ही दरिद्र है। आप इन लोगों की कुछ सहायता कर दें। आप यहाँ खाली हाथ आये हैं, देखकर ये लोग निराश हो गये हैं और ताना दे रहे हैं।"

'भक्तमाल' के अनुसार नरसी ने कहा —"मेरे प्रभु के पास क्या नहीं है? तू अपनी सास से पूछ आ कि उसे क्या चाहिए ?"

यह बात सुनते ही लड़की खुशी से उछलती हुई अपनी सास के पास आयी और उनकी जरूरत के बारे में पूछा।

सास ने व्यंग्य भरे शब्दों में कहा —"तेरा बाप क्या दाता कर्ण बन गया है? जिसके तन पर ठिकाने के कपड़े नहीं है, वह हमें क्या देगा। जा, कुएँ की जगत पर कपड़े कचारने के लिए दो पत्थर देने को कह देना। पता नहीं, यह भी दे सकेगा या नहीं ?"

दुखित होकर बेटी अपने बाप के पास आकर सारी बातें बतायीं।

नरसी ने कहा —"तुझे दुखी होने की जरूरत नहीं है, जो माँगेगी, वही मिलेगा। अब तू बता, तुझे क्या चाहिए ?"

लड़की ने कहा —"तुम पहली बार गाँव आये हो, यह बात सभी को मालूम हो गया है। इस गाँव के लोग बड़े गरीब हैं। यहाँ की औरतों को एक–एक नयी साड़ी देने की मेरी इच्छा है।"

नरसी ने कहा —"तेरी इच्छा पूरी हो जाएगी और तेरी सास को दो पत्थर देता जाऊँगा।"

'भक्तमाल' में आगे लिखा है —बेटी के जाने के बाद बड़े कातर भाव से नरसी ने अपने प्रभु श्रीकृष्ण को पुकारते हुए कहा —"भगवन्, मैंने अपने लिए आप से कभी कुछ नहीं माँगा। आप मेरे सम्मान की रक्षा के लिए सब करते आये हैं। इस बार भी मेरी इच्छा पूरी कर दो।"

कुछ देर बाद एक बैलगाड़ी दरवाजे के पास आकर रुक गयी जिसमें नाना प्रकार के कपड़े और सोने-चाँदी के दो पत्थर थे। गाड़ीवान ने कहा —"सेठजी ने इन सामानों की कीमत चुकता करने के बाद कहा कि यह सब सामान यहाँ पहुँचा दूँ। अपना सामान सहेज लीजिए।"

लड़की गाँव के प्रत्येक घर में जाकर साड़ी दे आयी। नरसी ने समधी को सोने-चाँदी वाला पत्थर सौंप दिया। पूरे गाँव में नरसी की प्रशंसा होने लगी। उनकी शक्ति देखकर समधी भी सन्न रह गये।

इस घटना के बाद लड़की हमेशा के लिए अपने पिता के घर चली आयी। यहाँ पिता के साथ वह भी श्रीकृष्ण की आराधना में लिप्त हो गयी।

+ + + +

एक अर्से के बाद बड़ा भाई वंशीधर अपने छोटे भाई नरसी के घर आया। उद्देश्य था —पिताजी का वार्षिक श्राद्ध करना।

वंशीधर ने कहा —"कल पिताजी का वार्षिक श्राद्ध करना है। कहीं अड्डेबाजी मत करना। बहू को लेकर मेरे यहाँ आ जाना। काम-काज में हाथ बटाओगे तो तुम्हारी भाभी को आराम मिलेगा।"

नरसी ने कहा —"पूजा-पाठ करके ही आ सकूँगा।"

इतना सुनना था कि वंशीधर उखड़ गये —"जिन्दगी भर यही सब करते रहना। जिसकी गृहस्थी भिक्षा से चलती है, उसकी सहायता की मुझे जरूरत नहीं। तुम अपना श्राद्ध अलग से अपने इच्छानुसार करना।"

नरसी ने कहा —"नाराज क्यों होते हो, भैया? मेरे पास जो कुछ है, उसी से पिताजी का श्राद्ध कर लूँगा।"

दोनों भाइयों में श्राद्ध के प्रश्न पर झगड़ा हो गया है, नागर-मण्डली को मालूम हो गयी। नरसी अलग से श्राद्ध करेगा, सुनकर नागर ब्राह्मणों ने बदला लेने को सोचा। पुरोहित प्रसन्न राय ने सात सौ ब्राह्मणों को नरसी के यहाँ आयोजित श्राद्ध में आने के लिए आमंत्रित किया। प्रसन्न राय यह जानते थे कि नरसी का परिवार माँगकर भोजन करता है। वह क्या सात सौ ब्राह्मणों को भोजन करायेगा? आमंत्रित ब्राह्मण नाराज हो जायँगे और तब उसे जातिच्युत कर दिया जायगा।

कहीं से इस षड़यंत्र का पता मानिक बाई को लग गया। वह चिन्तित हो उठी। दूसरे दिन स्नान करने के बाद नरसी श्राद्ध के लिए घी लेने बाजार गये। वे उधार में घी चाहते थे, पर किसी भी दुकानदार ने उधार देना स्वीकार नहीं किया। अन्त में एक दुकानदार इस शर्त पर घी देने को राजी हुआ कि बदले में नरसी को भजन सुनाना पड़ेगा। जब वह प्रसन्न हो जायगा तब घी देगा।

भगवान् का भजन सुनाने के लिए नरसी सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं। भजन सुनायेंगे और घी भी लेंगे। नरसी भजन सुनाने में इतने भाव विभोर हो गये कि उन्हें समय का ध्यान नहीं रहा। वे यह भी भूल गये कि यहाँ श्राद्ध के लिए घी लेने आये हैं।

उधर नरसी के रूप में श्रीकृष्ण श्राद्ध का सारा आयोजन करते रहे। सात सौ ब्राह्मणों ने छककर भोजन किया। दक्षिणा में एक-एक अशरफ़ी प्राप्त किया। कहाँ वे आये थे नरसी को अपमानित करने और बदले में सुस्वादु भोजन तथा दक्षिणा में अशरफ़ी पाकर सोचने लगे कि क्या नरसी कोई जादू जानता है?

इधर दिन ढले घी लेकर नरसी जब घर आये तो देखा —पत्नी भोजन कर रही है। उन्हें इस बात का क्षोभ हुआ कि अभी श्राद्ध-क्रिया प्रारंभ नहीं हुई और पत्नी भोजन करने बैठी है। क्रोध को दबाकर उन्होंने कहा —''जरा देर हो गयी। क्या करूँ, कोई उधार घी दे नहीं रहा था। मगर तुम श्राद्ध होने के पहले भोजन क्यों करने लगी?''

मानिक बाई ने कहा —''तुम्हारा दिमाग तो ठीक है? स्वयं खड़े होकर तुमने श्राद्ध का सारा कार्य किया। ब्राह्मणों को भोजन कराया। लोगों के विदा होने पर खाना खाने बैठी हूँ। चलो, तुम भी खा लो।''

पत्नी की बातें सुनकर नरसी समझ गये कि श्रीकृष्ण प्रभु अपने भक्त के सम्मान की रक्षा के लिए यहाँ पधारे थे। मेरे लिए उन्हें कितना कष्ट उठाना पड़ रहा है। पता नहीं, अब कितने दिनों तक यह भार उठाते रहेंगे।

कुछ दिनों बाद एक दिन पति-पत्नी मिलकर भजन गा रहे थे। अचानक मानिक बाई को जाड़ा देकर तेज बुखार आ गया। पत्नी की सेवा करने के बदले वे भजन गाने के लिए दामोदर कुण्ड चले गये।

जब वहाँ से लौटे तब देखा —सुख-दुःख की चिरसंगिनी मानिक बाई उनका साथ हमेशा के लिए छोड़ गयी है। अब तक वही उनके परिवार को सम्हालती रही।

सच तो यह है कि नरसी के लिए मानिक बाई एक बंधन थी। अब दोनों लड़कियों को साथ लेकर वे गाँव-गाँव में, डगर-डगर में घूम-घूमकर प्रभु का गुण गाने लगे।

कृष्णजी कृष्णजी कृष्णजी कहें तो उठो रे प्राणी ।
कृष्णजी ना नाम बिना जे बोलो तो मिथ्या रे वाणी ॥

+ + + +

नरसी भगत पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे, पर आशु कवियों की तरह भजनों की रचना जबानी करते रहे। कहा जाता है कि वे पाँच हजार पद बना चुके हैं जो वैष्णव-साहित्य की अमूल्य निधि है। इन भजनों के आधार पर गुजराती साहित्य में अनेक काव्य ग्रंथ लिखे गये हैं। रास सहस्रपदी, सुदामा-चरित, शृंगारमाला, गोविन्द गमन, सूरत संग्राम आदि ग्रंथों में नरसी के भजनों का प्रभाव है।

नरसी का एक भजन बहुत लोकप्रिय है। इसका उपयोग महात्मा गाँधी किया करते थे —

वैष्णवजण तो तेणे कहिए जो पीड़ पराई जाणे रे ।
पर दुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे॥
सकल लोकमां सहुने वंदे, निन्दा न करे केणी रे ।
वाच काछ मन निश्चल राखे धन-धन जननी तेणी रे॥
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेणे मात रे ।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे ॥
मोह माया व्यापे नहिं जेणे, दृढ़ वैराग्य जेणा मनमां रे ।
रामनाम शुं ताली लागी, सकल तीरथ तेणा पैनमां रे ॥
वर्णलोभी न कपट रहित छे, काम-क्रोध निवार्या रे ।
भणे नरसैयो तेणूँ दरसन करतां कुल एकोतेर तार्या रे ॥

+ + + +

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि जूनागढ़ के नागर-ब्राह्मणों के नेता सारंगधर थे। वे दिल के बड़े कुटिल और स्वार्थी थे। नरसी के स्वभाव, सज्जनता तथा चमत्कारों से प्रभावित होकर लोग उनके प्रति श्रद्धा ज्ञापन करते थे। इससे सारंगधर का महत्त्व घटता जा रहा था।

नरसी में एक विशेषता यह थी कि वे गुजराती समाज के ढेड़ (हरिजन) लोगों से प्रेम करते थे। उन्हें गले लगाते थे। उनके द्वारा आयोजित भजन-कीर्तन में शामिल होते थे। नरसी को जातिच्युत करने पर भी सारंगधर को कोई सफलता नहीं मिली। इससे चिढ़कर उसने एक षड़यंत्र किया।

एक वेश्या को प्रलोभन देकर फुसलाया। उससे कहा गया कि किसी प्रकार उसके चरित्र पर कलंक का दोष लगाओ। चंचला नामक उस कुलटा ने वैष्णवी का रूप धारण किया। करताल बजाती हुई कृष्ण नाम जपने लगी। इस वैष्णवी को देखकर नरसी ने पूछा —"आप कहाँ की रहनेवाली हैं? इधर कहाँ जा रही हैं?"

चंचला ने कहा —"मेरा निवास स्थान प्रभास है। इस समय द्वारिका में अवताररूपी श्रीकृष्ण का दर्शन करने जा रही हूँ। लोगों की जबानी सुना कि आप भी श्रीकृष्ण प्रेमी हैं, इसलिए आपसे मिलने चली आयी।"

यह बात सुनकर नरसी गद्‌गद हो उठे। चंचला ने गौर से नरसी को देखा। गदराये हुए शरीर का आलिंगन करने के लिए वह व्याकुल हो उठी।

दिन के बाद रात्रि का आगमन हुआ। संध्या–आरती के पश्चात् प्रसाद लेकर सभी लोग घर चले गये। मंदिर का वातावरण सुनसान हो गया। केवल चंचला और नरसी रह गये। आधी रात को वैष्णवी पोशाक बदलकर अप्सरा के रूप में चंचला नरसी के सामने प्रकट हुई।

नरसी विस्मय से उस कुलटा को देखते रह गये। उन्हें चकित रूप में देखते देख वह बोली —"मैं आपका मनोहर रूप देखकर मोहित हो गयी हूँ। मुझे रति–सुख देकर मेरी अभिलाषा पूर्ण करें।" कहती हुई वह इनके पास आयी।

नरसी घबराकर पीछे हटते हुए बोले —"सुभगे, तुम वैष्णवी हो, तीर्थयात्रा के लिए निकली हो। कई घंटे के भीतर तुममें यह कैसा परिवर्तन हो गया? तुम देवी से दानवी बन गयी। न जाने कितने जन्मों के बाद तुम्हें यह मानव–तन मिला है। क्षणिक–सुख के लिए मैं नरकगामी नहीं होना चाहता। अच्छा होगा कि तुम अपने घर चली जाओ।"

इस तरह देर तक नरसी उसे समझाते रहे। उनके प्रबोध वचनों का प्रभाव कुलटा पर पड़ा। उसकी काम–वासना कर्पूर की तरह उड़ गयी। तुरंत नरसी के चरणों पर गिरकर अपने दुष्कर्मों के लिए क्षमा माँगने लगी।

प्रश्न करने पर उस कुलटा ने सारंगधर के षड़यंत्र का पर्दाफाश कर दिया। कई दिनों बाद लोगों ने देखा —चंचला ने वेश्यावृत्ति त्यागकर तपस्विनी का रूप धारण कर लिया है। अब नित्य मंदिर में जाकर भजन गाती है।

अपनी असफलता पर सारंगधर जल भुन गये। एक दिन वे कहीं से आ रहे थे तभी उन्हें साँप ने काट लिया। उन्हें भगवान् के भक्त को परेशान करने का दण्ड मिल गया। उनके चीखने चिल्लाने पर आसपास के लोग दौड़ आये। घर के लोग आकर रोने लगे। ओझा–वैद्य को बुलाया गया, पर कोई लाभ नहीं हो रहा था।

नरसी के एक भक्त ने कहा —"हमारे नरसी भक्त तो चमत्कार करते हैं। एक बार उन्हें बुला लो। शायद उनके श्रीकृष्ण सारंगधर को बचा लें।"

लोग नरसी के यहाँ दौड़े। नरसी भक्त समदर्शी थे। वे किसी को अपना शत्रु नहीं मानते थे। वे तुरंत आये और सारंगधर के मुँह में श्रीकृष्ण का चरणामृत उड़ेलकर भजन गाने लगे। थोड़ी देर बाद विष का प्रभाव घटने लगा और सारंगधर को पुनर्जन्म प्राप्त हुआ।

नरसी भक्त के जीवन में ऐसे अनेक चमत्कार हुए हैं। इन सभी चमत्कारों के पीछे उनके प्रभु श्रीकृष्ण सहायता करते रहे।

योग एक प्रक्रिया है, उसमें साधना–तपस्या करनी पड़ती है। नाम जपना एक दुर्लभ मार्ग है। नाम जपकर डाकू वाल्मीकि महर्षि वाल्मीकि हो गये। उच्चकोटि के संत हमेशा लोगों को नाम जपने की सलाह देते हैं।

एक दिन नरसी ने अपने प्रभु के निकट निवेदन किया कि भगवन् अब मुझे अपने चरणों में स्थान दें। कब तक मैं आपको कष्ट देता रहूँगा। सन् १४८७ ई० में आप परलोकवासी हो गये।

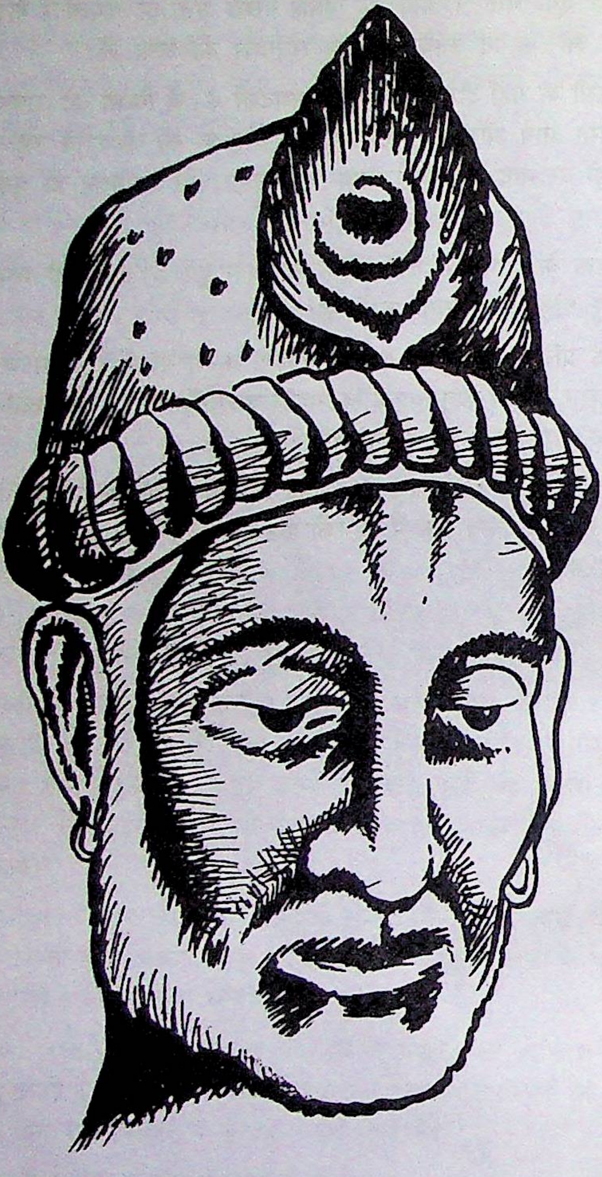

सन्त कबीरदास

सन्त कबीरदास

कबीरदासजी का जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक विवादास्पद घटनाओं से भरा पड़ा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा अन्य अनेक विद्वानों ने लिखा है कि स्वामी रामानन्द ने किसी विधवा ब्राह्मणी को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया था। फलस्वरूप कबीर का जन्म हुआ।[1] कुछ लोग महाराज रघुराज सिंह की रचना से उद्धरण देते हैं—

रामानन्द रहे जगस्वामी । ध्यावत निशिदिन अंतर्यामी॥
तिनके ढिंग विधवा इक नारी। सेवा करै बड़ो श्रमधारी॥
प्रभु इक दिन रह ध्यान लगाई। विधवा तिय तिनके ढिंग आई॥
प्रभुहि कियो बदन बिन दोषा । प्रभु कह पुत्रवती भरि घोषा॥

+ \+ \+ \+

सो सुत लै तिय फेंक्यो दूरी। कढ़ी जुलाहिन तहैं यकरूरी॥[2]

दूसरी ओर डा० रामकुमार वर्मा का तर्क है—"यदि कबीर विधवा के संतान थे तो यह बात लोगों को कैसे मालूम हुई? उसने तो लहरतारा तालाब के पास छिपा दिया था। यदि रामानन्द के आशीर्वाद से हुआ था तो इसे विधवा ने छिपाने का प्रयत्न क्यों किया? रामानन्द के आशीर्वाद से कलंक-कालिमा की आशंका नहीं हो सकती। इस प्रकार कबीर साहब की यह कलंक-कथा निर्मूल सिद्ध होती है।"

आगे आप लिखते हैं—"कबीर पंथियों में अनेक हिन्दू थे जो अपने गुरु को जुलाहा जैसी हीन और नीच जाति से हटाकर वे उनका सम्बन्ध ब्राह्मण जाति से जोड़ना चाहते थे। दूसरी ओर कुछ कट्टर हिन्दू-मुसलमान कबीर की धार्मिक उच्छृंखलता से चिढ़कर उन्हें अपमानित करने के लिए उनके जन्म का सम्बन्ध इस कलंक-कथा से घोषित करना चाहते थे।[3]

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

[2] भक्तमाला, श्री रघुराज सिंह, पृष्ठ ७२२-२४।

[3] कबीर का रहस्यवाद, डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ १६४।

संवत् १६६१ में संपादित श्री गुरुग्रंथ में कबीर के मुसलमान-कुल में जन्म लेने की चर्चा है। केवल यही नहीं, 'सद्गुरु गरीबदासजी साहिब वाणी' से स्पष्ट है कि कबीर ने काशी में सीधे मुसलमान (मोमिन) को दर्शन दे, उसके घर जन्म लिया। गरीबदासजी साहिब की वाणी संवत् १६८० की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति के आधार पर प्रकाशित की गयी है।[1]

कुछ विद्वान कबीरदास को मुसलमान मानते हैं, पर डा० रामकुमार वर्मा का कहना है कि कबीर ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, किन्तु मुसलमान एक बार भी नहीं कहा। वे अपने को न हिन्दू मानते थे और न मुसलमान, बल्कि इन दोनों से परे अपने को योगी कहते थे जो जुगी जाति का पर्याय है।[2]

कबीरपंथी इन सभी धारणाओं को नहीं मानते। उनका कथन है कि कबीर अवतारी संत थे। उनका जन्म मानव शरीर से नहीं हुआ है। नीरू जुलाहा अपनी पत्नी नीमा को ससुराल से विदा करवाकर अपने घर लौट रहा था। लहरतारा के पास प्यास लगने पर नीमा तालाब में पानी पीने गयी। वहाँ कमलदल पर कबीर को अठखेलियाँ करते देख उन्हें उठा लायी।

कबीरपंथियों के इस तर्क को आज के युग में लोग नहीं मान सकते। अब एक प्रश्न उठता है कि जो व्यक्ति कभी पाठशाला नहीं गया—'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गह्यो नहिं हाथ।' किसी तेजस्वी योगी से विधिवत योग की शिक्षा नहीं ली, वह व्यक्ति योगियों की तरह जीवन में अनेक बार योग-विभूति किस शक्ति के आधार पर दिखाता रहा? कबीर के जीवन में जैसी घटनाएँ हुई हैं, वैसी घटनाएँ भारत के महान् योगियों के जीवन में हुई हैं। कुछ लोग उनके गुरु का नाम शेखतकी कहते हैं, पर यह गलत तर्क है। 'दबिस्तान मुहासीन फनी' के अनुसार कबीर अपने आध्यात्मिक गुरु की तलाश में अनेक हिन्दुओं और मुसलमानों के पास गये, पर कोई उनकी ज्ञान तृष्णा को सन्तुष्ट नहीं कर सका । इसी उद्देश्य से वे जौनपुर, मानिकपुर, इलाहाबाद आदि स्थानों का भ्रमण करते रहे।

कबीर में जो यौगिक प्रतिभा थी, निस्सन्देह उन्हें किसी अलौकिक योगी से प्राप्त हुई थी। इस बात की पुष्टि परमहंस योगानन्द के इस कथन से हो जाती है—"क्रिया-योग एक सरल मनःकायिक प्रणाली है जिसके द्वारा मानव-रक्त कार्बन से रहित तथा आक्सीजन से प्रपूरित हो जाता है। इस अतिरिक्त आक्सीजन के अणु जीवन-प्रवाह में रूपान्तरित होकर मस्तिष्क और मेरुदण्ड के चक्रों को नवशक्ति से पुनः पूरित कर देते हैं। अशुद्ध और नीले रक्त-संचय को रोककर योगी तन्तुओं के अपक्षय कम कर देने या रोक देने में समर्थ होता है। प्रगत योगी अपने कोशाणुओं को जीवन-शक्ति में

---

१. सम्पादन-श्री अजरानन्द गरीबदासजी रमता राम, आर्यसुधारक छापाखाना, बड़ौदा।

२. संत कबीर, रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ६६।

रूपान्तरित कर सकता है। एलिजाह, ईसामसीह, कबीर एवं अन्य महापुरुष 'क्रियायोग' या उसके समान ही किसी अन्य प्रविधि के प्रयोग में अवश्य निष्णात थे, जिसके द्वारा वे अपने शरीर को इच्छानुसार प्रकट या अदृश्य कर सकते थे।''[1]

सन्त श्यामाचरण लाहिड़ी इस शताब्दी के महान् योगी हो गये हैं। आपके गुरु महावतारजी ने आपको दानापुर से आकर्षित कर देहरादून में बुलाया था और वहीं क्रियायोग की दीक्षा दी थी।[2] इसका उल्लेख परमहंस योगानन्दजी ने किया है—''भारतवर्ष में महावतार बाबाजी का उद्देश्य रहा है महापुरुषों के जन्म लेने के विशेष प्रयोजन की पूर्ति में उनकी सहायता करना। इस प्रकार शास्त्रीय वर्गीकरण के अनुसार वे एक महावतार हैं। उन्होंने स्वयं बताया है कि संन्यास-आश्रम के पुनः संगठक एवं अद्वितीय तत्त्वज्ञानी जगद्गुरु शंकराचार्य तथा सुप्रसिद्ध मध्ययुगीन कबीर को उन्होंने योग-दीक्षा दी थी।''[3]

परमहंस योगानन्द स्वयं योगी पुरुष थे। आपके गुरु श्री युक्तेश्वर गिरि संत श्यामाचरण लाहिड़ी के प्रिय शिष्य थे। श्री युक्तेश्वर गिरि ने प्रत्यक्ष रूप से अपने दादा गुरु का दर्शन किया था। हिमालय में रहनेवाले अनेक सन्त लम्बी उम्रवाले होते हैं। स्वामी विशुद्धानन्दजी के गुरु महातपाजी १२०० वर्ष के हैं। योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी ने अपनी डायरी में बार-बार कबीर के नाम का उल्लेख किया है जिससे यह बोध होता है कि वे संभवतः कबीर के रूप में अवतरित हुए थे। भले ही कुछ लोग इस तथ्य को स्वीकार न करें, पर योगियों की एषणा-शक्ति पर विश्वास करनेवाले इस सत्य पर आस्था रखते हैं।

कबीर का व्यक्तित्व न केवल विलक्षण रहा, बल्कि उनकी वाणियाँ भी अपने निरालेपन के लिए महत्त्वपूर्ण है। उनके विचारों में बौद्धों, नाथों, सूफियों का प्रभाव है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में वे महान् व्यंग्य लेखक थे। भले ही मुस्लिम परिवार में उनका पालन-पोषण हुआ हो, पर बनारस के हिन्दू वातावरण का उन पर प्रभाव पड़ा था।

''कबीर का जन्म ऐसी परिस्थिति में हुआ था जब विषमताएँ, नैराश्य, विश्वासघात, नृशंसता अपना ढोल पीट-पीटकर हिन्दुओं के दुर्बल मन को भयभीत कर रहा था। समाज में कुत्सित विचार एवं बाह्याडम्बरों का प्राबल्य था। धर्म के ठीकेदार मठाधीश बनकर अनाचार का जीवन व्यतीत कर रहे थे। सामाजिक विषमताओं से तंग आकर निम्न जाति के लोग जाति-परिवर्तन पर उतारू हो गये थे। आर्थिक संकट से सामान्य जनता की रीढ़ टूट गयी थी। भावुक कबीर से समाज की यह दशा देखी न

---

१. एक योगी की आत्मकथा, पृष्ठ ३४३-४४।

२. भारत के महान् योगी, भाग ३।

३. एक योगी की आत्मकथा, पृष्ठ ४३३।

गयी। इस विकट स्थिति के विरुद्ध उनके मानस-जगत में इतनी प्रचण्ड प्रतिक्रिया हुई कि उनकी वाणी तत्कालीन सभी क्षेत्रों को आवृत्त कर सकी। बाह्याडम्बर, असत्य, अनाचार, व्यभिचार, वर्णभेद के प्रति उद्भूत यही प्रतिक्रिया ही कबीर की वास्तविक क्रान्ति की भावना थी।''[1]

+ \+ \+ \+

नीरू और नीमा अपने नवजात शिशु को अपने घर ले आये। सन्तान-हीन दम्पति अपना सम्पूर्ण स्नेह और प्यार देकर उसका पालन-पोषण करने लगे। श्री यूसुफ हुसैन के कथनानुसार नीरू नवजात शिशु के नाम के लिए जब काजी साहब के पास गया तब 'कुरान शरीफ' खोलने पर जो शब्द चुना गया, वह था—कबीर। अरबी में कबीर का अर्थ 'महान्' है। कबीर ने अपने नाम के बारे में कहा है—

कबिरा तू ही कबीरू तोरे नामकबीर ।
राम रतन तब पाइये जब पहले तजशरीर ॥

नीरू को जुगी या कोरी जाति का माना गया है जिसे जुलाहा कहा जाता है। भारत के अधिकांश जुलाहा जिन्हें वयनजीवी या बुनकर कहा गया है, हिन्दू जाति के थे। समाज से उपेक्षित और शासन के अत्याचार से पीड़ित होकर इन लोगों ने मुस्लिम-धर्म को स्वीकार कर लिया था। काशी में कोरी जाति के लोगों ने मुस्लिम-धर्म को अपना लिया था।

पाठशाला जाने लायक उम्र होने पर एक दिन नीरू कबीर को लेकर मौलवी साहब के पास आया। पहले ही दिन मौलवी साहब ने जो पाठ पढ़ाया उसे सुनकर कबीर ने उन्हें 'साम्प्रदायिक' कहा और घर वापस चले आये। इसके बाद फिर कभी मदरसा नहीं गये।

लड़के का पढ़ाई में मन लगता नहीं, देखकर नीरू ने उसे अपने पुश्तैनी काम में लगाया। चन्द दिनों में पिताजी का सहयोग पाकर कबीर ने कपड़ा बुनना और सूत कातना सीख लिया। नीरू के साथ बाजार जाता, सूत खरीदता और कपड़ा बेचता था।

उन दिनों हिन्दुस्तान की हालत खराब थी। लोगों पर खासकर गरीब और हिन्दुओं के साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाता था। लोग अपनी दर्द भरी कहानी भगवान् के निकट सुनाते थे। अपने गम को भुलाने के लिए भजन-कीर्तन तथा कथाओं में भाग लेते थे। भक्तिकाल की सम्पूर्ण रचनाएँ इस बात की साक्षी हैं कि उन दिनों के संत मानव-संवेदना को काव्य के माध्यम से प्रकट करते रहे।

कबीर का किशोर-हृदय मानव-पीड़ा से विचलित होने लगा। अक्सर घर पर जब डाँट पड़ती तब वह घर से चलकर गंगा किनारे घाट पर आता जहाँ भजन-कीर्तन होता

---

[1] मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, पृष्ठ ३४५।

था। कबीर की मति-गति देखकर नीरू-नीमा चिन्तित हो उठे। उन्होंने अनुभव किया कि लड़का स्वधर्म के विपरीत बुतपरस्त बनता जा रहा है।

उन दिनों रामानन्द स्वामी की ख्याति चारों ओर फैल रही थी। वे अपना उपदेश क्षेत्रीय भाषा में दे रहे थे। सबसे बड़ी खूबी यह थी कि वे दु:खी समाज के हृदय को शान्त कर रहे थे। केवल यही नहीं, पिछड़ी जाति को समान अधिकार देकर उन्होंने इन्हें मुसलमान बनने से रोका। उच्च जाति के अलावा शूद्रों को भी उन्होंने अपना शिष्य बनाया। वस्तुतः स्वामी रामानन्द अपने युग के अन्यतम महापुरुष थे। उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन के वे जन्मदाता थे।

इन्हीं दिनों किसी अज्ञात प्रेरणावश कबीर ने निश्चय किया कि वह स्वामी रामानन्द से दीक्षा लेगा। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वे विधर्मियों को कभी दीक्षा नहीं देते। लेकिन इस बात पर उसे विश्वास नहीं हुआ। संन्यासियों के निकट तो सभी धर्म समान हैं। बालक-वृद्ध में भेद नहीं होता। जरूर यह अफवाह है। स्वामी रामानन्द उन दिनों पंचगंगाघाट स्थित अपने मठ में रहते थे जहाँ अनेक शिष्य उनकी सेवा करते थे।

कबीर ने गुपचुप रूप से पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि स्वामीजी नित्य ब्राह्म मुहूर्त में गंगा-स्नान करने जाते हैं। किशोर-बुद्धि या भवितव्य के कारण उसने सोचा कि जब स्वामीजी सबेरे स्नान करने के लिए आयेंगे तब उनसे मिलकर अपनी बात कहेगा। कबीर को इस बात की जानकारी हो गयी थी कि रामानन्द स्वामी बहुत ही उदार और समदर्शी हैं। उनके बारे में कुछ लोग व्यर्थ का अपवाद फैलाते हैं। वे अछूतों के यहाँ जाने में संकोच नहीं करते। जब सामान्य ढंग से उनसे मुलाकात नहीं हुई तब वह एक दिन रात गये पंचगंगाघाट की सीढ़ी पर आकर सो गया।

उसे विश्वास था कि स्वामीजी जब सबेरे स्नान के लिए आयेंगे तब उनकी खड़ाऊँ की आवाज सुनते ही वह जाग जायगा और तब उनसे अपना निवेदन करेगा।

दूसरे दिन भोर के समय स्वामी रामानन्दजी स्नान के लिए सीढ़ियों से नीचे उतर रहे थे कि अचानक एक चीख गूँज उठी। स्वामीजी समझ गये कि उनका खड़ाऊँवाला पैर किसी सोते हुए व्यक्ति पर पड़ गया है। वे तुरंत बैठ गये और घायल को उठाकर उसके मस्तक को सहलाने लगे। भरपूर वजन शरीर पर पड़ने के कारण कबीर को सम्हलने में जरा समय लगा। फिर कराहते हुए उसने स्वामीजी के चरण पकड़ लिए।

स्वामीजी के मुँह से अचानक निकला—''राम-राम कहो बेटा। राम-राम। सब कष्ट दूर हो जाएगा।''

कबीर को मुँह माँगी मुराद मिल गयी। स्वामीजी के स्पर्श से उसे नया जीवन मिला। कबीर की सुप्त अतीन्द्रिय शक्ति ने राम-नाम जपने को बाध्य किया। क्रमशः राम-नाम उसके मन तथा मस्तिष्क में अपना प्रभाव जमाने लगा।

जो लोग कबीर को मुसलमान मानते हैं, उन्हें भी स्वीकार करना पड़ेगा कि नाम जपने का प्रभाव प्रत्येक जाति और धर्मवालों पर समान रूप से पड़ता है। निस्सन्देह कबीर हिन्दू के औरस थे अन्यथा मुस्लिम परिवार में पालित होने पर भी हिन्दू-संस्कार से प्रभावित न होते। यहाँ तक अपनी रचनाओं में भी राम-नाम की महिमा का वर्णन उन्होंने किया है।

स्वामी रामानन्द को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उनका कोई शिष्य मुसलमान जुलाहा है। पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि नीरू जुलाहे का पुत्र कबीर अपने को उनका शिष्य कहता है। उसे बुलाकर स्वामीजी ने पूछा—"क्यों बेटा, तुम्हें मैंने शिष्य कब बनाया? मुझे तो स्मरण नहीं हो रहा है। इस तरह असत्य का प्रचार क्यों कर रहे हो?"

कबीर ने कहा—"मेरी इच्छा थी कि आपसे दीक्षा लूँ, पर कहीं आप विधर्मी को दीक्षा न दें, इसलिए आपके चरणों का सहारा लिया। आपके चरण-स्पर्श से मुझे मंत्र मिल गया। याचक बनकर माँगने की आवश्यकता नहीं हुई। अब आप चाहें तो अपना लें या ठुकरा दें, इसे भी आपकी कृपा समझकर स्वीकार कर लूँगा।"

स्वामी रामानन्द ने मुस्कराते हुए कहा—"तुम्हारी भक्ति देखकर मुझे आत्म संतोष ही नहीं हुआ, बल्कि एक नयी प्रेरणा मिली। शिष्य के रूप में तुम मेरे निकट प्रिय बन गये। अब आगे से समाज से उपेक्षित सभी लोगों को दीक्षा दूँगा। इससे समाज का कल्याण होगा। मेरा आशीर्वाद सर्वदा तुम्हारी रक्षा करेगा। खूब राम-नाम जपो। नाम जपने से वाल्मीकि जैसे डाकू भी महान् संत बन गये जिनकी राम कथा से सारा संसार प्रभावित है। भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे।"

इस घटना के बाद से स्वामी रामानन्द ने उच्च श्रेणी के लोगों के अलावा नीच श्रेणी के लोगों को अपना शिष्य बनाना प्रारम्भ कर दिया। सर्वश्री अनन्तानन्द, कबीर, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, पीपा, भवानन्द, रैदास, धन्ना, सुरसुरी, सेना, सदना आदि उनके शिष्य थे। इनमें जुलाहा, चमार, जाट, दर्जी, कसाई, राजपूत आदि जाति के लोग थे। रामानन्द के समन्वयवाद ने समाज में अद्‌भुत क्रान्ति की।

इसमें कोई संदेह नहीं कि गुरु के प्रति कबीर की असीम भक्ति थी। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से अनेक बार महसूस किया था कि मुसीबत वक्त उनके गुरु उनकी रक्षा करते हैं। अपने एक पद में गुरु के बारे में कहते हैं—

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजन हार।
सुरती सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार॥
कबीर ते नर अंध हैं, गुरु के कहते और।
हरि रुठे गुरु ठौर हैं, गुरु रुठे नहीं ठौर॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले तो भी सस्ता जान॥

+ \+ \+ \+

श्री जी०एच० वेस्टकाट ने लिखा है—''कबीर की सत्यवादिता तथा सामाजिक रूढ़ियों के प्रति उनके अनादर के फलस्वरूप चारों ओर उनके दुश्मन खड़े हो गये। कबीरपंथियों की मान्यता के अनुसार यह शेखतकी ही थे जिन्होंने मुसलमानों की भावनाओं को स्वर दिया। यह प्रसिद्ध पीर बादशाह सिकन्दर लोदी के पास पहुँचा और उसने कबीर पर आरोप लगाते हुए शिकायत की कि वह अपने आपको दैवी गुणों से सम्पन्न बतातां है। मेरी आपसे दरख्वास्त है कि ऐसे जुर्म के लिए काफिर को सजा-ए-मौत देनी चाहिए।''

पीर के कथन से सहमत होकर बादशाह ने फरमान निकाला कि कबीर को पकड़कर दरबार में हाजिर किया जाय।

कबीर को पकड़कर लानेवाले लोग उन्हें मनाकर दरबार में ले आये। मिन्नत करने में सिपाहियों को देर हो गयी थी। शाम के वक्त कबीर को बादशाह के सामने पेश किया गया।

कबीर बिना बोले, चुपचाप खड़े रहे। शाही दरबार में बादशाह के सामने आने पर हर कोई सलाम करता है, पर कबीर को ऐसा न करते देख काजी क्रोध से चीख उठा—''अरे काफिर, तू बादशाह सलामत को सलाम क्यों नहीं करता?''

कबीर ने शान्त भाव से कहा—''जो दूसरों का दुःख दर्द जानते हैं, वे पीर होते हैं। बाकी तो सब काफिर हैं।''

बादशाह ने पूछा—''मैंने हुक्म दिया था कि सबेरे तक यहाँ हाजिर हो जाना। तुम उस वक्त क्यों नहीं आये?''

कबीर ने कहा—''मैं एक नजारा देखने में अटक गया था।''

बादशाह ने गुस्से से पूछा—''वह ऐसा कौन-सा नजारा हो सकता है जो सुलतान की हुक्मउदूली करने को मजबूर करे। बोलो?''

कबीर ने जवाब दिया—''मैंने सूई की नोंक से भी बारीक छेद से एक कारवाँ गुजरते देखा।''

बादशाह ने कहा—''तुम झूठे हो।''

कबीर ने कहा—''ऐ सुलतान, स्वर्ग और नरक के बीच कितना बड़ा अंतर है। सूरज और चाँद के बीच अन्तरिक्ष में अनगिनत हाथी और ऊँट समाये हुए हैं और यह सब एक आँख की पुतली की नोंक से देखे जा सकते हैं जो कि सूई के छेद से भी छोटी है।''

यह जवाब सुनकर सिकन्दर लोदी ने प्रसन्न होकर कबीर को छोड़ दिया। लेकिन इस आरोप से मुक्त होने पर भी उन्हें मुक्ति नहीं मिली। सनातनी ब्राह्मण कबीर की कार्यवाही से काफी चिढ़े हुए थे। उन लोगों ने इन्हें अधार्मिक ही नहीं कहा, बल्कि

इनके चरित्र पर दोष लगाते हुए एक बुरे चलन की औरत से मिताई की अफवाह फैलायी।

पुनः बात सुलतान के पास पहुँची। कबीर बन्दी के रूप में पेश किये गये। इनकी सफाई पर बिना ध्यान दिये सुलतान ने इन्हें प्राणदण्ड की सजा दी।

कबीर को सांकल से बाँधा गया और एक नाव पर बैठा दिया गया। इसके बाद नाव को पत्थरों से भर दिया गया ताकि कबीर नाव डूबने के साथ ही जल समाधि ले लें। इन्हें नदी में जिन्दा डुबो देने की सजा दी गयी थी। नाव तो डूब गयी, पर कबीर एक चीते की खाल पर बैठे एक बच्चे के रूप में नदी में से तैरते हुए ऊपर आ गये।

यह दृश्य देखकर राज्यकर्मचारी दंग रह गये। पुनः कबीर को पकड़ा गया। अब उन्हें जिन्दा जला देने का प्रयत्न किया गया। इस कार्य में भी लोगों को असफलता मिली। सुलतान के पास समाचार भेजा गया कि कबीर कोई जादूगर है। इसे अवश्य पिशाच-सिद्धि प्राप्त है। बादशाह की ओर से आदेश हुआ कि उसे हाथी के पैरोंतले कुचल दिया जाय।

लोग एक पागल हाथी को ले आये। कबीर के सामने उसे खड़ा किया गया। जब तक लोग इधर-उधर भाग खड़े हों, उसके पहले ही हाथी और कबीर के बीच एक सिंह न जाने कहाँ से पैदा हो गया। इस प्रकार कबीर को मार डालने की सारी योजनाएँ नाकाम साबित हुईं।

कुछ फारसी और अरबी की पुस्तकों में भी कबीर के बारे में इस तरह की घटनाओं का उल्लेख है। कबीरदास आजीवन समाज के विभिन्न लोगों से उत्पीड़न सहते रहे। उन्हें अनेक प्रकार के शारीरिक दण्ड दिये गये हैं। सांकल, बेड़ियों से बाँधा गया था और हाथों को पीठ पीछे बाँधकर हाथी के सामने छोड़ दिया गया था। श्री ब्रिग्स के अनुसार सिकन्दर लोदी सन् १४९४ ई० में जब काशी आया था तब कबीर के साथ इस प्रकार की घटनाएँ हुई थीं।

कबीरपंथियों के अनुसार कबीरदास बादशाह के सामने तीन बार पेश हुए थे। दो बार की घटनाओं का उल्लेख किया गया है। दो-दो बार कबीर के बच जाने पर भी विरोधी शान्त नहीं हुए। उनकी कोशिश यह थी कि जिस प्रकार बादशाह ने काशी के अनेक मंदिरों को नष्ट कर दिया, उसी प्रकार कबीर को मौत की सजा दी जाय। इस बार हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर बादशाह के पास गये। दोनों की शिकायत यह थी कि वह हमारे धर्म में हस्तक्षेप कर रहा है। मुसलमान होकर राम-राम जपकर मुसलमानी-धर्म का अपमान कर रहा है। कट्टरपंथी हिन्दुओं ने कहा कि मुसलमानों को राम-राम कहना नहीं चाहिए।

पुनः कबीर को दरबार में हाजिर किया। कबीरदास सारी बातें जान चुके थे। दरबार में आकर उन्होंने एक बार चारों ओर देखा और जोर से अट्टहास कर उठे।

सभी दरबारी चौंक उठे। बादशाह की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। उसने पूछा—''तुम्हारे हँसने का मतलब क्या है ?''

कबीर ने कहा—''जहाँपनाह, मैं यही चाहता था। इसी कार्य के लिए जीवन भर संघर्ष करता आ रहा हूँ। मैं चाहता था कि हिन्दू-मुसलमान में मेल हो। मेरे इस प्रयत्न का लोग हँसी उड़ाते आये हैं। आज यह संभव हो गया। लेकिन मैं इन्हें ईश्वर के दरबार में मिलाना चाहता था। मगर ये लोग जहाँपनाह के दरबार में मिल रहे हैं। बस, ठिकाना जरा गलत हो गया। इसीलिए हँसा था। यह सिंहासन छोटा है। मैं तो उस परमेश्वर के सिंहासन के पास इन्हें ले जाना चाहता था जो सारी दुनिया का मालिक है। आज इन्हें एक ही कठघरे में खड़ा देखकर मुझे विश्वास हो गया कि मेरा रास्ता गलत नहीं है। मेरा कार्य असंभव नहीं है। जहाँपनाह, बेअदबी के लिए मुझे क्षमा करें।''

कबीर की इस सफाई से सिकन्दर लोदी प्रसन्न हो उठा। उसके हृदय में कबीर के प्रति आदर की भावना पैदा हो गयी। उन्हें सम्मान के साथ छोड़ दिया गया।

कबीरदास संपूर्ण भारत ही नहीं, बल्कि अरब मुल्कों की यात्रा भी कर चुके हैं। जौनपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों की यात्रा करते हुए आप झूसी आये जहाँ इक्कीस गुरुओं की समाधि थी। इस समाधि के सामने इस्लाम के बड़े-बड़े नेता और शासक आकर सिर झुकाते थे। जब यहाँ कबीर साहब आये तब उन्होंने प्रश्न किया—''कहिये महाशय, आप लोग तो मूर्तिपूजक नहीं हैं, पर यह क्या कर रहे हैं? क्या ये समाधियाँ कभी कुछ बोलती हैं? यदि बोलती हैं तो आज जरा बोलाइये। अगर नहीं बोलती हैं तो आपकी मान्यताएँ भ्रमपूर्ण हैं या नहीं? जैसे हिन्दू मूर्तिवादी हैं, ठीक उसी प्रकार आप लोग भी कब्रवादी हैं। आप दोनों में कोई अंतर नहीं है। केवल नाम का अंतर है। आप दोनों का धर्म भ्रामक दशा में है।''

मुहम्मद शेखतकी की आगे चर्चा की गयी है जिन्होंने कबीरदास की शिकायत सिकन्दर लोदी से की थी। मेरी समझ से निम्न घटना के कारण शेखतकी ने कबीरदासजी से चिढ़कर ही शिकायत की थी। इस घटना के बारे में श्री आचार्य महन्त गंगाधर शास्त्री ने लिखा है—शेखतकी अपने शिष्यों के साथ गंगा तट पर टहल रहे थे। ठीक इसी समय एक शव बहता हुआ आ रहा था। कबीर साहब वहाँ मौजूद थे। शेखतकी की ऐशी-शक्ति की परीक्षा लेने के लिए कबीर साहब ने पूछा—''शेख साहब, यह जो शव आ रहा है, यह मृतक है या जीवित?''

शेख साहब मौन रहे, क्योंकि उनके पास दैवी-शक्ति का अभाव था। उन्हें चुप रहते देख कबीर साहब ने कहा—''यह मृत नहीं है। दरअसल यह एक योगी है। इसने प्राणवायु को ऊपर चढ़ा लिया, पर उतार नहीं सका। फलस्वरूप इसे मृतक समझकर लोगों ने नदी में बहा दियां है।'' इसके बाद कबीरदास ने पद्मनाभदास से कहा—''उस शव को यहाँ ले आओ।''

शव के आने पर कबीरदास ने उसके शरीर को सहलाते हुए मस्तिष्क के नसों को दबाया। उसके प्राणवायु को ब्रह्माण्ड से उतार कर कण्ठ में ले आये। इससे उसकी कुण्डलिनी की क्रिया शुद्ध हो गयी। मृतक योगी अंगड़ाई लेते हुए उठकर बैठ गया। चारों ओर देखते हुए उसने पूछा—"मैं यहाँ कैसे आ गया?"

कबीर साहब ने ज्योंही उसके मस्तक को सहलाया, त्योंही उसे ज्ञान प्राप्त हो गया। बिना बताये वह समस्त घटना से अवगत हो गया।

+ + + +

विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए कबीर साहब गुजरात प्रान्त में आये। मार्ग में जंगल के भीतर एक कुटिया देखकर कबीर साहब अपने शिष्यों के साथ वहाँ आये तो देखा—एक साधु वहाँ मौजूद है।

इन दिनों यहाँ एक मेला लगता था। बाहरी साधुओं को यहाँ रुकते देखकर उक्त साधु ने कहा—"तुम लोग यहाँ से भाग जाओ। अन्यथा तुम लोगों को अन्न-जल तक नहीं मिलेगा।"

कबीर ने कहा—"तुम संत हो और हम सब भगवान् के भक्त हैं। यहाँ रात भर ठहरना है। क्यों व्यर्थ में ईर्ष्या करते हो?"

साधु ने कहा—"ठीक है, रहो। लेकिन अन्न, जल और अग्नि तुम्हें नहीं मिलेगा।"

कबीर ने कहा—"हमें केवल रहने दो। हम तुमसे कुछ नहीं माँगेंगे।"

अब साधु के पास कुछ कहने को नहीं था। सभी लोग पूजा-पाठ करने लगे। कुछ देर बाद कबीर ने कहा कि संत लोग दिन भर के भूखे हैं, इनके लिए कुछ उपाय करना चाहिए।

पद्मनाभ ने कहा—"गुरुदेव, यहाँ कौन-सा उपाय करियेगा? यहाँ तो सभी चोलीपंथी साधु हैं। वे अपने पास किसी को फटकने नहीं देते।"

कबीर ने कहा—"अब तुम लोग अपना-अपना जलपात्र तथा अन्न बरतन बाहर रख दो।"

कबीरदास के सभी शिष्यों ने आज्ञा का पालन किया। दूर अनेक चोलीपंथी साधु चूल्हा जलाकर अपना-अपना भोजन पका रहे थे। देखते ही देखते उन सबका चूल्हा बुझने लगा। उनके पात्रों का जल तथा अन्न इनके पात्रों में आ गया। बिना आग जलाये कबीर के शिष्यों के बरतनों में भोजन पकने लगा। यह दृश्य देखकर सभी चोलीपंथी साधु चकित रह गये। इस चमत्कार से वे लोग इतना प्रभावित हुए कि कुटियावाले साधु का संगत छोड़कर सभी चोलीपंथी कबीरदासजी के चरणों के पास आकर प्रणाम करने लगे।

गुजरात में हुई एक घटना का उल्लेख आचार्य क्षितिमोहन सेन ने किया है—

''बात उन दिनों की है जब सन्त कबीर भड़ौच में नर्मदा तट पर स्थित शुक्ल-तीर्थ में थे। कबीर की ख्याति हिन्दुस्तान की सीमा लाँघकर फारस के आगे तक पहुँच गयी थी। फारस का एक फकीर कबीर का दर्शन करने के लिए व्याकुल हो उठा। हिन्दुस्तान आने के लिए उसके पास कोई साधन नहीं था।

कुछ दिनों बाद उसे पता चला कि एक नाव फारस बन्दरगाह से भड़ौच जा रही है। प्रार्थना करने पर नाव के मालिक ने थोड़ी सी जगह दे दी। कई दिनों बाद वे भड़ौच आये। यहाँ आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि नाव दूसरे दिन फारस वापस चली जायगी।

नाव जब भड़ौच पहुँची तब दोपहर हो गया था। फकीर छः कोस पैदल चलकर शाम को शुक्ल-तीर्थ पहुँचा। कबीर उस समय ध्यानावस्थित थे। शिष्यों ने आगन्तुक फकीर का स्वागत किया। कुछ देर बाद जब कबीर बाहर आये तब दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़कर रात भर बैठे रहे। दूसरे दिन तृप्त होकर फकीर अपनी नाव पर बैठने के लिए चला गया।''

फकीर के जाने के बाद कबीर के भक्तों ने उनसे पूछा—''इतनी दूर से आकर वे चुप क्यों रहे और आप भी कुछ बोले नहीं। आखिर यह क्या माजरा था?''

कबीर ने कहा—''हम दोनों में इतनी बातें हुईं कि भाषा में वे अँट नहीं सकतीं। मन के भाव को यदि मैं मुख की भाषा में अनुवाद करके बोलता तो उसमें विकार आ जाता, फिर जब वे उन बातों को मन की भाषा में अनुवाद करते तो और भी विकार आ जाता। इससे असल भाव का कुछ अंश न बचता। आईने से किसी चीज को उल्टा प्रतिफलित करके पुनर्वार दूसरे आईने से उलटकर प्रतिफलित करने से चीज सीधी दीखने लगती है, पर उससे अच्छा क्या यह नहीं होगा कि असली चीज को सीधा देखा जाय, क्योंकि दो दर्पणों के दोष से चीज कुछ-की-कुछ हो सकती है।''

इस उत्तर को सुनकर सभी भक्त चुप रह गये। उन्हें अपने गुरु के योग-ऐश्वर्य का भान हो गया।[१]

इसी प्रकार की एक घटना काशी में हुई थी। कबीर साहब घाट पर देर से गंगा की पानी में झाँक रहे थे। रह रहकर वे प्रसन्न होते तो कभी-कभी उनका चेहरा चमक उठता था। गुरुदेव के इस कार्य से भक्तों को कौतूहल हुआ कि आखिर इस बहते पानी में है क्या? गुरुदेव की आँखें इस प्रकार चमक क्यों रही हैं?

एक शिष्य ने पूछा—''गुरुदेव, आप गंगा में क्या देख रहे हैं?''

कबीर ने कहा—''इसमें मैं अपने मन को देख रहा हूँ।''

''आपका मन तो आपके शरीर में है और आप गंगा में देख रहे हैं।''

---

[१] संस्कृति संगम।

कबीर ने कहा—मैं मन को मिला रहा हूँ जो बिलकुल गंगाजल जैसा हो गया है—'मन ऐसा निर्मल भया जैसे गंगा नीर।'

कबीर का दर्शन शिष्य समझ नहीं सका। उसकी सवालिया सूरत देखकर कबीर ने कहा—''तुम गंगा के निर्मल जल को देखो, सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी।''

शिष्य गौर से जल को देखने लगा। कबीर ने पूछा—''इस जल में क्या-क्या दिखता है?''

शिष्य ने कहा—''जल, मछलियाँ, तल तथा प्रतिविम्बित आकाश दिखाई दे रहा है।''

''ये सारी वस्तुएँ क्यों दिखाई दे रही हैं?''

शिष्य ने कहा—''क्योंकि जल स्वच्छ तथा पारदर्शी है।''

कबीर ने कहा—''बस, इसी तरह निर्मल और स्वच्छ मन होता है। यदि मन निर्मल हो जाय तो इतना पारदर्शी हो जाता है कि उसका अपना स्वरूप, उसमें उत्पन्न छोटे-छोटे कोमल संकल्पों का स्वरूप तथा उसके बीच प्रतिविम्बित आत्मा का स्वरूप सभी कुछ दृष्टिगत हो सकते हैं। गंगाजल में आकाश का प्रतिविम्ब देखने के लिए छोटी-छोटी मछलियाँ बाधक नहीं हैं। हाँ, बड़ी-बड़ी मछलियाँ जब हलचल करके तल की धूल को जल में मिला देती हैं तब जल गंदा हो जाता है, फिर न तो स्वच्छ जल दिखता है और न अपना तथा आकाश का प्रतिविम्ब ही दिखता है। तैरनेवाली मछलियाँ भी नहीं दिखाई देतीं। इसी प्रकार मन में रहनेवाले बुदबुद की तरह छोटे संकल्प जो बुद्धि के द्वारा विशेष विचारणीय नहीं हैं, वे आत्मदर्शन में बाधा नहीं डालते। किन्तु जिस संकल्प में बुद्धि का विचार, जो तल के धूल के समान है, मिल जाता है, वह मन की स्वच्छता का बाधक है। इसीलिए सात्त्विक संकल्प परमात्मा-प्राप्ति में बाधक नहीं है, क्योंकि उससे मन की सरलता का बोध नहीं होता। किन्तु अति बौद्धिकता ही मन की सरलता को इतना जटिल कर देती है कि न मन ही दिखता है और न मन के संकल्प।''[1]

कबीर के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि कबीर निस्सन्देह हठयोग की साधना करते रहे। यों उनकी रचनाओं में अनेक जगह योग के उद्धरण हैं।

+ + + +

प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के अधिकांश संत अपने भक्तों तथा शिष्यों को नाम जपने की सलाह देते आये हैं। सामान्यजन नाम जपने के माध्यम से भगवद् प्राप्ति कर सकते हैं। इससे सरल अन्य कोई साधना नहीं है, पर इसके लिए व्याकुलता

---

[1] स्वामी श्री भगवत्स्वरूपाचार्य, 'भास्कर'।

और निष्ठा आवश्यक है। चंचल मन को एकाग्र करने का सबसे अच्छा साधन यही है। स्वयं कबीर ने नाम जपने को बार-बार कहा है—

नाम अमल उतरै न भाई ।
और अमल छिन-छिन चढ़ै उतरै,
नाम अमल दिन बढ़ै सवाई ॥
देखत चढ़ै, सुनत हिय लागै,
सुरत किये तन देत घुमाई ॥
पियत पियाला भये मतवाला,
पायौ नाम मिटी दुचिताई ॥
जो जन नाम-अमल रस चाखा,
तरी गइ गनिका सदन कसाई ॥
कहै कबीर गूँगे गुड़ खाया,
बिन रसना क्या करै बड़ाई ॥

एक-दो स्थानों पर नहीं, अन्यत्र अनेक स्थानों में उदाहरण देते हुए वे राम-नाम जपने की सलाह देते हैं—

अजामिल-गज-गनिका पतित करम कीन्हां ।
तेऊ उतरि पार गये राम-नाम लीन्हां ॥
मन रे राम सुमरि राम सुमरि राम सुमरि भाई ।
राम नाम सुमिरन बिना, बूढ़त अधिकाई ॥

कहा जाता है कि राम-नाम सुमिरन करने का प्रभाव एक कसाई पर भी पड़ा था जो कबीर साहब के घर के पास रहता था।

कबीर तेरी झोपड़ी गलकट्टों के पास ।
जो जैसा करेगा सो भरेगा तू क्यों होत उदास ॥

कबीरदास ने पड़ोसी कसाई को कई बार समझाया कि तू यह कार्य छोड़ दे। कुछ और काम कर। नाहक जीव-हत्या करके पाप-संचय कर रहा है। कसाई पर इन बातों का प्रभाव नहीं पड़ा। फलस्वरूप कबीर साहब अपने भक्तों के साथ ठीक उस समय राम-नाम गाने लगे जब वह अपना कार्य करता था। राम-नाम का प्रभाव उस पर पड़ने लगा। आखिर एक दिन अपना पुश्तैनी धंधा हमेशा के लिए बंद कर दिया और कबीर साहब का भक्त बन गया।

कबीर साहब समाज सुधार तथा राम-भक्ति प्रचार के सिलसिले में भारत के विभिन्न प्रान्तों में यात्रा करते रहे। 'आइने अकबरी' के अनुसार पुरी और मराठी साहित्य के अनुसार पंढरपुर गये थे।

'कबीर मंसूर' ग्रंथ के अनुसार कबीर साहब बगदाद, समरकन्द, बुखारा आदि शहरों में गये थे। किसी ग्रंथ में उनके मक्का जाने का भी उल्लेख है। लेकिन इन शहरों की यात्रा का क्या उद्देश्य था, यह स्पष्ट नहीं है।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कबीर योगी-पुरुष थे। अपनी रचनाओं में व्यंग्य करने के अलावा अष्ट कमल, साँसों का प्राणायाम, कुंभक, रेचक, साधना-पद्धतियों का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें योग का ज्ञान था और वे विधिवत इसकी साधना करते रहे तभी आपके जीवन में ऐसी चामत्कारिक घटनाएँ हुई हैं।

कबीर के संबंध में तमाम विरोधाभास वाली बातें हैं। इसका भी एक राज है। वास्तविक कबीर एक ही थे, पर उनके पूर्व और बाद में कुल ग्यारह कबीर और हो गये हैं। सभी कबीरों की कहानियों में रंग चढ़ाकर अनेक बातें लिखी गयीं जिसके कारण असली कबीर के साथ अनेक नकली कबीरों की घटनाएँ जुड़ गयीं। इस प्रकार खोज करनेवाले भ्रमजाल में फँस गये।

श्री वेस्टकाट ने 'कबीर एण्ड द कबीर पंथ' में कबीर नाम से ग्यारह कबीरों को खोजा है—

"नागौर के कबीर चिश्ती जिनका निधन गुजरात में सन् १५४४ में हुआ था। शेख कबीर जुलाहा जिसे मुसलमान पीर कबीर और हिन्दू भगत कबीर कहते हैं, १५६४ ई० में मरे। ख्वाजा औलिया कबीर जो बुखारा भी गये थे, उनकी मृत्यु सन् १५६४ ई० में हुई। सैयद कबीरउद्दीन हसन बल्ख में १४९० ई० में मरे। शेख कबीर बजौरा के रहनेवाले थे और अफीमची थे। शेख अब्दुल्ला कबीर या बालापीर का निधन १५३९ ई० में हुआ था। मुसलमानों के शेख कबीर जो बल्ख भी गये थे, फिर वहाँ से वे हिन्दुस्तान लौटे और हमारे कबीर के साथ घूमते रहे, वे फतेहपुर में १५८५ ई० में मरे। अमीर कबीर मीर सैयद अली हमदानी जो १३७९ ई० में काश्मीर गये और पाँच साल बाद वहीं मर गये। सैयद जलालुद्दीन के पिता सैयद अहमद कबीर थे, सैयद जलालुद्दीन जो सन् १४२१ में मरे और इनके पोते कबीर उनदीन इस्माइल थे। एक दीवान शाह कबीर थे जिनकी याद में हुमायूँ के शासन काल में जौनपुर में एक मस्जिद बनवायी गयी है।

पहले पाँच कबीरों का उल्लेख 'खजीनात-उल-आसफिया' में है। छठें का 'सैरउल अकताब' में, सातवें का 'मुकुखुल उस तवारीख' में, आठवें का 'अखबार उल इखयार' में तथा बाकी लोगों का 'फरिश्ता' में वर्णन है।"

कबीरपंथियों की मान्यता है कि कबीर साहब का जन्म १४५६ में और निधन १५७५ संवत में हुआ था। वर्तमान समय में जहाँ कबीर मठ है, यहीं नीरू-नीमा कबीरदास को लेकर रहते थे।

चौदह सौ छप्पन जेठी पुनम चन्द सुवारा ।
श्री कबीर साहब का जनहित काशी में अवतारा ॥

+ \+ \+ \+

पन्द्रह सौ पचहत्तर सबत मगहर ज्ञान निधाना ।
माघ सूदि एकादशि तिथि को जग से अन्तर्धाना॥

यह सूचना कबीरचौरा मठ में अंकित है। कबीरदासजी को योग का कितना ज्ञान था, इसका पता निम्न पंक्तियों से मिल जाता है जो आज भी जन-जन में लोकप्रिय है—

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना, काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया ॥
आठ कंवल दस चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया ।
सांई को सियत मास दस लागे, ठोंक ठोंक के बीनी चदरिया ॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ कै मैली कीनी चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ॥

नरोत्तम ठाकुर

वर्तमान बांग्लादेश में स्थित यशोहर जिला के तालखड़ी जागली गाँव में पण्डित पद्मनाभ चक्रवर्ती सपरिवार रहते थे। आपकी पत्नी का नाम सीता था। इस दम्पति का एक मात्र पुत्र लोकनाथ था। साध्वी माता और साधु स्वभाववाले पिता के कारण बचपन से ही लोकनाथ भक्तिरस में मुग्ध हो गया था। विशेष रूप से वह श्रीकृष्ण नाम से आत्मविभोर हो उठता था। ठीक इन्हीं दिनों उसने सुना कि नवद्वीप में शची के गर्भ से श्रीकृष्ण ने स्वयं जन्म लिया है।

यह समाचार सुनते ही लोकनाथ खुशी से पागल हो उठा। उसने निश्चय किया कि वह नवद्वीप जाकर प्रभु का दर्शन करेगा। लोकनाथ के इस निश्चय से माता-पिता चिन्तित हो उठे। उनके मन में यह भावना घर कर गयी कि गौरांग महाप्रभु का दर्शन करने के बाद फिर लड़का घर वापस नहीं आयेगा। माता तथा पिता ने चुपचाप निश्चय किया कि लोकनाथ का विवाह कर दिया जाय।

पिताजी के दौड़-धूप का रहस्य समझते ही एक दिन लोकनाथ रात को चुपके से उठा और आँगन में आकर पिता-माता के उद्देश्य से प्रणाम कर नवद्वीप की ओर पैदल रवाना हो गया। दूसरे दिन शाम को वह नवद्वीप शहर में पहुँच गया।

अब तक तेजी से चलते रहने के कारण उसके मस्तिष्क में यह बात नहीं आयी कि आखिर यहाँ के किस मकान में गौरांग प्रभु रहते हैं। पूछते-पूछते वह गौरांग प्रभु के घर के सामने आकर खड़ा हो गया। उस समय गौरांग प्रभु अपने पार्षदों से घिरे बैठे थे। इस ब्राह्मण को देखते ही वे दोनों हाथ फैलाये दौड़े। उसे गले से लगाते हुए बोले—''लोकनाथ, तुम अब तक मुझे कैसे भूले रहे?''

लोकनाथ महाप्रभु की गोद में बेहोश हो गये।

महाप्रभु के यहाँ लोकनाथ पाँच दिनों तक थे। इन दिनों उन्हें बाह्यज्ञान नहीं था। वास्तव में महाप्रभु के सम्पर्क में आने के कारण उनका पुनर्जन्म हुआ। उनके लोकनाथत्व का अस्तित्व समाप्त हो गया था।

छठें दिन जब लोकनाथ होश में आये तब महाप्रभु ने कहा— ''लोकनाथ, अब तुम सीधे वृन्दावन चले जाओ और वहीं निवास करो।''

"प्रभु, आप मुझे यह आज्ञा क्यों दे रहे हैं? आपसे बिछुड़ने पर मेरा प्राणान्त हो जायगा।"

महाप्रभु ने कहा— "नहीं। सुख-भोग के लिए न तो मेरा जन्म हुआ है और न तुम्हारा। वृन्दावन का उद्धार तुम्हारे हाथों होना है। तुम वहाँ जाकर उसका उद्धार करो। पश्चिम में भक्ति-धर्म का प्रचार तुम्हें करना है। अगले माघ मास में मैं स्वयं यहाँ से रवाना हो जाऊँगा। पहले तुम जाओ, बाद में मैं आऊँगा।"

"प्रभु, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर मैं वहाँ कहाँ रहूँगा?"

प्रभु ने कहा— "तुम वहाँ चिरघाट पर रहना। पास ही कदम्ब, तमाल, बकुल वृक्षों से सुशोभित कुंज है। वह कुंज तुम्हारा ही है। वहीं रहना। अपने साथ भूगर्भ को भी लेते जाओ।"

महाप्रभु के आदेशानुसार दोनों व्यक्ति वृन्दावन आये तो देखा— चारों ओर जंगल ही जंगल हैं। मुगलों ने यहाँ के सभी मन्दिर, पांथशालाओं को ही नहीं, घरों को भी खंडहर बना दिया है। केवल यमुना नदी और गोवर्धन पहाड़ मौजूद हैं जिसे आक्रमणकारी नष्ट नहीं कर पाये। यह घटना शक संवत १४३२ की है।

इसके बाद यहाँ स्वयं महाप्रभु आये। सुबुद्धि राय और सनातन आये। धीरे-धीरे महाप्रभु के सभी भक्त यहाँ आते रहे। इन लोगों ने वृन्दावन के लुप्त तीर्थस्थानों का उद्धार किया। नये विग्रहों को स्थापित किया। एक प्रकार से वृन्दावन को नये सिरे से बसाने का सारा श्रेय लोकनाथ तथा महाप्रभु के भक्तों को है। जंगलों से आच्छादित वृन्दावन में नये जीवन की शुरुआत हुई। इस प्रकार महाप्रभु के आदेशानुसार लोकनाथ वहाँ साधक-जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि वे भविष्य में किसी को अपना शिष्य नहीं बनायेंगे। लेकिन इस प्रतिज्ञा की रक्षा वे नहीं कर सके।

+ \+ \+ \+

बंगाल के रामपुर जिले में खेतरी नामक एक गाँव कभी एक छोटे राज्य की राजधानी थी। यहाँ के राजा थे— श्री कृष्णानन्द दत्त और पुरुषोत्तम दत्त। कृष्णानन्द बड़े भाई थे। खेतरी नरेश एक मुसलमान जागीरदार के मातहत थे।

एक अर्से के बाद कृष्णानन्द को एक पुत्र की प्राप्ति हुई, बच्चे का नाम रखा गया— नरोत्तम। घर के सभी लोग 'नरू' नाम से बुलाते थे। बचपन से ही बालक मेधावी था, इसलिए न केवल माता-पिता बल्कि प्रजाजनों के निकट वह लोकप्रिय बन गया। शान्त स्वभाव, श्यामवर्ण, कमल नयन, मनोहर मुखाकृति थी।

इन दिनों खेतरी गाँव में एक वृद्ध ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम था— कृष्णदास। आप महाप्रभु गौरांग के समकालीन तथा उनके भक्त थे। नरोत्तम प्रायः इनके निकट आता

था। कृष्णदास की जबानी वह महाप्रभु चैतन्य[1] की कहानियाँ सुना करता था। वृद्ध से निरन्तर कहानियाँ सुनते-सुनते नरोत्तम के भाव में परिवर्तन होने लगा। यहाँ तक कि वह स्वप्न में भी महाप्रभु को देखने लगा।

अक्सर पद्मावती नदी के किनारे आकर नरोत्तम भावातुर हो जाता था। कृष्णदास की जबानी उसे पता चला कि एक बार गौरांग प्रभु अपने पार्षदों के साथ उस पार आकर नृत्य करते रहे जिसे लाखों भक्तों ने देखा था।

एक दिन नरोत्तम नदी में स्नान करने आया तो घर समय पर नहीं लौटा। राजा-रानी चिन्तित हो उठे। लोग नदी किनारे आये तो देखा— एक गौरवर्ण का बालक दोनों हाथ ऊपर उठाकर नृत्य कर रहा है। नरोत्तम श्यामवर्ण का था। नृत्य करते-करते भावातुर हो जाने के कारण उसकी मुखाकृति में परिवर्तन हो गया था। इसीलिए लोग उसे पहचान नहीं सके। लोगों का कोलाहल सुनकर नरोत्तम चौंक उठा और माँ को देखते ही उनकी ओर दौड़ा हुआ आया।

बातचीत के सिलसिले में नरोत्तम ने कहा— "आज अचेतन अवस्था में यहाँ स्नान करने आया। थोड़ी देर बाद एक गौरवर्ण का बालक नृत्य करता हुआ मेरे पास आया। उसने मुझे गले से लगाया, फिर मेरे भीतर प्रवेश कर गया। वही मुझे नचा रहा था। इसके बाद कुछ पता नहीं। आप लोगों की आवाज सुनकर मुझे होश आया।"

नरोत्तम की ऐसी दशा क्यों हुई, इस बारे में 'प्रेम विलास' में लिखा है— "वृन्दावन जाते समय महाप्रभु चैतन्य उस पार पद्मा नदी के किनारे आकर खेतरी गाँव की ओर देखते हुए बार-बार "बाप नरोत्तम" कहकर पुकारते रहे। इस घटना के बाद ही नरोत्तम का जन्म हुआ था। बाद में उन्होंने पद्मा नदी से कहा था— 'नरोत्तम के जन्म ग्रहण के बाद उसे दान कर देना।' आगे चलकर श्री नित्यानन्द ने नरोत्तम को स्वप्न में आदेश दिया था कि कल तुम नदी में अकेले स्नान करने जाना। वहाँ तुम्हें परम धन प्राप्त होगा। इस आदेश-को सुनकर नरोत्तम अकेले स्नान करने गया था जहाँ पद्मा नदी ने मानव शरीर धारण कर चैतन्य देव के दिये धन को दिया और वे प्रेम में उन्मत्त हो उठे।"

इस घटना के बाद से नरोत्तम अस्वस्थ रहने लगा। कभी वह हँसता तो हँसता ही रह जाता और कभी रोता तो रोता ही रह जाता। लड़के की इस हालत को देखकर माता-पिता चिन्तित हो उठे। वैद्य-ओझा बुलाये गये, पर कोई सुधार नहीं हुआ।

एक दिन नरोत्तम ने अपनी माँ से कहा— "मैं यहाँ अच्छा नहीं होऊँगा। आप लोग प्रसन्न चित्त से मुझे वृन्दावन जाने की अनुमति दें तभी मेरे जीवन की रक्षा हो सकती है।"

---

[1] महाप्रभु गौरांग, चैतन्य महाप्रभु, निमाई आदि सभी नाम एक ही व्यक्ति के हैं, जिन्हें भक्त लोग अपनी रुचि के अनुसार पुकारते हैं।

पिताजी राजी नहीं हुए। लड़के की शोचनीय स्थिति से माँ चिन्तित हो उठी। अन्त में पिता ने वृन्दावन जाने की आज्ञा दी। आश्चर्य की बात यह हुई कि आज्ञा प्राप्त करने के दूसरे ही दिन से नरोत्तम के स्वास्थ्य में सुधार होने लगा। यह चमत्कार देखकर सभी विस्मित रह गये।

प्राचीनकाल में लोग बैलगाड़ी से या पैदल यात्रा करते थे। नरोत्तम पैदल ही चल पड़ा। मार्ग में जितने तीर्थस्थल थे, उन सभी स्थानों का दर्शन करता हुआ वह मथुरा पहुँच गया। पद-यात्रा करने के कारण उसका सुकुमार शरीर कृशकाय हो गया था। थका-माँदा मथुरा के विश्रामघाट पर लेटे हुए वह नाना प्रकार की चिन्ताओं से घिर गया। यहाँ तक तो आ गया। अब वृन्दावन अन्तिम मंजिल है। वहाँ कहाँ रहेगा? कौन उसे आश्रय देगा? नरोत्तम को यह ज्ञात हो गया था कि महाप्रभु का तिरोधान हो गया है। अब क्या करना चाहिए?

ठीक इसी समय एक आदमी नरोत्तम के पास आया। परिचय पूछने के बाद उसने कहा— ''श्री जीव गोस्वामी ने मुझे आपको वृन्दावन ले आने की आज्ञा दी है। कृपया आप मेरे साथ चलें।''

गौरांग प्रभु ने अपने शिष्यों को यह आदेश दिया था कि मेरे जितने भक्त यहाँ आयेंगे, उन सभी को आश्रय देना। उन दिनों श्री जीव गोस्वामी वृन्दावन धाम के प्रधान थे और वे ही सभी को आश्रय देते थे।

नरोत्तम को समझते देर नहीं लगी कि महाप्रभु अलक्ष्य रूप में उसकी सहायता कर रहे हैं। वृन्दावन आने पर जीव गोस्वामी ने उसका स्वागत करते हुए गले से लगा लिया। नरोत्तम का सारा अवसाद दूर हो गया। उसे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि यहाँ अगणित गौरांग महाप्रभु के भक्त हैं। वह प्रत्येक कुंज में जाकर सभी भक्तों को प्रणाम करता रहा। सभी घोर विरागी और प्रभु-प्रेम में पागल हैं। इन्हीं भक्तों में लोकनाथ भी थे जिनके दर्शन से नरोत्तम के हृदय की समस्त तंत्रियाँ नृत्य करने लगीं।

लोकनाथ के स्पर्श से ही उसकी आत्मा गद्‌गद हो उठी। मन ही मन उसने उनके चरणों में आत्म समर्पण कर दिया। लोकनाथ इस रहस्य से अपरिचित रहे, क्योंकि वे तो गौरांग प्रभु के आदेश पर वृन्दावन आये हैं। इस क्षेत्र का उद्धार करने के बाद अब अपनी साधना में लीन रहते हैं। यहाँ आने के साथ ही उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि कभी किसी को अपना शिष्य नहीं बनायेंगे। शिष्य बनाने पर उसका सारा पाप लेना पड़ता है। उसकी साधना में सहायता देनी पड़ती है। इससे अपनी साधना में व्याघात होता है। अनेक लोग उनकी साधना से प्रभावित होकर शिष्य बनने आये, पर लोकनाथ अपने संकल्प से च्युत नहीं हुए। नरोत्तम को यह बात मालूम हो गयी थी। वह चुपचाप उनकी सेवा करता रहा। आखिर एक दिन वह पकड़ में आ गया। लोकनाथ ने पूछा— ''तुम कौन हो, और मेरी सेवा इस तरह क्यों कर रहे हो?''

नरोत्तम ने संक्षेप में अपनी राम कहानी सुनाई। सारी बातें सुनने के बाद लोकनाथ ने कहा— "तुम तो गौरांग प्रभु के कृपा-पात्र हो। वे तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर चुके हैं, फिर तुम दीक्षा क्यों चाहते हो? तुम्हें जो कुछ चाहिए, वह तो तुम्हें मिल गया है। मैंने यह निश्चय किया है कि मैं किसी को अपना शिष्य नहीं बनाऊँगा। तुम मेरा यह संकल्प भंग मत करो।"

नरोत्तम ने कहा— "मैंने अपने आपको आपके निकट समर्पण कर दिया है। अब आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर रहा हूँ।"

नरोत्तम नित्य दो लाख नाम जप करते और लोकनाथ की सेवा करते रहे। दोनों में किसी प्रकार का वार्तालाप नहीं होता था। एक दिन लोकनाथ ने नरोत्तम को बुलाया। वह उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। लोकनाथ ने कहा— "तुम्हारे कारण मेरा संकल्प शिथिल हो गया। क्या दो प्रतिज्ञाएँ कर सकते हो?"

राजकुमार नरोत्तम ने कहा—"आज्ञा दीजिए।"

"पहला मांसाहार नहीं करोगे। दूसरा विषय स्पर्श नहीं करोगे।"

"प्रतिज्ञा करता हूँ।"

"ब्रह्मचर्य रहना पड़ेगा। दारा परिग्रह नहीं करोगे। इसका उत्तर सोचकर देना। इन्द्रिय को समूल नष्ट करना पड़ेगा।"

नरोत्तम ने कहा— "आपका आशीर्वाद रहा तो ऐसा ही होगा। ब्रह्मचर्य का पालन तो कर ही रहा हूँ।"

श्रावण पूर्णिमा को यमुना में स्नान करने के बाद नरोत्तम को स्तव पाठ करने का आदेश दिया गया। इसके बाद अपनी बायीं ओर बैठाते हुए लोकनाथ ने कहा— "अब तुम अपने को मेरे निकट समर्पित करो। तुम्हारे शरीर के जितने पाप हैं, मुझे दो।"

कुछ देर ठहरकर उन्होंने कहा— "गुरु-पद बड़ा कठिन पद है। शिष्य के सभी पापों को ग्रहण करना पड़ता है। अब तुम उपस्थित सभी संतों को प्रणाम करो।"

चन्दन और माला से सज्जित नरोत्तम ने जीव गोस्वामी से लेकर उपस्थित सभी संतों को प्रणाम किया। इस अवसर पर श्री जीव गोस्वामी ने नरोत्तम को "ठाकुर महाशय" की उपाधि दी। अब वे राजकुमार नरोत्तम नहीं रहे।

+ + + +

गौरांग प्रभु ने शक्ति-संचार करके लोकनाथ तथा श्री निवास आचार्य को पहले पहल वृन्दावन भेजा था। बाद में नरोत्तम की सृष्टि कर उन्हें भी वृन्दावन भेजा। उम्र में श्री निवास आचार्य नरोत्तम से कुछ बड़े थे। दोनों ही गौरांग महाप्रभु के वर-पुत्र थे। इनके अलावा अन्य छः गोस्वामियों में उन्होंने शक्ति-संचार किया था। इन गोस्वामियों

ने सहस्रों ग्रंथों का अध्ययन करके जिन ग्रंथों का निर्माण किया था, उन्हें 'भक्ति ग्रंथ' कहा जाता है।

ग्रंथ-लेखन संपूर्ण होने के बाद गोस्वामियों ने सोचा कि गौड़ देश में इसका प्रचार कैसे किया जाय। महाप्रभु का आदेश था कि गोस्वामी लोग वृन्दावन त्याग नहीं करेंगे। विचार-विमर्श करने के बाद यह तय किया गया कि श्री निवास आचार्य को प्रचार-कार्य के लिए भेजा जाय। इनके साथ नरोत्तम ठाकुर और श्यामानन्द को भेजने का निश्चय किया गया।

श्री जीव गोस्वामी ने मथुरा के एक महाजन को बुलाकर आदेश दिया कि गौड़ देश में तीन भक्त ग्रंथ लेकर जानेवाले हैं। इस कार्य के लिए एक बैलगाड़ी और दस सशस्त्र सिपाही का प्रबंध कर दें। कई दिनों बाद सारी सामग्री आ गयी। इस काफिले के साथ नरोत्तम ठाकुर, श्री निवास आचार्य और श्यामानन्द रवाना हुए। मथुरा तक श्री जीव गोस्वामी साथ-साथ आये और इन्हें विदा देकर वापस चले गय।

यात्रा आरम्भ करने के पूर्व नरोत्तम अपने गुरु लोकनाथ के पास आये। लोकनाथ गोस्वामी ने कहा— ''अब यहाँ से जाकर समस्त गौड़ देश में महाप्रभु गौरांग की कथा का प्रचार करोगे। ग्रंथ की व्याख्या केवल तुम लोग ही कर सकते हो। अब तुम्हें वृन्दावन आने की आवश्यकता नहीं है।''

इस आज्ञा को सुनकर नरोत्तम फफककर रो पड़ा। यह देखकर लोकनाथ बोले— ''वत्स, व्याकुल मत हो। महाप्रभु ने इसी कार्य के लिए तुम्हारी सृष्टि की है। उनके संदेश का प्रचार तुम्हें करना ही होगा। जाओ, यह कार्य निष्ठा के साथ करो। मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा।''

मथुरा से गौड़ देश तक अनेक नदी, जंगल, नाले पार करने पड़ते हैं। मार्ग में कई जगह विश्राम करते हुए यह काफिला विष्णुपुर आ गया। गोपालपुर के निकट मालियाग्राम में जब सभी लोग सो रहे थे, ठीक इसी समय डाकुओं ने हमला किया। डाकुओं की संख्या अधिक थी। साथ चल रहे सैनिक उनके हमले का मुकाबला नहीं कर सके। डाकुओं के चले जाने के बाद लोगों ने देखा कि सारा सामान सुरक्षित है, केवल बैलगाड़ी और उस पर लदा सामान गायब है।

यह समाचार सुनते ही तीनों व्यक्ति बेहोश होकर गिर पड़े। होश में आने पर श्री निवास आचार्य ने कहा— ''तुम दोनों वापस चले जाओ। मैं गाड़ी की तलाश करता हूँ, क्योंकि डाकू पाण्डुलिपि लेकर क्या करेंगे। जीव गोस्वामी ने ग्रंथ-प्रचार की जिम्मेदारी मुझे दी थी। ग्रंथ-चोरी का कलंक मुझ पर लगेगा। तुम लोग अपना काम करो और मैं अपना करूँ।''

इस घटना की सूचना पत्र लिखकर श्री निवास आचार्य ने जीव गोस्वामी के पास भिजवा दी।

आचार्यजी के आदेशानुसार नरोत्तम और श्यामानन्द बुझे मन से गौड़ देश की ओर रवाना हो गये। कई दिनों बाद दोनों व्यक्ति पद्मावती नदी के किनारे आये। उस पार खेतरी गाँव दिखाई देने लगा।

अचानक नरोत्तम ठाकुर को अपने माता-पिता की याद आयी— पता नहीं, वे लोग जीवित हैं या नहीं। यहाँ से जाने के बाद इनसे कभी कोई सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका था। नाव से दोनों व्यक्ति चिरपरिचित घाट पर उतरे। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि माता-पिता अभी जीवित हैं, पर पुत्र-शोक से व्याकुल हैं।

श्यामानन्द ने कहा— ''कृपया आप लोग राजाजी को सूचित करें कि उनका पुत्र जीवित है और वह यहाँ आ गया है।''

इस समाचार को सुनते ही राजा-रानी के साथ अनेक लोग नदी किनारे आये। सभी के चेहरे पर आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता थी। नरोत्तम ठाकुर इस वक्त तन पर कौपीन और साधारण चद्दर से अपने को ढँके हुए थे। लड़के की इस हालत को देखकर रानी माँ रो पड़ीं। पदयात्रा के कारण लड़के की आकृति पर थकावट के चिह्न मौजूद थे। नरोत्तम ठाकुर ने आगे बढ़कर माँ तथा पिताजी के चरण-स्पर्श किये। राजकर्मचारी आगे बढ़कर नरोत्तम ठाकुर का चरण-स्पर्श करने लगे।

ठाकुर ने कहा— ''मैं राजधानी में नहीं रहूँगा, पर आप लोगों के स्नेह के कारण यहाँ ठहर रहा हूँ। आप लोगों के निकट मेरी यही प्रार्थना है कि मैं धर्म की रक्षा करता रहूँ, इस प्रकार का व्यवहार मेरे साथ किया जाय।''

नरोत्तम ठाकुर महल के भीतर नहीं गये। मंदिर में जाकर रहने लगे। स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाते और खाते थे। संध्या-पूजन के बाद दिन-रात भजन गाते थे। माता-पिता को संतोष इसी बात का था कि उनका पुत्र उनकी आँखों के सामने मौजूद है।

+ + + +

इधर श्री निवास आचार्य इन लोगों को विदा करने के बाद गाँव-गाँव में जाकर ग्रंथों की तलाश करने लगे। जब कहीं कोई सुराग़ नहीं मिला तब वे राजधानी विष्णुपुर वापस आये। विष्णुपुर के नागरिकों ने देखा— एक गौर वर्ण का युवक फटा-पुराना कपड़ा पहनकर उनके नगर में पागलों की तरह घूमता है।

भवितव्य होकर ही रहता है। एक दिन आचार्य महाशय एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे तब उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मण युवक तड़ित वेग से जा रहा है। उन्होंने उसे पुकारते हुए पास बुलाकर पूछा— ''आप यहाँ कहाँ रहते हैं? क्या करते हैं?''

ब्राह्मण ने कहा— ''मैं संस्कृत पढ़ता हूँ और यहाँ राजा के आश्रय में रहता हूँ।''

बातचीत के सिलसिले में युवक ने अपना नाम कृष्णबल्लभ बताया। आगे उसने

यह भी बताया कि यहाँ का राजा बड़ा क्रूर स्वभाव का है। दूसरों का धन हड़प लेता है, पर वंश-परम्परा से पूजा-पाठ करता है। नित्य भागवत-कथा सुनता है।

आचार्य के अनुरोध पर कृष्णबल्लभ उन्हें राजदरबार में ले आया। आचार्य श्रोताओं के बीच बैठकर पाठ सुनने लगे। रास पंचाध्यायी का पाठ हो रहा था, पर पाठक गलत अर्थ बता रहा था। श्रोताओं में से किसी को प्रतिवाद न करते देख आचार्य ने कहा— ''पण्डितजी, आप श्लोकों का गलत अर्थ बता रहे हैं। इन श्लोकों का अर्थ ऐसा नहीं है।''

अब सभी श्रोता चौंक उठे। पाठ करनेवाले पण्डितजी क्रुद्ध होकर बोले— ''शुद्ध अर्थ क्या होगा, आकर बताइये।''

इस आदेश को सुनकर आचार्यजी आगे आये और ग्रंथ लेकर पाठ करने लगे। एक-एक श्लोक का वास्तविक अर्थ समझाते गये। आचार्यजी के पाठ को सुनकर राजा और अन्य श्रोता प्रसन्न हो गये। राजाज्ञा से आचार्यजी के रहने तथा भोजनादि की व्यवस्था हो गयी। भागवत-पाठक भी आचार्य के भक्त बन गये। अब आचार्यजी नित्य भागवत पाठ करने लगे।

कुछ दिनों बाद राजा ने पूछा— ''ठाकुर, आप कौन हैं? आपका निवास स्थान कहाँ है? इस अधम के यहाँ क्यों आये हैं? कृपया विस्तार से बतायें।''

आचार्यजी ग्रंथ चोरी हो जाने की घटना का विवरण देते हुए कहा— ''कृपया ग्रंथ खोजने में मेरी मदद कर दें तो मैं जीवन भर कृतज्ञ रहूँगा।''

राजा ने हँसकर कहा— ''यह गौरांग महाप्रभु की कृपा है जो पहले ग्रंथ और उसके बाद आपका दर्शन हुआ। हे प्रभो, मैं राजा जरूर हूँ, पर कार्य से डाकू हूँ। मैंने ही आपकी गाड़ी लुटवायी है। आपके सभी ग्रंथ सुरक्षित हैं। इस पाप के लिए मुझे दण्ड दीजिए।'' कहने के पश्चात् राजा ने आचार्यजी के दोनों पैर पकड़ लिये।

राजा की बातें सुनकर आचार्य ने कहा— ''अब आप मेरे पैर को छोड़ दीजिए ताकि प्रसन्नता पूर्वक नृत्य कर सकूँ।''

नृत्य समाप्त करके आचार्यजी राजा के साथ भण्डारघर में गये और वहाँ रखे ग्रंथों को देखा। दूसरे दिन उन ग्रंथों की पूजा की गयी और उसी दिन राजा को दीक्षा दी गयी।

+ + + +

नरोत्तम ठाकुर के स्थान पर उनके चचेरे भाई संतोष दत्त को युवराज बनाया गया। खेतरी में रहते हुए नरोत्तम ठाकुर दिन-रात भजन-कीर्तन में मस्त रहते थे। इस प्रकार इनकी साधना की ख्याति चारों ओर फैलने लगी।

सन्तोष को दीक्षा देने के बाद नरोत्तम ठाकुर क्रमशः अन्य दीक्षार्थियों को दीक्षा

देने लगे। इसी बीच बलराम मिश्र को उन्होंने दीक्षा दी। इस घटना से ब्राह्मण-समाज नाराज हो गया। वे नरोत्तम ठाकुर की निन्दा करते हुए कहने लगे— "तुम साधु हुए हो, कोई बात नहीं। शूद्र होकर तुमने ब्राह्मण को कैसे मंत्र दिया ?"

नरोत्तम ठाकुर ब्राह्मणों के इस विरोध की उपेक्षा करते हुए सभी को दीक्षा देते रहे। फलस्वरूप गाँव के नहीं, बल्कि अन्य गाँव के ब्राह्मण इन्हें पिशाच कहने लगे। यहाँ तक कहा गया कि इसके जैसा नीच मनुष्य दूसरा कोई नहीं है।

सबसे कठिन समस्या तब आयी जब रामकृष्ण और हरिराम नामक दो भाइयों को उन्होंने दीक्षा दी। इन दोनों के पिता पण्डित शिवानन्द प्रचुर वित्तशाली, विद्वान तथा भगवती के उपासक थे। इसके अलावा दोनों भाई संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे।

वास्तव में दोनों भाई नरोत्तम ठाकुर की कथा सुनने और बातचीत के ढंग से मुग्ध हो गये थे। उन लोगों को यह विश्वास हो गया था कि ठाकुर भवसागर के कर्णधार हैं। यही कारण है कि दोनों भाई नरोत्तम के चरणों पर गिर पड़े।

नरोत्तम ठाकुर इनके वंश परिचय से अवगत थे। इन्हें दीक्षा देने के पहले उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था— "तुम लोगों के पिता बड़े आदमी हैं, प्रकाण्ड विद्वान हैं। तुम दोनों भी पण्डित हो। मेरे दीक्षा देने पर वे नाराज होंगे। समाज के लोग तुम्हें जाति-च्युत कर देंगे।"

दोनों भाइयों ने कहा— "अगर आप कृपा करेंगे तो पिताजी कुछ नहीं कर सकते। समाज जो चाहे करे। हमें उसकी चिन्ता नहीं।"

अन्त में दोनों भाई दीक्षा लेकर खेतरी में पढ़ने लगे। यह समाचार गयेशपुर पहुँचा। आचार्य शिवानन्द इन दोनों भाइयों को पकड़ लाने के लिए कुछ लोगों को भेजा। पिता के भय से दोनों भाई गयेशपुर वापस आ गये।

इन्हें देखते ही पिता क्रोध से बरस पड़े— "मेरे पुत्रों ने एक वैष्णव से मंत्र लिया और वह भी एक कायस्थ से? तुम लोगों के मन में घृणा नहीं हुई। अब तुम दोनों को उनका प्रसाद खाना पड़ेगा। ऐसी हालत में क्या ब्राह्मण-समाज तुम्हें अपने समाज में बैठने देगा?"

पुत्रों ने हाथ जोड़ते हुए कहा— "पिताजी, हम लोगों ने कोई अन्याय नहीं किया है? कृपया विचार करके हमें निरस्त कर दीजिए तब हम लोग प्रायश्चित करके पुनः मंत्र लेंगे।"

शिवानन्द को यह सुझाव पसन्द आया। सभी स्थानों से, खासकर मिथिला से पण्डितों को बुलाया गया। विचार में पुत्रों की विजय हुई। पण्डितों को उनके तर्क के आगे हार स्वीकार करनी पड़ी।

+ \+ \+ \+

गाम्भिला गाँव में पण्डित गंगानारायण चक्रवर्ती रहते थे। कुलीन ब्राह्मण थे। विद्वान होने के कारण सभी लोग इनका सम्मान करते थे। अचानक एक दिन गाँव में ही हरिराम और रामकृष्ण से मुलाकात हुई। इन्हें देखते ही गंगानारायण क्रोध से आग बबूला होकर बोले— ''तुम लोग स्वयं पण्डित हो, इतने बड़े विद्वान के पुत्र हो, फिर कैसे शूद्र से मंत्र लिया? घृणा नहीं हुई? छिः, बड़ी लज्जा की बात है।''

दोनों भाइयों ने कहा— ''भगवान् की दृष्टि में शूद्र और ब्राह्मण में कोई भेद नहीं है। जो उनका भक्त है, वही ब्राह्मण है।''

इन लोगों में इसी प्रकार तर्क होता रहा, पर गंगानारायण ने पराजय स्वीकार नहीं की। लेकिन उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि दोनों पहले की अपेक्षा काफी नम्र हो गये हैं और व्यवहार मधुर ढंग से कर रहे हैं। केवल इसी गुण के कारण उनकी उत्सुकता वैष्णव-धर्म के प्रति बढ़ी।

वे दोनों भाइयों को अपने घर ले गये। वहाँ काफी देर तक इनसे बातें करते रहे। इन दोनों भाइयों की बातों से वे अत्यन्त प्रभावित हुए। अन्त में एक दिन उन्होंने नरोत्तम ठाकुर के पास आकर दीक्षा ली।

गंगानारायण के मंत्र लेने का समाचार सुनते ही सारा ब्राह्मण-समाज कुपित हो गया। इस अशास्त्रीय अपराध के न्याय के लिए पण्डितों का दल राजा नरसिंह के दरबार में पहुँचा और कहा— ''आप हमारे राजा हैं। हम लोग कृष्णानन्द के पुत्र नरोत्तम ठाकुर को शास्त्रार्थ में परास्त करके इस क्षेत्र से भगा देंगे।''

राजा नरसिंह भक्तिमान पुरुष थे। वे स्वयं नरोत्तम ठाकुर का दर्शन करना चाहते थे। ब्राह्मणों की जिद्द पर वे उन्हें साथ लेकर खेतरी के समीप कुमारपुर आये। यहीं शास्त्रार्थ करने का निश्चय किया गया।

इस समाचार को सुनकर गंगानारायण और रामचन्द्र ने आपस में सलाह करके यह निश्चय किया कि वे दोनों कुम्हार तथा तमोली के छद्मवेश में बाजार जायेंगे। एक हँड़िया बेचेगा और दूसरा पान। यह निश्चित है कि वहाँ पण्डितों के विद्यार्थी सामान खरीदने आयेंगे तब उन्हें परेशान किया जायगा।

इन दोनों ने जैसी कल्पना की थी, ठीक उसी प्रकार की घटना हुई। एक विद्यार्थी ने रामचन्द्र से पान का भाव पूछा तो उसने संस्कृत में उत्तर दिया। विद्यार्थी ने चौंककर पूछा— ''क्या तुम संस्कृत जानते हो?''

रामचन्द्र ने संस्कृत में उत्तर दिया— ''मेरा घर खेतरी गाँव में है। क्या तुम्हें नहीं मालूम कि वहाँ नरोत्तम ठाकुर रहते हैं। वहाँ का निवासी होने के कारण उनसे सुन-सुनकर हम लोगों ने संस्कृत भाषा सीखी है। तुम लोग क्या पढ़ते हो?''

विद्यार्थी ने बड़े गर्व के साथ बड़े-बड़े ग्रंथों के नाम बताये। रामचन्द्र ने उन ग्रंथों में से प्रश्न किया तो विद्यार्थी ने कहा— "हम लोग सामान्य लोगों से तर्क नहीं करते।"

बस, इतना सुनना था कि रामचन्द्र के साथ-साथ गंगानारायण विद्यार्थियों की खिल्ली उड़ाने लगे। बाजार में हलचल मच गयी। चारों ओर फैले विद्यार्थी आ गये। अब दोनों ओर से तर्क-युद्ध होने लगा। धीरे-धीरे विद्यार्थियों की हालत खराब होने लगी। एकाएक एक विद्यार्थी दौड़ा हुआ पण्डित-मण्डली के पास गया और कहा— "गुरुवर, जल्दी चलिये। बाजार में एक तमोली और कुम्हार के आगे सभी विद्यार्थी शास्त्रार्थ में पराजित होते जा रहे हैं।"

सभी पण्डित और उनके साथ राजा साहब भी घटनास्थल पर आये। छोटी जातिवालों को शास्त्रार्थ करते देख पण्डित-मण्डली उन्हें मारने को उद्यत हुई। राजा साहब ने कहा— "यह गलत काम है। शर्त यह थी कि शास्त्रार्थ में पराजित करोगे। मारपीट न्याय का रास्ता नहीं है।"

शास्त्रार्थ में भक्ति-शास्त्र का प्रसंग छिड़ गया। इस विषय पर पण्डितों का अध्ययन नहीं था। पण्डितों का दल मौन रह गया। राजा ने न्याय का पक्ष लिया। सभी चुपचाप वापस लौट गये।

इस घटना के बाद एक दिन राजा साहब अपने पार्षदों के साथ खेतरी गाँव आये। नरोत्तम ठाकुर ने अत्यन्त आदर के साथ उनका स्वागत किया।

राजा ने कहा— "मैं आपकी शरण में आया हूँ। कृपया मुझे ग्रहण कीजिए।"

राजा तथा उनके भाई ने ठाकुर से मंत्र लेकर शिष्यत्व स्वीकार किया। कई दिनों तक वहाँ कीर्तन होता रहा। इस प्रकार गाम्भिला के अनेक लोगों ने वैष्णव-धर्म को अपना लिया।

+ \+ \+ \+

गौड़ के समीप ही एक राज्य के राजा राघवेन्द्र राय थे। आपके दो पुत्र थे— संतोष राय और चाँद राय। राज्य में पाँच हजार घुड़सवार और दस हजार पैदल सैनिक थे। शक्ति मंत्र के उपासक होने के अलावा वे अत्यन्त नृशंस थे। आपका लड़का चाँद राय सख्त बीमार था। काफी इलाज कराया गया। झाड़-फूँक, शान्ति स्तवन कराया गया, पर इससे कोई लाभ नहीं हुआ। लड़के की इस दशा से पूरा परिवार चिन्तित था।

इन्हीं दिनों दरबार के किसी सज्जन ने सुझाव दिया कि अगर आप नरोत्तम ठाकुर को यहाँ ले आयें तो उनके आशीर्वाद से आपका पुत्र ठीक हो सकता है।

राघवेन्द्रजी अब तक नरोत्तम ठाकुर के बारे में अनेक बातें सुन चुके थे, फिर भी उनके प्रति इनके मन में श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई थी। बाद में काफी ऊहापोह करने के बाद उन्होंने सोचा कि अगर नरोत्तम में कोई दैवी-शक्ति होगी तभी लड़का ठीक

हो सकता है। कृष्णानन्द सामान्य जमींदार थे। वहाँ लड़के को ले जाने में उन्हें संकोच हुआ। एक पत्र अपने आदमी के जरिये भेज दिया।

इस पत्र को पढ़ने के बाद कृष्णानन्द ने नरोत्तम को दिया। नरोत्तम ठाकुर ने कहा— "आप यह सब झमेला क्यों लेते हैं? मैं किसी का रोग दूर नहीं कर सकता।"

नरोत्तम ठाकुर का यही उत्तर राघवेन्द्र के पास गया। उसी दिन जब राघवेन्द्र रात को गहरी नींद में सो रहे थे तब उन्होंने स्वप्न में देखा— श्री दुर्गा माता आकर उनसे कह रही हैं— "तुम अपने पुत्र को नरोत्तम ठाकुर के पास ले जाओ। केवल यही नहीं, परिवार के सभी लोगों को ले जाओ तभी तुम्हारा कल्याण होगा।"

दूसरे दिन राघवेन्द्र ने पुनः एक पत्र कृष्णानन्द के नाम इस आशय का लिखा— मेरा अनुरोध है कि आप श्री नरोत्तम ठाकुर को यहाँ भेज दें। लड़के की ऐसी स्थिति नहीं है कि वहाँ तक ले जा सकूँ। यहाँ आने पर वे स्वयं प्रत्यक्ष रूप में देख लेंगे। अगर लड़के की स्थिति ठीक होती तो मैं स्वयं इसे लेकर उनके चरणों में उपस्थित होता।

इस पत्र को पाकर नरोत्तम ने रामचन्द्र से सलाह माँगी। रामचन्द्र ने कहा— "शुभस्य शीघ्रम।"

अब नरोत्तम ठाकुर ने कहा— "गौरांग महाप्रभु क्या आदेश देते हैं, इसकी जानकारी प्राप्त कर लूँ।"

आम लोग इस बात पर विश्वास करते थे कि नरोत्तम ठाकुर एकान्त में महाप्रभु गौरांग से वार्तालाप करते हैं। यही कारण है कि लोग उनका भजन करते हैं, भक्ति करते हैं, उन पर विश्वास करते हैं।

उस दिन स्वप्न में नरोत्तम ठाकुर ने देखा— गौरांग महाप्रभु कह रहे हैं कि नरोत्तम, जीव का उपकार करना परम-धर्म है। इसके लिए क्यों ऊहापोह कर रहे हो? कल सबेरे चले जाओ।

दूसरे दिन रामचन्द्र से सारी बातें हुईं। यह समाचार खेतरी के लोगों तक पहुँच गयी। बहुत से लोग नरोत्तम ठाकुर के साथ पैदल चलने को तैयार हो गये।

नरोत्तम ठाकुर हमारे गाँव आ रहे हैं, जब यह समाचार राघवेन्द्र राय के नगर के लोगों को मालूम हुआ तब वे हर्ष से नृत्य करने लगे। ठाकुर के स्वागत के लिए नगर को सजाया गया।

राजमहल में पहुँचते ही पैर धोने के पश्चात् नरोत्तम ठाकुर ने कहा— "मुझे शीघ्र रोगी के पास ले चलिये।"

नरोत्तम ठाकुर को अपने साथ लेकर राघवेन्द्र अपने पुत्र के कमरे में आये। बिस्तर पर बैठकर उसे गोद में उठाते हुए राघवेन्द्र ने कहा— "बेटा, ठाकुर आये हैं, इन्हें प्रणाम करो।"

लड़के के मुँह से किसी और की आवाज निकली— "मैं ब्राह्मण हूँ। हमेशा मैंने कुकर्म किया। जैसा मैं हूँ, ठीक उसी प्रकार चाँद राय का रहा है। इसी कारण इसके शरीर के आश्रय में हूँ। आपके शुभागमन से मेरा उद्धार हो गया। अब मैं मुक्त होकर जा रहा हूँ। ठाकुर महाशय, आपके चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।"

इतना कहने के बाद चाँद राय एक भयानक चीख के साथ शय्या पर गिर पड़ा। पानी के छींटे तथा हवा करने पर जब वह होश में आया तब उसके भाई संतोष राय ने कहा— "दादा, देखो ठाकुर महाशय आये हैं। आपके प्रभाव से तुम्हें पीड़ा देनेवाला, ब्रह्मदैत्य भाग गया। अब तुम ठाकुर महाशय को प्रणाम करो।"

चाँद राय के प्रणाम करने के बाद परिवार के सभी सदस्य और उपस्थित लोग ठाकुर का चरण स्पर्श करने लगे। जिस राघवेन्द्र राय के नाम से पड़ोसी राज्य के लोग हमेशा काँपते आये हैं, उसी परिवार के लोग आज एक कायस्थ के चरणों पर सिर रख रहे थे।

ठाकुर महाशय का प्रभाव चाँद राय पर इस प्रकार पड़ा कि उन्होंने जमींदारी का सारा कामकाज दूसरों को सौंप दिया। इस समाचार को सुनकर स्थानीय नवाब ने नाराज हो इन्हें गिरफ्तार कर लिया। चाँद राय को अपनी गिरफ्तारी की तनिक भी चिन्ता नहीं हुई। इन दिनों उनके हृदय में नरोत्तम ठाकुर की अभय वाणी काम कर रही थी।

बादशाह ने हुक्म दिया कि तुम मुस्लिम-धर्म स्वीकार कर लो वर्ना हाथी के पैरों तले कुचल दिये जाओगे। चाँद राय ने इस शर्त को स्वीकार नहीं किया। फलस्वरूप उन्हें मौत की सजा सुनाई गयी।

निश्चित दिन मैदान में एक हाथी को शराब पिलाकर लाया गया। बादशाह ने कहा— "हाथी तुम्हें कुचलने को तैयार है। अब भी मेरा हुक्म मानकर मुसलमान बन जाओ।"

चाँद राय ने कहा— "जहाँपनाह, भगवान् की कृपा होगी तो मेरा कुछ नहीं होगा। मुझे आप हाथी के पैरों तले कुचलने का आदेश दे सकते हैं।"

इतना कहने के पश्चात् चाँद राय 'हरे कृष्ण' कीर्तन करते हुए हाथी की ओर बढ़ गये। भगवान् के प्रति चाँद राय की इस आस्था को देखकर बादशाह चमत्कृत हुआ। उसने हाथ के इशारे से महावत को रोक दिया। इसके बाद बादशाह तख्त से उतरकर चाँद राय के पास आये और उसे गले से लगाते हुए बोले— "तुम्हारे हिम्मत की दाद देता हूँ।"

कई दिनों तक अपने यहाँ मेहमान रखने के बाद बादशाह ने पाँच सौ अश्वारोही सैनिकों के साथ उन्हें वापस भेज दिया। चाँद राय अपने घर न जाकर खेतरी की ओर रवाना हो गये।

इधर पुत्र के गिरफ्तार हो जाने के बाद राघवेन्द्र राय का दिल टूट गया। अपने शोक संतप्त हृदय में शान्ति देने के लिए वे खेतरी चले गये। यहाँ वे नरोत्तम ठाकुर के कीर्तन में भाग लेते हुए पुत्र-शोक को भुलाने लगे।

सहसा एक दिन चाँद राय को सकुशल वापस आते देख राघवेन्द्र राय का आनन प्रसन्नता से चमक उठा।

तभी चाँद राय ने नरोत्तम ठाकुर के चरणों पर मस्तक रखते हुए कहा— ''तुम्हारे दासों पर कभी विपत्ति नहीं आ सकती प्रभो।''

+ + + +

समय गुजरता गया। कई बसन्त आये और सकुशल चले गये। महाप्रभु गौरांग का संदेश समस्त गौड़ देश में फैलता गया और फिर अन्य प्रदेशों में भी भक्तगण इससे अनुप्राणित होते गये। इस कार्य में नरोत्तम ठाकुर तथा उनके शिष्य लगे रहे।

धीरे-धीरे नरोत्तम ठाकुर के शरीर पर बुढ़ापा असर दिखाने लगा। अब पहले की तरह उनसे भजन करते नहीं बनता। कभी-कभी स्तव पाठ करते समय कह उठते थे— ''हे गौरांग, अब मुझे अपने चरणों में स्थान दो। मैं बहुत दुर्बल होता जा रहा हूँ।''

एकाएक एक दिन नरोत्तम ठाकुर ने अपने शिष्यों से कहा— ''मैं गाम्भिला जाऊँगा।''

इस निश्चय के बाद वे अपने भक्तों के साथ गाम्भिला रवाना हो गये। यहाँ वे गंगानारायण के घर ठहरे। गाम्भिला निवासी पुनः अपने निकट नरोत्तम ठाकुर को पाकर हर्ष से आत्मविभोर हो उठे। नित्य भजन का कार्यक्रम चलने लगा।

कार्त्तिक महीना था। कृष्णपक्ष की पंचमी तिथि के दिन कमर भर पानी में बैठे नरोत्तम ठाकुर अवगाहन करने लगे। गंगानारायण और रामकृष्ण उनके शरीर को रगड़ते रहे।

ठीक इसी समय गंगा की एक ऊँची लहर आयी और नरोत्तम ठाकुर को अपने अंक में लेकर न जाने कहाँ विलीन हो गयी। कुछ देर तक गंगानारायण चारों ओर देखते रहे। सहसा स्वयं आत्मोत्सर्ग करने के लिए वे दौड़ पड़े। उनका उद्देश्य समझते ही कुछ लोगों ने उन्हें कसकर पकड़ लिया।

पूरे गाँव में यह समाचार दावानल की तरह फैल गया और फिर दूर-दूर तक फैलता गया। विभिन्न स्थानों से भक्तगण गाम्भिला में आने लगे। इन भक्तों को लेकर राजा रूपनारायण, चाँद राय, नरसिंह आदि खेतरी गाँव आये जहाँ नरोत्तम ठाकुर की स्मृति में वृहद् उत्सव हुआ।

आज भी प्रत्येक वर्ष कार्त्तिक कृष्णपक्ष की पंचमी तिथि को खेतरी गाँव में ठाकुर की स्मृति में मेला लगता है और भजन-कीर्तन होता है।

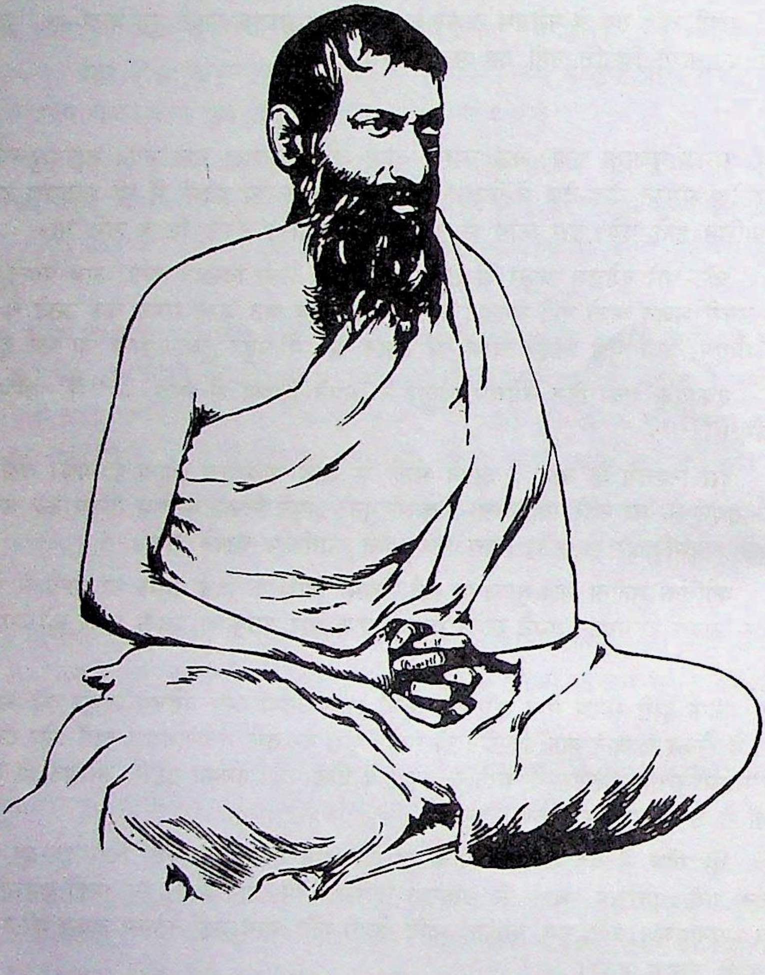

श्रीम

श्रीम

मायावती अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष स्वामी अनन्यानन्द के निकट एक दिन एक विदेशी पर्यटक आया और कहा—"क्या आप कृपा करके कोई ऐसा गाइड दे सकते हैं जो मुझे दक्षिणेश्वर मंदिर दर्शन करा दे। मेरे पास समय कम है। पाँच घण्टे बाद मेरा हवाई जहाज यहाँ से रवाना होनेवाला है। इस थोड़े समय के भीतर उस पवित्र स्थान का दर्शन करना चाहता हूँ।"

इसके पूर्व किसी विदेशी ने स्वामीजी से ऐसा अनुरोध नहीं किया था। इस विदेशी के आग्रह को सुनकर उन्होंने उत्सुकतावश पूछा—"आप वहाँ क्यों जाना चाहते हैं?"

विदेशी ने अपना आत्म-परिचय देते हुए कहा—"मैं आइसलैण्ड का निवासी हूँ। एक अर्सा पहले मिस्टर श्रीम लिखित 'गस्पेल आव श्रीरामकृष्ण' पढ़कर अत्यन्त प्रभावित हुआ। बहुत दिनों से इच्छा थी कि भारत जाकर उस पवित्र स्थान का दर्शन करूँगा जहाँ वह महान् योगी लेखक को ज्ञान देता रहा। अपने व्यापार के सिलसिले में आज भारत में रुकना पड़ रहा है। इस समय का सदुपयोग करना चाहता हूँ।"

पर्यटक की बातों से स्वामी अनन्यानन्द इतने प्रभावित हुए कि किसी अन्य को न भेजकर स्वयं गाइड के रूप में उसे दक्षिणेश्वर ले आये। उक्त पर्यटक परमहंसजी के निजी कमरे में जाकर स्तब्ध भाव से कुछ देर बैठा रहा। इसके बाद बाहर निकलकर उसने कहा—"आज मेरे जीवन की एक अभिलाषा पूरी हो गयी। मैं एक अर्से से यहाँ आना चाहता था।"

दक्षिणेश्वर से वह यात्री सीधे दमदम हवाई अड्डे की ओर रवाना हो गया। भारत के अन्य स्थानों को देखने की इच्छा उसकी नहीं हुई।

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ने जिन्हें 'मास्टर महाशय' कहा जाता था, श्रीम के उपनाम से बंगला में सर्वप्रथम 'रामकृष्ण कथामृत' लिखा। पुस्तक छपने के साथ ही वह जनता में लोकप्रिय हो गयी। भारत में उड़िया, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मराठी, गुजराती, मलयालम तथा हिन्दी में अनुवाद हो गया। इस पुस्तक का प्रथम खण्ड श्रीम ने अंग्रेजी में अनुवाद किया जिसका प्रथम प्रकाशन दिसम्बर, १९०७ ई० को न्यूयार्क स्थित वेदान्त

सोसायटी की ओर से हुआ। समग्र यूरोप में हलचल मच गयी। देखते ही देखते चेक, डेनिस, फ्रेंच, जर्मन, इतालवी, स्पेनिश, स्वीडिश आदि भाषाओं में अनुवाद हुए।

इस पुस्तक के बारे में स्वामी विवेकानन्द ने एक पत्र में श्रीम को लिखा—"तोफा हुआ है बन्धु तोफा। इतने दिनों बाद आपने ठीक कार्य में हाथ लगाया। आपको अनेक लोग आशीर्वाद देंगे, पर अधिकतर लोग अभिशाप देंगे। इसके पहले कभी किसी महान् आचार्य की जीवनी को किसी ने अपने मन के रंगों में रंगकर नहीं लिखा था जिसे आपने कर दिखाया। भाषा तो प्रशंसा के अतीत है—इतना सजीव, तीक्ष्ण, प्रत्यक्ष और स्वच्छन्द है, क्या कहूँ। अब समझ में आया कि हम लोगों में से किसी ने उनकी जीवनी लिखने का प्रयत्न क्यों नहीं किया।"

स्वामी ब्रह्मानन्द ने एक दिन अपने भक्त और शिष्यों से कहा था—"तुम लोगों को क्षण भर में ब्रह्मज्ञान दे सकता हूँ।" इसके बाद कथामृत पुस्तक दिखाते हुए उन्होंने कहा—"इस ग्रन्थ के अध्ययन से ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।"

मनीषी रोमां रोला ने इस पुस्तक को पढ़ने के बाद श्रीम को एक पत्र लिखा—"संभवतः आपने सुना होगा कि मैंने श्री रामकृष्णजी की जीवनी फ्रांसीसी भाषा में लिखने का संकल्प किया है। आपकी कृति श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत के प्रति मेरी असीम श्रद्धा है और इसके लिए मैं ऋणी हूँ। अगर आप अनुमति दें तो मैं कुछ प्रश्नों का उत्तर आपसे प्राप्त करना चाहता हूँ। सुना है कि आपके गुरु शिक्षित नहीं थे। यहाँ तक कि वे पूर्णतः निरक्षर थे। जो कुछ ज्ञान था, वह जबानी सुनकर ही था। यह कैसा ज्ञान है, कौन जाने। यूरोप में इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।"

पत्र काफी बड़ा है और परमहंसजी के बारे में अनेक प्रश्न पूछे गये थे जिनका उत्तर श्रीम ने दिया था। संसार के इतिहास में श्रीम ही एक ऐसे लेखक हुए जिनकी एक कृति से सम्पूर्ण विश्व आकर्षित हुआ था।

१४ जुलाई, सन् १८५४ ई० को श्री मधुसूदन गुप्त के यहाँ एक पुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम रखा गया—महेन्द्रनाथ। कलकत्ता के सिमलापल्ली स्थित शिवनारायण दास लेन में गुप्तजी सपरिवार रहते थे। चार पुत्र और तीन पुत्रियों में महेन्द्रनाथ तृतीय सन्तान थे।

रानी रासमणि ने दक्षिणेश्वर में काली माता का एक वृहद् मंदिर बनवाया था जहाँ पुजारी के रूप में परमहंस रामकृष्णजी रहते थे।

जिन दिनों महेन्द्रनाथ की उम्र चार साल की थी, उन दिनों माँ तथा मुहल्ले के लोगों के साथ वे यहाँ के मेले में आये। मेला घूमते समय अचानक बालक को ज्ञात हुआ कि वह अपनी माँ से बिछड़ गया है। भय से व्याकुल होकर वह रोने लगा।

परमहंस की अतीन्द्रिय शक्ति को अपने भावी एक भक्त की सूचना मिली। वे

बाहर आये और बालक के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—''चुप हो जा बेटा। मैं तेरी माँ को खोजता हूँ।''

अबोध बालक इस स्नेह-स्पर्श से शान्त हो गया। माँ की तलाश करने के बाद परमहंसजी ने बालक को उनके हाथ सौंप दिया। लेकिन कोई यह नहीं जान सका कि बालक पर रामकृष्णजी की कृपा-दृष्टि पड़ गयी है। अब उसके भावी जीवन के डोर का संचालन यहीं से होगा। बालक के भविष्य का सारा दृश्य चित्रपट की भाँति परमहंसजी के सामने से गुजर गया। परमहंसजी प्रारंभ से ही दो भक्तों पर विशेष कृपा करते थे। इनमें प्रथम थे—नरेन्द्रनाथ और द्वितीय थे—महेन्द्रनाथ। नरेन्द्रनाथ स्वामी विवेकानन्द हुए और महेन्द्रनाथ 'मास्टर महाशय।'

महेन्द्रनाथ में बचपन से ही कुछ ऐसी आदतें थीं जो कि आमतौर पर सामान्य बच्चों में नहीं पाई जातीं। स्कूल या बाजार जाते समय जितने मंदिर दिखाई देते, सभी के आगे ठहरकर प्रणाम करके आगे बढ़ते थे। दुर्गा-पूजा के अवसर पर वे मृन्मयी मूर्ति के सामने दीर्घकाल तक बैठे रहते थे। तेरह वर्ष की उम्र से उन्होंने डायरी लिखना प्रारंभ किया था। उन दिनों वे आठवें दर्जे के विद्यार्थी थे। जब कालेज में भर्ती हुए तव रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद तथा चैतन्य चरितामृत बराबर पढ़ने लगे। कालिदास की रचनाएँ, दर्शन, इतिहास और साहित्य आपके प्रिय विषय थे। बातचीत के सिलसिले में वे उन ग्रंथों से उद्धरण देते थे।

जिन दिनों आप बी०ए० में पढ़ते थे तभी आपका विवाह हो गया। कालेज में पढ़ते समय कानून के अलावा संस्कृत ग्रंथों का निरन्तर अध्ययन करते रहे। जिन दिनों महेन्द्रनाथ डायरी लिखना प्रारम्भ किया था, उन्हीं दिनों परमहंसजी ने आप में शक्ति-संचार किया था। एल-एल०बी० करने के पश्चात् आप वकालत करना चाहते थे, पर अदृश्य-शक्ति ने वकालत करने नहीं दिया। बाद में जब आप आई०सी०एस० हुए तब विदेश जाने की तैयारी करने लगे ताकि यहाँ आकर उच्चाधिकारी बने। उस समय भी परमहंसजी का चक्र चला और आप विदेश नहीं जा सके। अगर वे विदेश जाते तो उनका मार्ग बदल जाता, फिर परमहंसजी का व्यास कौन बनता?

परमहंसजी के तिरोधान के काफी दिनों बाद 'गुप्त भारत की खोज' पुस्तक के लेखक श्री पाल ब्रण्टन मास्टर महाशय से मिलने आये। बातचीत के सिलसिले में पाल ने कहा—''क्या आप अपने गुरुदेव के बारे में कुछ कहना पसन्द करेंगे?''

श्रीम ने कहा—''यह तो मेरा प्रिय विषय है। उन दिनों मेरी उम्र सत्ताइस वर्ष की थी जब उनका दर्शन प्राप्त किया था। इसके बाद पाँच वर्ष तक उनके परिमण्डल में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फलस्वरूप मुझे नया जीवन प्राप्त हुआ। मेरे जीवन की धारा बदल गयी। उस देव मानव का मुझ पर व्यापक प्रभाव पड़ा। केवल मैं ही नहीं, अन्य जितने लोग उनके सम्पर्क में आये, उन सभी पर आध्यात्मिक प्रभाव पड़ा था। यहाँ तक कि जड़वादी लोग जो उन्हें गाली देने आये थे, उनकी बोलती बन्द हो गयी थी।''

पाल ने प्रश्न किया—"जो लोग ईश्वर को नहीं मानते या अध्यात्म के प्रति आस्था नहीं रखते, वे कैसे प्रभावित हो सकते हैं?"

श्रीम मुस्करा उठे। बोले—"मान लीजिए दो व्यक्ति हैं। दोनों मिर्च खाते हैं। इनमें एक ने कभी मिर्च देखा नहीं और दूसरा मिर्च से भलीभाँति परिचित है, वह समझ जाता है कि उसने क्या चबाया है। मगर दोनों की अनुभूति एक प्रकार की है यानी तीता लगना। यही वजह है कि श्री रामकृष्ण के आध्यात्मिक विराटत्व के सम्बन्ध में जानकारी न रहने पर भी जड़वादी लोग उनके शरीर से निकलनेवाली ऐश्वरिक ज्योति का प्रभाव अनुभव कर चुके हैं।"

कुछ देर ठहरकर पुन: उन्होंने कहा—"गुरुदेव ने मुझसे कहा था—तुम्हारी आँखें, भौंह, कपाल और चेहरे का चिह्न देखकर मैंने तुम्हें पहचान लिया है कि तुम एक योगी हो। तुम अपना काम करते रहो, पर मन ईश्वर की ओर रखो। जिस प्रकार बड़े घर की नौकरानियाँ मालिक के यहाँ नौकरी करती हैं। उनके बच्चों की देखरेख करती हैं, पर उसका मन घर पर छोड़ आये अपने बच्चों के प्रति लगा रहता है। ठीक इसी प्रकार एक बार मेरे मन में संन्यास-ग्रहण करने की प्रबल इच्छा जागृत हुई। उनसे निवेदन करने पर उत्तर मिला—'तुम्हें संन्यासी बनकर अपने घर में रहना होगा।' मैंने सोचा कि राखाल, तारक, योगेन आदि को गुरुदेव ने संन्यास दिया तो मेरे बारे में आपत्ति क्यों? वे लोग भी विवाहित हैं। इस बार उन्होंने डाँटकर कहा कि तुम्हें गृहस्थाश्रम में रहते हुए काम करना है। बाद में एक दिन मुझे तांत्रिक-संन्यास दिया गया था।"

+ \+ \+ \+

२६ फरवरी, सन् १८८२, रविवार के दिन महेन्द्रनाथ ने सर्वप्रथम अपने आराध्य देव को देखा। सिद्धेश्वर मजूमदार के भवन में अनेक लोगों के बीच बैठे रामकृष्णजी हरिकथा सुना रहे थे। महेन्द्रनाथ अवाक् होकर सुनते रहे।

परमहंसजी कह रहे थे—"जब एक बार हरि या राम कहने पर शरीर रोमांचित हो या अश्रुपात हो तब समझ लेना कि अब संध्या-पूजन की आवश्यकता नहीं है। उस समय कर्म त्याग का अधिकार प्राप्त हो जाता है, कर्म का त्याग अपने आप हो जाता है।"

इस दर्शन के बाद महेन्द्रनाथ का हृदय न जाने क्यों व्याकुल हो उठा। वे दक्षिणेश्वर मंदिर की ओर रवाना हो गये। यहाँ आने पर उन्होंने देखा—कमरे के भीतर रामकृष्णजी मौन बैठे हैं। महेन्द्रनाथ को किसी ने यह बताया था कि शाम के वक्त परमहंसजी कभी-कभी समाधिस्थ हो जाते हैं।

यह बात मन में आते ही महेन्द्रनाथ बोल उठे —"इस वक्त आप संध्या कर रहे हैं। ठीक है, मैं फिर कभी आऊँगा।"

भावस्थ रामकृष्ण ने कहा—''नहीं। मैं संध्या नहीं कर रहा हूँ।''

महेन्द्रनाथ भीतर आये। कुछ देर बातें होती रहीं। बाद में रामकृष्णजी ने कहा—''फिर कभी आना।''

लौटते समय महेन्द्रनाथ ने अनुभव किया जैसे वे साक्षात् भगवान् से मिलकर आ रहे हैं। उन्हें इसकी जानकारी नहीं हुई कि रामकृष्णजी इसी प्रकार सात्त्विक पुरुषों को पहचानकर अपना भक्त बनाते हैं। रामकृष्ण के प्रभाव का उन पर असर इस तरह बढ़ा कि महेन्द्रनाथ निरन्तर यहाँ आने लगे।

एक दिन रामकृष्णजी ने इन्हें देखकर कहा—''अरे, यह फिर आ गया। पता नहीं, इस शरीर में क्या है। जो एक बार आता है, वह अफीमचियों की तरह ठीक समय पर चला आता है।'' बातचीत के सिलसिले में उन्होंने महेन्द्रनाथ से पूछा—''तुम साकार में विश्वास करते हो या निराकार में?''

महेन्द्रनाथ इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि साकार और निराकार दोनों ही ईश्वर की अवस्था है। कुछ देर चुप रहने के बाद उन्होंने कहा—''मुझे निराकार अच्छा लगता है।''

रामकृष्णजी ने कहा—''यह ठीक है। किसी एक पर विश्वास करना चाहिए। निराकार में विश्वास रखना उचित है, पर यह मत समझना कि यही सत्य है बाकी सब मिथ्या। दोनों ही सत्य है।''

महेन्द्रनाथ—''मानता हूँ कि साकार में विश्वास हुआ, पर वह तो मिट्टी का पुतला है।''

रामकृष्ण—''मिट्टी क्यों? वह तो चिन्मयी प्रतिमा है।''

महेन्द्रनाथ के अहं को धक्का लगा। रामकृष्णजी के साथ यही उनका प्रथम और अन्तिम तर्क था। रामकृष्णजी धीरे-धीरे उनका निर्माण करते गये। महेन्द्रनाथ ने स्वयं अनुभव किया कि इस विराट्-संसार के कर्णधार ठाकुर रामकृष्ण हैं।

पुनः महेन्द्रनाथ ने पूछा—''ईश्वर को कैसे स्मरण किया जाय?''

रामकृष्ण—''ईश्वर का गुण-गान सर्वदा करते रहना चाहिए। कभी-कभी निर्जन स्थान में जाकर चिन्तन करना चाहिए। पहले पहल निर्जन स्थान में ईश्वर को स्मरण करना कठिन होता है। जिस प्रकार पौधे को लगाते समय बकरी-गाय से बचाने के लिए काँट या ईंटों का घेरा बनाया जाता है, उसी प्रकार ईश्वर का ध्यान प्रारंभ में निर्जनता के घेरे में करना चाहिए। घर पर काम करते समय भी उनका चिन्तन आवश्यक है। जिस प्रकार कछुआ पानी में रहता है, पर उसका ध्यान अपने अण्डों की ओर लगा रहता है जिसे उसने किनारे रख छोड़ा है।''

आगे रामकृष्णजी ने इस प्रश्न की सरल व्याख्या करते हुए कहा—"भक्ति के लिए निर्जन स्थान होना चाहिए। जिस प्रकार दही जमाने के लिए निर्जन स्थान की जरूरत होती है। अगर अथरी को ज्यादा हिलाया-डुलाया गया तो दही ठीक से नहीं जमती। उसी प्रकार भक्ति के लिए निर्जन स्थान आवश्यक है। दही के मथने पर ही मक्खन निकलता है।"

महेन्द्रनाथ ने अनुभव किया कि इस तरह उदाहरण देकर सरल ढंग से ईश्वर-भक्ति-के बारे में कोई नहीं समझाता। ठाकुर आसपास की घटनाओं तथा तथ्यों के उदाहरण देकर विषय को सरल बना दे रहे हैं।

निर्जन स्थान के महत्व पर प्रकाश डालते हुए आगे ठाकुर ने कहा—"संसार पानी है और मन दूध। अगर इसकी उपेक्षा करोगे तो पानी-दूध एक में मिल जायगा। शुद्ध दूध नहीं मिलेगा। दूध को दही बनाओ और उससे मक्खन निकालकर पानी में रखो तो वह तैरता दिखाई देगा। इसीलिए निर्जन स्थान में साधना करनी चाहिए, तभी ज्ञान-भक्ति का नवनीत प्राप्त करोगे। संसार के पानी में उसे रखने पर यह घुल नहीं सकता।"

इस उदाहरण से महेन्द्रनाथ की शंका दूर नहीं होती। वे स्पष्ट रूप से यह जान लेना चाहते हैं कि क्या ईश्वर प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देते हैं?

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् रामकृष्ण ने कहा—"व्याकुल होकर पुकारने पर वे जरूर दर्शन देते हैं। लोग पत्नी और बच्चों के लिए रोते हैं। धन के शोक में रोते हैं, पर ईश्वर के लिए कौन रोता है? बच्चे के प्रति माँ का आकर्षण, पति के प्रति सती का आकर्षण और विषयी का विषय पर आकर्षण रहता है। इन तीनों आकर्षणों को एक में मिलाकर ईश्वर के प्रति व्याकुलता दिखाओ तब देखोगे कि वे दर्शन देने आ गये हैं।"

परमहंस रामकृष्णजी दिल खोलकर महेन्द्रनाथ को उदाहरण सहित उपदेश देते रहे। उन्हें ज्ञात था कि मेरा यह प्रिय शिष्य आगे चलकर संसार के लोगों को मेरे विचार संदेश के रूप में प्रचारित करेगा।

महेन्द्रनाथ गुप्त अधिकतर जो प्रश्न करते और उसका जो उत्तर रामकृष्णजी से मिलता, उन सभी बातों को वे नित्य डायरी में लिखा करते थे। केवल यही नहीं, परमहंसजी से कब, कौन मिला, उसने कौन-सा प्रश्न किया, परमहंसजी ने क्या जवाब दिया, वे कब किसके यहाँ गये, वहाँ क्या-क्या हुआ, इन सारी बातों को वे बराबर लिखते रहे। आगे चलकर यही सामग्री 'श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत' के नाम से प्रकाशित हुई।

महेन्द्रनाथ गुप्त परमहंस की मण्डली में 'मास्टर महाशय' के नाम से प्रसिद्ध थे। आप एक साथ तीन स्कूलों के हेडमास्टर थे। तत्कालीन समाज के अनेक मूर्धन्य विद्वान,

राजनेता और समाजसेवी आपके छात्र थे। यहाँ तक कि परमहंसजी के अनेक शिष्य भी आपके शिष्य थे।

एक शिक्षक होने के कारण महन्द्रनाथ की ख्याति नहीं हुई बल्कि उनकी ख्याति हुई कथामृत पुस्तक के लेखक होने के कारण। पहले वे 'श्रीम' उपनाम से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे। बहुत दिनों तक लोग यह नहीं जान सके कि इन धारावाहिक लेखों का लेखक कौन है?

कुछ दिनों बाद एक दिन रामकृष्णजी ने पूछा—"आजकल ईश्वर-चिन्ता किस प्रकार कर रहे हो? साकार अच्छा लग रहा है या निराकार?"

महेन्द्रनाथ—"साकार की ओर मन नहीं लग रहा है, दूसरी ओर निराकार में मन जम नहीं रहा है।"

परमहंसजी—"निराकार में मन जल्द स्थिर नहीं होता। पहले साकार ठीक है।"

इस प्रकार धीरे-धीरे रामकृष्णजी के प्रति उनका आकर्षण बढ़ता गया। यहाँ तक कि स्कूल से चलकर जब अचानक भक्तों से घिरे रामकृष्णजी के पास पहुँच जाते तब वे पूछते—"कैसे आये? क्या आज छुट्टी है?"

महेन्द्रनाथ का स्कूल पास ही था। वे जवाब देते—"स्कूल से आ रहा हूँ। इस वक्त कोई विशेष कार्य नहीं था।"

भक्तों में से कोई परिहास करता—"जी नहीं, स्कूल से भाग आये हैं।"

यह बात सुनकर लोग हँस पड़ते। दूसरी ओर महेन्द्रनाथ सोचते—"यहाँ आये बिना रहा नहीं जाता। पता नहीं, कौन मुझे यहाँ खींच लाता है?"

महेन्द्रनाथ नगर के प्रतिष्ठित नागरिक, शिक्षक ही नहीं, बल्कि कई बच्चों के पिता थे। घर पर पिता, भाई तथा सुन्दर पत्नी थी। ऐसे परिवार का सदस्य अगर उन दिनों घर से बराबर बाहर रहे तो अच्छा नहीं समझा जाता था। परिवार में अशान्ति अलग से होती थी। लेकिन जिस व्यक्ति में ईश्वर-दर्शन की तीव्र लालसा हो, वह कैसे गृहस्थी में रह सकता है। घर में अशान्ति बढ़ने पर एक दिन रात को जब सभी लोग सो गये तब पत्नी और बच्चों को लेकर वे सीधे अपनी बड़ी बहन के यहाँ चले आये। इस प्रकार संयुक्त परिवार से अलग हो गये।

घरेलू बातचीत के सिलसिले में एक दिन महेन्द्रनाथ ने कहा—"मेरा लड़का।"

तुरंत रामकृष्णजी ने कहा—"कभी यह मत कहना कि मेरा लड़का। कहना—ईश्वर का लड़का। उन्होंने संतान को तुम्हारे पास भेजा है, केवल उसके माध्यम से उनकी सेवा करने के लिए।"

इस चेतावनी के बाद फिर कभी महेन्द्रनाथ ने 'मेरा लड़का-मेरी लड़की' शब्द का प्रयोग नहीं किया। इस घटना के अढ़ाई साल बाद जब उनके प्रथम पुत्र की मृत्यु

हो गयी तब उन्हें शोक नहीं हुआ। यहाँ तक कि लड़के की माँ की मानसिक स्थिति खराब हो गयी तब भी वे निस्पृह रहे। जब लड़कों की माँ रामकृष्णजी के निकट आतीं तब उनका शोक दूर हो जाता था।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन महेन्द्रनाथ ने कहा—''आजकल मैं अक्सर स्वप्न देखता हूँ। कल स्वप्न में देखा कि यह संसार जल से भरा हुआ है। चारों ओर अनन्त जलराशि है। कुछ नौकाएँ तैर रही हैं, बाकी डूब गयी थीं। मैं कुछ लोगों के साथ एक जहाज पर सवार था। ऐसे माहौल में देखा कि एक ब्राह्मण उस जलराशि पर से पैदल ही चला जा रहा है। मैंने उनसे पूछा—''आप कैसे जा रहे हैं?'' ब्राह्मण ने हँसकर कहा—यहाँ कोई कष्ट नहीं है। पानी के नीचे सहारा है। मैंने उनसे प्रश्न किया—इस वक्त आप जा कहाँ रहे हैं? उन्होंने कहा—भवानीपुर जा रहा हूँ। मैंने कहा—जरा ठहरिये, मैं भी आपके साथ चलूँगा।''

सारी कहानी सुनने के बाद रामकृष्णजी ने कहा—''अब तुम शीघ्र दीक्षा ले लो। समय हो गया है।''

६ दिसम्बर, सन् १८८३ के दिन दक्षिणेश्वर मंदिर के एक निर्जन स्थान पर महेन्द्रनाथ अपने आप में तन्मय होकर खड़े थे। सहसा उन्हें परमहंसजी की वाणी सुनाई दी—''होगा, तुम्हारा जल्द होगा। तुम्हारा समय आ गया है। समय के पूर्व चिड़िया अपने अण्डे को नहीं फोड़ती। सभी को अधिक तपस्या करनी पड़ती है, ऐसी बात नहीं है।''

इस चेतावनी के द्वारा रामकृष्णजी ने सूचित किया कि पिछले जन्म में इतनी तपस्या कर चुके हो कि योगी बन गये। अतएव इस जन्म में तुम्हें अधिक तपस्या की जरूरत नहीं होगी। असल में परमहंसजी शनैः-शनैः उनमें शक्ति-संचार करते रहे। संभवतः इसीलिए एक दिन बातचीत के सिलसिले में परमहंसजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था—''गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।''

इसके बाद एक दिन माँ (काली माता) के मंदिर में रामकृष्णजी उन्हें ले गये और माँ के चरणों पर उत्सर्ग कर दिया। माँ का ज्योतिर्मय रूप देखकर वे मातृ-स्नेह-सागर में अवगाहन करने लगे। ठाकुर ने कहा—''अब तुम्हें डरने की जरूरत नहीं। तुम पर माँ की कृपा हो गयी है।''

कुछ दिनों बाद बातचीत के सिलसिले में परमहंसजी ने कहा—''पता नहीं, तुम लोग ध्यान करते हो तो क्या देखते हो। एक दिन ध्यान के समय मैंने देखा—मेरे सामने रुपया, दुशाला, मिठाई और दो औरतें थीं। अपने मन से पूछा कि क्या तुझे इन सब चीजों की जरूरत है? मिठाई का स्वाद टट्टी की तरह लगा। औरतों को गौर से देखा तो उनके भीतर की सारी चीजें मल, मूत्र, नाड़ी, खून दिखाई देने लगीं। मेरे मन को एक भी चीज पसन्द नहीं आयी। यह बात याद रखो कि ध्यान में यह सब चीजें आयेंगी, लालच दिये जायेंगे। यहाँ साधक को अटल रहते हुए चरण-कमल पर ध्यान रखना होगा।

इसके अलावा मैं सर्वदा तुम्हारे पीछे रहूँगा। जर, जोरू और जमीन का त्याग करना जरूरी है। संन्यासियों को संचय नहीं करना चाहिए। ईश्वर का ही ऐश्वर्य है, मनुष्य ईश्वर को भूल जाता है और ऐश्वर्य को लेकर अहंकार करता है।''

+ \+ \+ \+

एक ओर परमहंसजी ज्ञान देकर अपने व्यास को सही मार्ग पर ला रहे थे और दूसरी ओर महेन्द्रनाथ अपने गुरुदेव के उपदेशों का संकलन करते जा रहे थे। नये भक्तों से अक्सर कहा करते थे—''आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मास्टर के पास जाकर उपदेश सुनो।'' परमहंसजी इसी बहाने 'कथामृत' के लेखक को प्रेरणा देते रहे।

केवल यही नहीं, अपने सबसे छोटे शिष्य सुबोधानन्द से भी परमहंस ने कहा था—''कभी-कभी महेन्द्र मास्टर के यहाँ भी जाना।''

उन दिनों सुबोधानन्दजी छात्र-जीवन व्यतीत कर रहे थे और उनके अध्यापक महेन्द्रनाथ थे। तुरन्त सुबोधानन्द ने कहा—''उनके पास क्यों जाऊँगा? वे तो गृहस्थ हैं।''

परमहंस ने कहा—''नहीं रे। वह यहाँ की बातों के अलावा अन्य कुछ नहीं कहता। मास्टर से मेलजोल रखना।''

महेन्द्र का कितना ख्याल परमहंसजी रखते थे, इसका उदाहरण एक घटना से मिल जाता है। उन दिनों परमहंसजी अस्वस्थ थे। महेन्द्रनाथजी का अधिकांश समय उनकी देखरेख में व्यतीत होता था। फलस्वरूप स्कूल का रिजल्ट खराब हुआ। यह जानकर श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने कहा—''आजकल आपका अधिकांश समय उनके यहाँ गुजरता है, इसलिए स्कूल का रिजल्ट खराब हुआ। यह ठीक नहीं है।''

अपने गुरु के बारे में इस तरह की टिप्पणी सुनकर महेन्द्रनाथ को धक्का लगा। उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। यह समाचार सुनकर परमहंसजी ने कहा—''ठीक किया, ठीक किया, ठीक किया।''

ठीक तो किया, पर जीविका के लिए अब क्या करेंगे? बाल बच्चेवाले गृहस्थ हैं। परमहंसजी ने आगे कहा—''ईश्वर के लिए जो कुछ किया जाय, वह ठीक है। पहले ईश्वर-सेवा। इसके बाद अन्य काम करना चाहिए।''

महेन्द्रनाथ की उदासी देखकर अन्तर्यामी गुरु सारी बात समझ गये। कई दिनों बाद श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की गाड़ी आयी और उन्हें ले जाकर ससम्मान रिपन कालेज का अध्यापक बना दिया।

+ \+ \+ \+

परमहंसजी के तिरोधान के पश्चात् महेन्द्रनाथजी का जीवन सन्तों की भाँति हो गया। उनकी समस्त चेतना को परमहंसजी के नाम ने आच्छन्न कर रखा था। अपने कपड़ों को स्वयं कचारते थे। भोजन के बाद अपना बरतन स्वयं माँजते और जूठन फेंकते

थे। भोग-विलास से दूर हट गये थे। एक बार कोई उनके लिए इटालियन कम्बल ले आया तो बोले—"यह अपने क्या किया? दिन-रात इसकी सुरक्षा की ओर मेरा मन लगा रहेगा।"

अगर कोई अच्छा खाद्य पदार्थ लाता तो कहते—"आप इसे अद्वैत आश्रम में ले जाइये। वहाँ साधु लोग खायेंगे तो आपको आशीर्वाद देंगे।"

परमहंसजी की चर्चा चलने पर कहते—"ठाकुर (परमहंस रामकृष्णजी) कहा करते थे कि ईसा, चैतन्य और मैं एक अविभाज्य सत्ता हैं। जगदम्बा मेरे कण्ठ में बैठकर बातें कहलाती हैं। मैं तो निरा मूर्ख हूँ। जगदम्बा पीछे से ज्ञान की राशि ढकेल देती हैं मेरे मुँह में, यह सब बातें मैं बाइबिल में पढ़ चुका हूँ। ईसा प्रभु की बातें सुनकर तत्कालीन विद्वान चकित रह जाते थे कि इतना ज्ञान इस व्यक्ति में कैसे आ गया।"

अपने गुरु भाइयों के निकट महेन्द्रनाथ श्रद्धेय थे। यद्यपि अपनी विनम्रता के कारण गुरुदेव के सभी संन्यासियों को वे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे तद्यपि सभी गुरु भाई इन्हें स्वामी विवेकानन्द और राखाल महाराज के समकक्ष मानते रहे। मास्टर महाशय अपने भक्तों से कहा करते थे—श्री रामकृष्ण जिस-जिस रास्तों से गुजरे हैं, अगर उन रास्तों की धूल सिर से लगाया जाय तो योगी होना संभव है।

जब कभी मास्टर महाशय दक्षिणेश्वर आते तब साथ में एक गमछा लाना नहीं भूलते थे। यहाँ आने के बाद उस ग़मछे को गंगाजल में भिंगोकर दर्शनार्थी भक्तों के मस्तक पर पानी के छींटें देते हुए कहते—"श्री रामकृष्णजी जिस घाट पर स्नान करते थे, उसी घाट का यह पानी है।"

अपने गुरुदेव के प्रति उनका इतना विश्वास था। गुरुदेव के बारे में अगर उनसे कोई कुछ कहता तो वे भावातुर होकर अजस्र कहानियाँ सुनाया करते थे।

अद्वैत आश्रम के सभी साधु यह जानते थे कि मास्टर महाशय किसी को अपना चरण छूने नहीं देते। विजयादशमी के दिन बड़े बुजुर्गों का चरण कनिष्ठ लोग स्पर्श करके प्रणाम करते हैं। उस बार विजयादशमी के दिन मास्टर महाशय अद्वैत आश्रम आये। साधुओं ने पहले से ही षड़यंत्र रच रखा था। एक साधु ज्योंही झुककर उनके चरण की ओर हाथ बढ़ाया त्योंही महेन्द्रनाथ ने उनके दोनों हाथ पकड़ लिए। महेन्द्रनाथ की पकड़ को उक्त साधु ने जकड़ लिया। बस मौका पाकर उपस्थित साधु महेन्द्रनाथ के चरण स्पर्श करने लगे। इस प्रकार साधुओं की प्रेमलीला समाप्त हुई। मास्टर महाशय अपने स्नेहियों के आगे हार गये।

स्वामी प्रेमानन्द हमेशा मास्टर महाशय को दण्डवत करते हुए प्रणाम करते हैं। एक बार मास्टर महाशय परमहंसजी की जन्मतिथि के अवसर पर बेलुड़ मठ में आये। इन दिनों वे जरा अस्वस्थ थे। यहाँ दर्शन-प्रणाम करने के बाद जरा जलपान करेंगे।

साथ में धान का लावा ले आये हैं, जरा दही चाहिए। उन्होंने ब्रह्मचारी हेमेन्द्र से कहा—''देखो, भण्डारघर में दही है या नहीं।''

पता लगाने पर हेमेन्द्र ब्रह्मचारी को ज्ञात हुआ कि दही तो है, पर अभी भोग चढ़ाया नहीं है, इसलिए अभी देना उचित नहीं होगा। हेमेन्द्र यही बात कहने के लिए वापस जा रहे थे। तभी स्वामी प्रेमानन्द ने देखा कि हेमेन्द्र भण्डारघर से वापस जा रहे हैं। उन्होंने पूछा— ''भण्डारघर में क्यों आये थे।''

सारी बात सुनकर स्वामी प्रेमानन्द ने कहा—''ठहरो।'' इसके बाद वे भण्डारघर में आये और दहीवाला बरतन लेकर परमहंसजी के चित्र के सामने आकर आँख बन्दकर खड़े हो गये। इसके बाद दही की हँड़िया हेमेन्द्र ब्रह्मचारी को देते हुए कहा—''आज एक अपराध से ठाकुर ने हम लोगों की रक्षा की। तुम भी तो जानते हो कि वे ठाकुर के अन्तरंग पार्षद हैं। ठाकुर इन लोगों के मुँह से खाते हैं। 'कथामृत' पढ़ा नहीं है, ठाकुर ने कहा है कि इन लोगों को खिलाने पर हजार साधुओं को खिलाने का लाभ होता है। आप रामकृष्णावतार के व्यास हैं। दिन-रात ठाकुर की वाणी इनके मुँह से निकलती है। आज हम लोगों से होनेवाली एक बड़ी त्रुटि से ठाकुर ने बचा लिया।''

उस समय मास्टर महाशय दूर एक आम के पेड़ के नीचे विश्राम कर रहे थे। ठाकुर के सभी शिष्य महेन्द्रनाथ का सम्मान इस प्रकार करते थे।

३० अक्टूबर, १८८८ ई० को मास्टर महाशय की पत्नी श्रीमती निकुंज देवी को श्री शारदा माता ने दीक्षा दी। इसके बाद ठाकुर के इंगित पर माँ ने महेन्द्रनाथ को महामंत्र दिया। सबसे पहले ठाकुर ने इन्हें तांत्रिक संन्यास दिया था और अब तंत्र की अधिष्ठात्री श्री माँ ने मंत्र में प्राण का संचार किया।

+ + + +

बात उन दिनों की है जब मुकुन्द घोष परमहंस योगानन्द नहीं हुए थे। अपनी माँ की असामयिक निधन के कारण बहुत व्याकुल हो उठे थे। वे प्रत्यक्ष रूप से जगज्जननी का दर्शन करना चाहते थे ताकि उनसे निर्देश प्राप्त कर अपने भावी जीवन के मार्ग का चुनाव कर सकें। उन्हें यह ज्ञात था कि मास्टर महाशय जगन्माता के कृपा-पात्र हैं। उनसे बातचीत करते हैं। एक दिन वे मास्टर महाशय के यहाँ आये। इनके हृदय के भीतर उमड़ते तूफान का अनुभव करते हुए मास्टर महाशय ने कहा—''जरा शान्त होकर बैठो। इस वक्त मैं जगज्जननी के साथ बातें कर रहा हूँ।''

कुछ देर बैठने के बाद मुकुन्द घोष अस्थिर हो उठे। उन्होंने कहा—''आप मेरे बारे में जगज्जननी से आदेश प्राप्त कर लें। इस वक्त मैं जा रहा हूँ। कल आपकी सेवा में पुनः हाजिर होऊँगा।''

मास्टर महाशय इन दिनों जिस मकान में रहते हैं, वह मकान कभी मुकुन्द घोष

के पिताजी का था। इसी मकान में मुकुन्द घोष की माँ का निधन हुआ था और यहीं मास्टर महाशय के पुण्य स्पर्श से जगन्माता के लिए उनका हृदय व्याकुल हो उठा था।

दूसरे दिन भोर के समय मुकुन्द घोष पहुँच गये। मास्टर महाशय के कमरे का दरवाजा बंद था। क्षण भर में खुला तो मुकुन्द ने कहा—"समाचार जानने के लिए जल्दी आ गया। मेरे बारे में माँ ने आपको कुछ कहा है?"

गौर से कुछ देर देखने के बाद मास्टर महाशय ने कहा—"पहेली बुझाने की चेष्टा कर रहे हो या मेरी परीक्षा ले रहे हो? उस करुणामयी जगज्जननी के निकट से कल रात को तुम्हें आदेश मिला है। इसके बाद भी उन बातों को मुझसे सुनना चाहते हो? बोलो? बात सच है या नहीं?"

यह बात सुनते ही मुकुन्द ने मास्टर साहब को साष्टांग प्रणाम किया। इस वक्त वे आनन्द से अश्रुपात करने लगे। बात सही थी। कल रात को दस बजे जब मुकुन्द ध्यान पर बैठे तब उन्हें जगज्जननी की ओर से निर्देश मिला था।

मास्टर महाशय ने कहा—"क्या तुम यह सोच रहे हो कि तुम्हारी भक्ति माँ की असीम करुणा को स्पर्श नहीं कर सकी? ईश्वर के मातृभाव की जिसे तुम मानवी और देवी के रूप में पूजा करते आये हो, तुम्हारे आकुल क्रन्दन से प्रभावित हुए बिना रह सकती हैं?"

एक बार जब मुकुन्द ने मास्टर महाशय से अनुरोध किया कि वे मंत्र देकर शिष्य बना लें तब उन्होंने कहा—"मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। तुम्हारे गुरु कुछ दिनों बाद आयेंगे। उनके निर्देश से तुममें प्रेम-भक्ति का प्रभाव होगा। उससे जो दिव्यानुभूति प्राप्त होगी, वह अनन्त ज्ञान देगी।"

मुकुन्द घोष तीसरे पहर नित्य मास्टर महाशय के घर जाते थे। सच तो यह है कि मास्टर महाशय की अतीन्द्रिय शक्ति से वे इतना प्रभावित हो गये थे कि उनके प्रति प्रगाढ़ भक्ति मुकुन्द के हृदय में उत्पन्न हो गयी थी।

एक दिन एक माला लाकर मुकुन्द ने कहा—"यह माला आपके लिए लाया हूँ।"

मास्टर महाशय ने उसे पहनने से इनकार कर दिया। जब उन्हें यह महसूस हुआ कि इससे बालक की आत्मा को ठेस पहुँची है तब उन्होंने कहा—"हम दोनों ही माँ के भक्त-संतान हैं तब माँ का आवास इस देह-मन्दिर में है। ऐसी हालत में तुम उन्हें अर्घ दे सकते हो। मगर मुझे नहीं।"

एक दिन मुकुन्द और मास्टर महाशय स्कूल के एक ओर टहल रहे थे। इतने में एक सज्जन आये और बेकार की बातें करने लगे। कुछ देर बाद धीरे से मास्टर महाशय ने मुकुन्द से कहा—"मैं देख रहा हूँ कि इस व्यक्ति की उपस्थिति से तुम प्रसन्न नहीं

हो। इसे यहाँ से भगाना चाहिए। बहरहाल मैं माँ को सूचित कर रहा हूँ। वे हमारी मुसीबत समझ जायेंगी। अब देखो, इसे माँ किस तरह हमारे पास से हटाती हैं। माँ ने कहा कि यह आदमी उधर जो लाल मकान दिखाई दे रहा है, वहाँ तक पहुँचते ही इस आदमी को एक जरूरी काम याद आयेगी और यह व्यक्ति चला जायगा।''

मास्टर महाशय ने जैसा कहा था, ठीक वैसा ही हुआ। इसी प्रकार एक दिन मुकुन्द घोष किसी कार्य के सिलसिले में हावड़ा गये थे। अचानक उन्होंने देखा—लोगों की एक मण्डली ढोल-मंजीरा बजाते हुए प्रचण्ड स्वर में भगवान् का नाम ले रही है। पर उनमें भक्ति का नाम-गंध नहीं है। अभी यह सोच ही रहे थे कि देखा— सामने से मास्टर महाशय उनकी ओर आ रहे हैं। मुकुन्द ने कहा—''मास्टर महाशय, आप यहाँ कैसे?''

मास्टर महाशय ने इस प्रश्न का जवाब नहीं दिया, बल्कि मुकुन्द की चिन्ताधारा को पकड़ते हुए कहा—''खोका बाबू, भगवान् का नाम ज्ञानी-मूर्ख सभी के मुँह से सुनने पर मधुर नहीं लगता।''

मास्टर साहब की बातें सुनकर मुकुन्द दंग रह गये। वे तो अपने मन में सोच रहे थे कि भक्त-मंडली में भक्ति का नाम-गंध नहीं है।

इसी प्रकार एक बार तीसरे पहर श्रीम (मास्टर महाशय) ने अचानक मुकुन्द से पूछा—''क्या बायस्कोप देखना पसन्द करोगे?''

श्रीम का प्रश्न रहस्यजनक लगा। इस प्रश्न का उत्तर न देकर मुकुन्द श्रीम के साथ घूमने निकल पड़े। कुछ देर बाद दोनों व्यक्ति विश्वविद्यालय के सिनेट हाल में पहुँचे, जहाँ एक सज्जन भाषण दे रहे थे। भाषणकर्ता का भाषण बहुत ही नीरस और बेमतलब का था। मुकुन्द सोचने लगे— मास्टर साहब यही बायस्कोप दिखाने ले आये हैं। लेकिन जबानी उन्होंने कुछ नहीं कहा ताकि उन्हें नागवार न लगे।

तभी श्रीम ने धीरे से कहा—''देख रहा हूँ, यह बायस्कोप तुम्हें पसन्द नहीं आ रहा है। माँ को मैंने सूचित कर दिया है। इसके लिए वे भी दु:खित हैं। बहरहाल, उन्होंने सूचित किया कि इस हाल की सारी बत्तियाँ क्षण भर बाद गुल हो जायेंगी। उसी समय हम लोग चुपचाप यहाँ से चल देंगे। जब तक हम लोग बाहर नहीं पहुँचेंगे तब तक बत्तियाँ नहीं जलेंगी।''

मास्टर साहब की बात समाप्त होते ही किसी अदृश्य हाथ ने हाल की सारी बत्तियों को बुझा दिया। चारों ओर अँधेरा हो गया। वक्ता महोदय चुप हो गये। किसी ने कहा—''हाल की सारी बत्तियाँ खराब हैं।''

इसी बीच मास्टर महाशय के साथ मुकुन्द घोष हाल के बाहर निकल आये। ज्योंही इन लोगों के कदम बाहर बरामदे पर पड़े त्योंही पहले की तरह सारी बत्तियाँ जल उठीं।

श्रीम ने कहा—"खोका बाबू, इस बायस्कोप को देखकर तुम प्रसन्न नहीं हुए। कोई बात नहीं। अब एक नये प्रकार का बायस्कोप दिखा रहा हूँ। इसे देखकर तुम जरूर प्रसन्न होगे।"

विश्वविद्यालय की सीमा के बाहर निकलकर फुटपाथ पर चलते-चलते अचानक श्रीम ने मुकुन्द घोष के वक्षस्थल पर हाथ से थपकी मारी।

तुरंत अद्‌भुत परिवर्तन हुआ। कोलाहल से मुखर वातावरण स्पन्दन-हीन नीरव हो गया। सिनेमा के पर्दे पर जब साउण्ड बाक्स खराब हो जाता है तब चलचित्र के सभी पात्रों के हाथ, पैर, मुँह हिलते-डुलते हैं, पर कोई आवाज सुनाई नहीं देती। ठीक उसी प्रकार यहाँ की सारी आवाजें थम गयीं। राहगीर, दौड़ती हुई ट्रामगाड़ी, मोटर, रिक्शा, बैलगाड़ी आदि की आवाजें गायब हो गयीं। लगा जैसे सभी चुपचाप बिना शोर किये गन्तव्यस्थल की ओर चले जा रहे हैं। सर्वदर्शी आँखों से वे अपने चारों ओर का दृश्य अवाक् होकर देखने लगे। कलकत्ता स्थित एक शोरगुलवाले कारखाने को प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं, पर वहाँ के लोग जैसे बिना शोर किये अपना काम कर रहे हैं। एक स्निग्ध प्रकाश चारों ओर बिखर गया है। उन्हें यह भी देखकर आश्चर्य हुआ कि राह चलते अनेक मित्र उनके पास से गुजर रहे हैं, पर कोई उन्हें पहचान नहीं रहा है।

इस अपूर्व मूक दृश्य को देखकर वे आनन्दित हो उठे। इस अनास्वादित दृश्य का वे जीभरकर पान कर रहे थे। अचानक पैरों में ठोकर लगी और तभी मास्टर महाशय ने पहले की तरह उनके वक्षस्थल पर आघात किया। तुरंत ही कर्णभेदी कोलाहल से वे त्रस्त हो उठे। मधुर स्वप्न क्षण भर में चूर-चूर हो गया।

मास्टर महाशय ने कहा—"देख रहा हूँ, यह बायस्कोप तुम्हें अधिक पसन्द आया। क्यों ठीक कह रहा हूँ न?"

+ + + +

अक्सर कभी-कभी श्रीम का शरीर विद्रोह करने लगता था। कभी-कभी दम घुटने लगता या बेतहाशा दर्द महसूस करने लगते थे। उस दिन घर पर स्वामी नित्यानन्द भजन गा रहे थे। अचानक गोष्ठी से उठे और अपने कमरे में चले आये। इधर एक माह से वे बुखार से पीड़ित थे। लगभग तीन घण्टे तक बिस्तर पर सोये रहे।

घर के लोगों ने भक्त डाक्टर सत्यशरण चक्रवर्ती को बुलाया। उन्होंने जाँच के बाद कहा—"आपकी जो इच्छा हो कीजिए।"

श्रीम परमहंसजी की कथा सुनाने लगे। थोड़ी देर में बुखार उतर गया।

३ जून, सन् १६३२ को 'कथामृत' के पाँचवें खण्ड का प्रूफ देख रहे थे। उस समय रात के पौने दस बजा था। कलेजे में दर्द शुरू हुआ। घर के लोगों से कहा—"मुझे जमीन पर लिटा दो।"

भोर पाँच बजे कै हुआ और उसके साथ ही 'कथामृत' का महान् लेखक महेन्द्रनाथ गुप्त, मास्टर महाशय, श्रीम चिरनिद्रा में सो गये।

देखते ही देखते रामकृष्ण भगवान् के शिष्य, भक्त तथा अगणित शोकातुर लोग आये और काशीपुर महाश्मशान की ओर रवाना हो गये। रामकृष्णजी का अद्वितीय पार्षद सदा के लिए अपनी स्मृति रखकर चला गया।

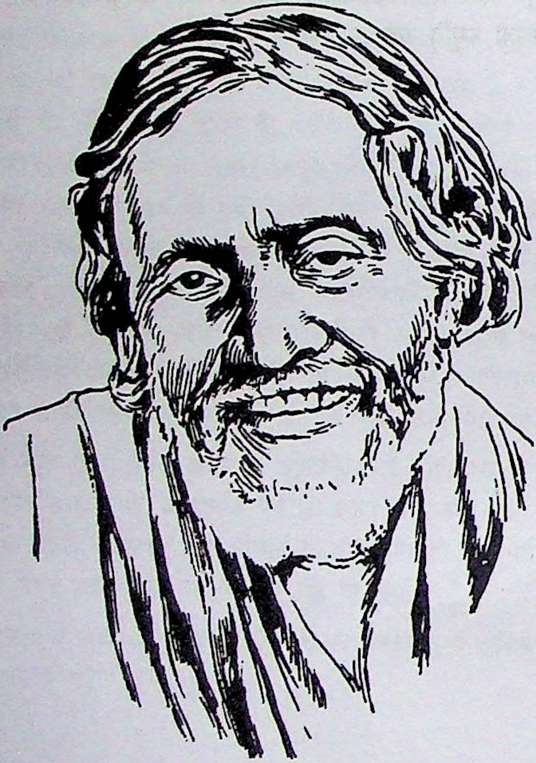

स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ

स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ

नित्य दिन चढ़ने के साथ ही गाँव के कुछ रोगी व्यक्ति पण्डित महेशचन्द्र के घर के सामने हाजिर हो जाते हैं। महेशचन्द्र न डाक्टर हैं और न कविराज, वे न्यायशास्त्र के पण्डित हैं। ये मरीज आते हैं उनके तृतीय पुत्र हरिदेव के पास जो स्वप्न में प्राप्त दवाओं की सूचना देता है।

हरिचरण को गाँव के सभी लोग हरिदेव के नाम से बुलाते हैं। बचपन से ही उसे दैवी-प्रतिभा प्राप्त हुई है। वे नित्य स्वप्न में श्रीकृष्ण भगवान् से खेलते, उनसे बातें करते और इन घटनाओं की चर्चा अपनी बुआ से करते थे। माँ के निधन के पश्चात् बुआ ने इन्हें पाला था, इसलिए वे बुआ को अपनी माँ समझते थे। बुआ पहले इनकी बातों पर विश्वास नहीं करती थीं। सारी बातें सुनने पर भी उन्हें लगता जैसे बालक अपने मन से कहानी गढ़कर सुना रहा है। लेकिन एक बार जब वे स्वयं बीमार हुईं और हरिदेव द्वारा बतायी गयी दवा से अच्छी हो गयीं तब उन्हें विश्वास हो गया कि बालक जो कुछ कहता है, वह सब सच है।

बुआ के द्वारा इस बात का प्रचार गाँव में हो जाने के कारण अक्सर लोग अपनी बीमारी के बारे में उसे आकर बता जाते। उसी रात को हरिदेव अपने सखा कृष्ण भगवान् से रोगी के बारे में दवा की जानकारी प्राप्त करके दूसरे दिन उसे बता देते। हरिदेव द्वारा बतायी दवाओं से लोग निरामय होते रहे।

पंडित महेशचन्द्र के तीन पुत्र थे। प्रथम गंगाचरण, द्वितीय गुरुचरण और तृतीय हरिचरण था। कहा जाता है कि भूमिष्ठ होने के बाद बालक हरिदेव को रोते न देख लोगों ने समझा कि शायद मृत पैदा हुआ है। लेकिन यह अनुमान गलत निकला। बचपन में अक्सर जब पेड़ पर से गिरते या चोट लगती तब भी वे रोते नहीं थे। बाद में आपने किसी पत्र में लिखा था—"इतना सामर्थ्य किसी में नहीं है जो मुझे दुःख दे सके।"

बचपन में इन्हें स्वप्न में श्रीकृष्ण दर्शन देते थे और रोगियों के लिए दवाओं के नाम बताते थे। फलस्वरूप बचपन से ही हरिदेव का श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग हो गया। अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय वे बराबर देते रहते थे। भय किस चिड़िया का नाम है, इसे वे नहीं जानते थे।

एक बार इनके पड़ोसी के घर में चोरी का माल पकड़ा गया। आसपास के लोगों ने जाँच करनेवाले दरोगा को घूस देकर कहा—"आप रिपोर्ट में लिख दें कि माल बरामद नहीं हुआ है।"

इतना सुनते ही हरिदेव ने एक झपाटे से कलम-दावात उठाते हुए कहा—"मेरी दावात-कलम से झूठी रिपोर्ट नहीं लिखी जायगी।"

केवल दरोगा ही नहीं, उपस्थित सभी लोग सन्न रह गये। चूँकि बालक गाँव का दुलारा था, इसलिए दरोगा अपमान का घूँट पीकर रह गया।

बंगाल में उन दिनों ब्राह्मणों के घरों में पाठशालाएँ लगती थीं जहाँ गाँव के बच्चे पढ़ते-लिखते थे। बच्चों को ताड़पत्र या केले के पत्तों पर अक्षरांभ कराया जाता था। कागज-स्याही गाँव में नहीं मिलते थे। स्याही के लिए विभिन्न प्रकार के रंगों का प्रयोग होता था। हरिदेव के घर में पाठशाला थी। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर में हुई थी।

गाँव में अस्पृश्यता का पालन अत्यन्त कठोरता से होता था, पर हरिदेव का स्वभाव इसके विपरीत था। कट्टर ब्राह्मण परिवार का बालक नीच जातियों के बालकों के साथ खेलता और उनके घर जाया करता था। एक बार बरसात के समय पानी से बचने के लिए एक अछूत बालक इनके पूजावाले कमरे के बरामदे पर आकर खड़ा हो गया। यह देखकर घर के लोगों ने उसे डाँटते हुए भगा दिया। इसके बाद पूजा का सामान फेंककर विग्रह का नूतन अभिषेक किया गया। इस घटना का बालक हरिदेव के मन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उसने सोचा—अगर उस अछूत बालक के बदले कोई कुत्ता आता तो क्या यह सब कार्य किया जाता? क्या एक अछूत बालक कुत्ते से भी नीच है?

इस घटना से उन्हें इतनी पीड़ा हुई कि उसी दिन शाम को उस बालक के घर गये। उसे गले से लगाया और अपने हाथ से जलपान कराया। बालक जब प्रसन्न हो गया तब उन्हें संतोष हुआ।

बंगाल के ब्राह्मणों में यह नियम है कि यज्ञोपवीत होने के बाद एक वर्ष तक शुचिता का पालन किया जाता है। ब्राह्मणों के अलावा अन्य किसी जाति के घर भोजन नहीं करना चाहिए। हरिदेव का जब यज्ञोपवीत हुआ तब एक दिन अपने पड़ोस में रहनेवाली एक छोटी जाति की महिला के घर जाकर बोले—"मुझे भूख लगी है। मुझे कुछ खाना खिलाओ। मैं भी यह देखना चाहता हूँ कि इससे क्या अनिष्ट होता है।"

महिला हरिदेव का हठ देखकर सहम गयी, पर लगातार अनुरोध करने पर उसे खिलाना पड़ा। बचपन से ही हरिदेव अछूतों के घर खाते रहे। इस परम्परा का पालन उन्होंने आजीवन किया।

संन्यास लेने के पश्चात् वे हरिजनों के लिए विशेष रूप से प्रिय बन गये थे। एक बार जब वे आगरा में थे तब महामारी के कारण मेहतरों ने हड़ताल कर रखी थी। आप जिस मुहल्ले में रहते थे, वहाँ महामारी का प्रकोप अधिक था। आगरा के घरों

में पाखाना दरवाजे के समीप बनवाये जाते थे ताकि मेहतर को घर के भीतर न आना पड़े। दोपहर के वक्त घर के पुरुष अपने काम से चले जाते थे और महिलाएँ अपने काम में व्यस्त रहतीं अथवा विश्राम करती थीं। जहाँ शहर में सफाई नहीं होती थी, वहाँ उनके घरों के पाखाने साफ रहते थे। महिलाएँ इस बात की चर्चा करती थीं कि हमारे मुहल्ले के मेहतर हड़ताल पर नहीं हैं। लेकिन एक दिन महिलाओं ने देखा कि उनके मुहल्ले के बाबाजी कमर में गमछा लपेटे और सिर पर एक कपड़ा बाँधे, झाड़ू और बाल्टी लेकर घर-घर जाकर सफाई कर रहे हैं।

आगरा शहर की दूसरी घटना सन् १९०४ की है। वे एक गली से गुजर रहे थे। सहसा उनकी निगाह एक वृद्धा मेहतरानी पर पड़ी जो पाँव में काँटा गड़ जाने के कारण कष्ट पा रही थी। उसके पास जाकर 'माँ' सम्बोधन करते हुए हरिदेव ने उसके पैर से काँटा निकाल दिया।

हरिदेव के साथ उनके कुछ मित्र थे। उन्हें हरिदेव की यह सेवा पसन्द नहीं आयी। प्रतिवाद में उन्होंने कहा—''आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं मेहतरानी का पुत्र हूँ। आज मुझे अपनी माँ की सेवा करने का अवसर मिल गया। जब तक हम स्त्री जाति को मातृरूप में ग्रहण कर उसकी पूजा करना नहीं सीखेंगे तब तक हमें जगन्माता के दर्शन नहीं होंगे।''

जिन दिनों आप कलकत्ता के एक कालेज में अध्ययन कर रहे थे, उन दिनों बराबर हरिजनों की बस्तियों में जाते थे। उनसे घनिष्ठता करते और बीमारी या कष्ट के समय मदद करते थे। मुसलमान और अछूतों की बस्ती में जब महामारी फैलती तब वहीं ठहर जाते थे। यहाँ तक कि पीड़ित व्यक्तियों के मलमूत्र की सफाई अपने हाथ से करते थे।

अपनी चित्रकूट यात्रा के बारे में आपने एक जगह लिखा है—''यहाँ के गरीब लोगों विशेष रूप से मेहतर और चमारों से मेरा बड़ा प्रेम हो गया है। मित्रों के अनुरोध पर इनके बच्चों को मैंने अपने हाथ से मिठाई खिलाई। शाम को जब घूमने निकलता हूँ तब मेहतरों के बच्चे 'बाबाजी-बाबाजी' कहकर मुझसे लिपट जाते हैं तब मुझे ऐसा अनुभव होता है जैसे मैं स्वर्ग में हूँ। जीव वेशधारी ये शिव हैं—यह देखने का यहाँ बहुत सुन्दर सुयोग मिला। गरीबों के साथ मुझमें जैसे नवयौवन आ जाता है।''

जीवन की प्रत्येक घटना से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है और यह गुण उनमें बचपन से था। एक बार आप अपने छोटे मामा के साथ नदी में नहाने गये। जुकाम से पीड़ित होने के कारण आप स्नान करने के बदले नदी किनारे खड़े थे। थोड़ी देर बाद नदी में जोरों से लहर आयी जिसकी वजह से मामा की हालत खराब हो गयी। हरिदेव किनारे पर थे। लहर का पानी उनका चरण स्पर्श कर वापस चला गया। बालक हरिदेव ने तुरंत कहा—''मामा, आज मेरे जीवन का पथ ठीक हो गया। देखिये, नदी की लहर ने आपको

बेचैन कर दिया और मेरा पैर धोकर वापस चली गयी। संसार भी नदी के समान है जिसमें लहरें आती रहती हैं। मैं संसार से थोड़ा अलग होकर रहूँ तो संसार मेरी सेवा करके चला जायगा। मुझे कष्ट नहीं देगा।''

आठ वर्ष के बालक के मुँह से ऐसी बातें सुनने की आशा मामा को नहीं थी। वे अवाक् होकर हरिदेव की ओर देखने लगे। बाद में इस बात की सूचना उन्होंने महेशचन्द्र को दी।

बंगाल में दुर्गापूजा के अवसर पर भैंसा और बकरे का बलिदान दिया जाता है। बचपन में हरिदेव ने एक बकरा पाला था। अपने हाथ से उसे खिलाते तथा घुमाने ले जाते थे। एक बार कालीपूजा के समय बलिदान के लिए कोई बकरा नहीं मिला तो बड़े भाई ने इनके बकरे की बलि चढ़ा दी। उस वक्त हरिदेव सो रहे थे। रात दो बजे नींद खुली तो भाई के कपड़ों पर लाल रक्त का दाग देखकर उन्होंने पूछा—''यह कैसा दाग है?'' इनके भतीजे ने कहा—''चाचाजी, आपके बकरे की बाबूजी ने बलि चढ़ा दी है।''

यह बात सुनते ही अचानक हरिदेव के मुँह से निकल पड़ा—''ऐसे लोगों के संतान नहीं जीतीं।''

कुछ ही दिनों बाद भाभी और भतीजे की मृत्यु हैजे में हो गयी। हरिदेव को बड़ा दुःख हुआ। इस घटना के बाद से वे अपनी जबान को सम्हालकर कुछ कहते थे।

पशु-पक्षी आदि के प्रति हरिदेव हमेशा स्नेह प्रदर्शित करते थे। एक बार दुर्गापूजा के अवसर पर बलिदान का बाजा बजने लगा। इस बाजा को सुनते ही वे घर से चलकर जंगल की ओर बढ़ गये। इधर मण्डप से भैंसा रस्सी तुड़ाकर भाग चला। उसे पकड़ने के लिए लोग दौड़े। भैंसा का पीछा करनेवाले लोग चिल्लाते हुए आगे बढ़ रहे थे—''हट जाओ, बलिदानी भैंसा भाग रहा है।'' इस चेतावनी को सुनते ही हरिदेव सड़क से हटकर एक पेड़ के नीचे खड़े हो गये ताकि भैंसा गुजर जाय। आश्चर्य की बात यह हुई कि भैंसा सड़क से हटकर हरिदेव के पास आकर शान्त भाव से खड़ा हो गया। जैसे वह मुक्तिदाता हैं। हरिदेव बड़े स्नेह से उसे सहलाते हुए चूम लिया। पीछा करनेवाले लोग यह दृश्य देखकर विस्मय से अवाक् रह गये। जब लोग काफी करीब आ गये तब हरिदेव ने कहा—''अब भाग जा, फिर इनके हाथ मत आना।''

इस चेतावनी को सुनते ही भैंसा पुनः आगे की ओर दौड़ गया। पकड़नेवाले चिल्लाते हुए आगे बढ़ गये।

अपना अन्तकाल समीप आ गया है, समझकर एक दिन माँ ने हरिदेव को पास बुलाकर कहा—''बेटा, मेरे मरने के बाद तुम मत रोना। तुम्हारी बुआ हैं, वे तुम्हें मेरी तरह प्यार करेंगी। फिर मैं हमेशा तेरे पास रहूँगी।''

माँ की इस आज्ञा का पालन हरिदेव ने किया था। चन्द्रमुखी के निधन के समय सारा परिवार रो रहा था, पर हरिदेव की आँखों में आँसू नहीं थे। पूछने पर उसने कहा—''माँ ने मना किया है। मेरे रोने पर उन्हें कष्ट होगा।''

माँ के निधन के कुछ दिनों बाद एक दिन पिताजी उसे एक मंदिर में ले गये। वहाँ उन्होंने हरिदेव से पूछा—''बेटा, मैंने एक संन्यासी को वचन दिया था कि अपने अन्तिम पुत्र को संन्यासी बनाऊँगा। तुम मूर्ति को छूकर शपथ करो कि मेरी इच्छा की पूर्ति करोगे। याद रखो, संन्यास लेने के पूर्व पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा त्यागकर जीव के कल्याण के लिए जीवन-दान करना पड़ता है। संन्यास के माने है—त्याग। मैंने गौर किया है, यह सब गुण तुममें है। मेरे अन्य पुत्रों में नहीं है। एक मात्र तुम संन्यास लेने के लिए उपयुक्त पात्र हो।''

हरिदेव ने कहा—''अभी जल्दी क्या है? जब उपयुक्त समय आयेगा तब आप संन्यास दिला दीजिएगा।''

पिता ने कहा—''मैं शीघ्र ही काशी जा रहा हूँ। वहाँ से सकुशल लौटकर आ सकूँगा या नहीं, यह कहना मुश्किल है। मैं चाहता हूँ कि आज तुम प्रतिज्ञा कर लो। इससे मुझे संतोष हो जायगा। लेकिन याद रखना कि वास्तविक संन्यासी बनना। गांजा-भांग पीकर आश्रम-मठ की स्थापना करनेवालों की तरह संन्यासी मत बनना।''

बालक हरिदेव के सामने यह कठिन परीक्षा थी। दैवी प्रेरणा से उन्होंने पिता को वचन दे दिया। पिताजी काशी चले गये। तीन दिन बाद समाचार आया कि वहाँ उन्होंने मुक्तिलाभ किया है।

+ \+ \+ \+

सन् १८८२ ई० की बात है। एक दिन हरिदेव ने स्वप्न में देखा कि वे जंगल में एक पेड़ के नीचे बैठे हैं। थोड़ी देर में तीन-चार संन्यासी आये और उनसे कहा—''तुम हमारे साथ हिमालय चलो।''

हरिदेव ने कहा—''इतनी दूर पैदल कैसे चलेंगे?''

एक संन्यासी ने कहा—''हम लोग आकाश-मार्ग से चलेंगे।''

इसके बाद सभी लोग आकाश-मार्ग से हिमालय के किसी क्षेत्र में आये। एक पेड़ के नीचे हरिदेव को बैठाकर संन्यासियों ने कहा—''तुम यहीं बैठो। हम लोग अपने गुरुदेव का दर्शन करके आते हैं।''

हरिदेव ने साथ ले चलने के लिए बड़ा आग्रह किया, पर वे साथ ले जाने को राजी नहीं हुए और चले गये। थोड़ी देर बाद एक संन्यासी दौड़ता हुआ आया और कहने लगा—''तुम बड़े भाग्यवान हो। गुरुजी तुम्हें बुला रहे हैं। आओ, मेरे साथ।''

हरिदेव प्रसन्नता पूर्वक गुरुजी के पास आये। गुरुजी ने कहा—"जाओ, सामने के झरने में स्नान कर आओ।" जब हरिदेव स्नान करके वापस आये तब गुरुदेव ने कहना प्रारंभ किया—"भगवान् प्रेम स्वरूप हैं। प्रेम ही हमारी साधना है। मनुष्य का मुख्य कार्य है जीव की सेवा करना। तुम्हारा जीवन सेवा में व्यतीत हो। यह भी याद रखना कि सेवा के बदले किसी से प्रतिदान लो या उस पर उपकार कर रहे हो, यह भावना मन में मत लाना। सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। इससे परमब्रह्म परमात्मा चित्तशुद्धि करते हैं। मनुष्य मात्र ईश्वर का अंश होता है। उनकी सेवा भगवान् की सेवा है।"

इतना कहने के बाद गुरुदेव ने एक मंत्र—"ॐ विश्वरूपाय परमात्मने नमः' देकर नित्य जप करने का आदेश दिया। हरिदेव भावविभोर हो उठे। ज्योंही उन्होंने गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम किया त्योंही उनकी नींद खुल गयी।

+ \+ \+ \+

सन् १८९० ई० में हरिदेव छात्रवृत्ति परीक्षा पास करके बारिशाल शहर के एक स्कूल में भर्ती होने आए। उन्हें पाँचवीं क्लास में भर्ती किया गया। अब तक वे संस्कृत, बंगला और व्याकरण पढ़ते रहें, अब यहाँ अंग्रेजी की शिक्षा लेने लगे। बचपन से मेधावी रहने के कारण वे शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय देते रहे। क्लास के सहपाठियों के निकट ही नहीं, बल्कि अध्यापकों की दृष्टि में लोकप्रिय हो गये।

छात्र-जीवन में जब किसी सहपाठी को पीड़ित देखते तो तुरंत सेवा के लिए चल देते थे। एक बार एक छात्र हैजे का शिकार हो गया। दरअसल वह छात्र कुसंगत में पड़कर शराब पीने तथा कोठे पर जाने लगा था। इस बात की जानकारी कुछ लोगों को थी। शहर के एक प्रभावशाली व्यक्ति की सहायता से उसे वेश्या के कोठे से एक अस्पताल में उन्होंने दाखिल कर दिया और उसकी सेवा करने लगे। जब वह अच्छा हो गया तो उसके पास जाना बन्द कर दिया। वह छात्र कृतघ्न नहीं था। शुक्रिया अदा करने के लिए इनके पीछे लग गया, पर हरिदेव हमेशा मुलाकात से कतराते रहे।

उस छात्र को पता लगा कि हरिदेव रात को श्मशान में देर तक रहते हैं। वह वहाँ जाकर अनुरोध करने लगा कि अपनी इस कृपा के बदले वह कुछ उपहार स्वीकार कर लें। हरिदेव ने कहा—"तुम अपनी शराब पीने और वेश्या के कोठे पर जाने की आदत दान दे सकते हो तो मैं ले सकता हूँ। इसके अलावा मुझे कुछ और नहीं चाहिए।"

छात्र ने कहा—"मुझे यह शर्त मंजूर है, पर मैं अब अपना समय कैसे बिताऊँगा?"

हरिदेव ने कहा—"घर पर तुम्हारी माँ है। घर जाकर उनकी सेवा करो। माँ सजीव भगवान् हैं। माँ की सेवा से तुम्हारा जीवन सुधर जायेगा।"

इसी प्रकार एक बार उन्हें पता लगा कि स्कूल के पास एक व्यक्ति बेहोश पड़ा

है। हरिदेव ने क्लास के अध्यापक से दो घण्टे की छुट्टी माँगी। उन्होंने इनकार कर दिया। हरिदेव ने कहा—"एक बेहोश व्यक्ति को उचित चिकित्सा और सेवा प्राप्त न हुई तो वह मर जायगा। मुझे मत रोकिये। मैं जा रहा हूँ।" कहने के साथ ही हरिदेव क्लास के बाहर चला गया। कुछ दिनों बाद वह व्यक्ति स्वस्थ हो गया। इस घटना को सुनकर शिक्षक महोदय अपनी रूढ़ता पर अफसोस प्रकट करने लगे।

हरिदेव को भ्रमण का शौक था। गाँव में रहते समय प्राय: जंगलों की ओर चले जाते थे। श्मशान उनका प्रिय स्थान था। एक बार वे पैदल बनारस की ओर रवाना हुए। उन्हें बार-बार अन्तर से यह प्रेरणा मिलती थी कि भगवान् तुम्हारे रक्षक हैं। वे हमेशा सहायता करेंगे। इस बात की परीक्षा लेने के लिए वे काशी की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें कहीं कोई कष्ट नहीं हुआ। काशी आने का उद्देश्य था—यहाँ के संतों का दर्शन करना। उन दिनों यहाँ अनेक प्रसिद्ध संत रहते थे।

यहाँ आने पर वे भास्करानन्द स्वामी के प्रति विशेष रूप से आकर्षित हुए। लेकिन यहाँ का रंगढंग उन्हें पसंद नहीं आया। एक दिन रूस के जार का पुत्र भारत के प्रधान सेनापति के साथ स्वामीजी का दर्शन करने आया। तभी आश्रम के एक शिष्य ने अतिथि रजिस्टर उनके सामने खोलते हुए हस्ताक्षर करने का आग्रह किया। यह दृश्य देखकर हरिदेव के मन में चोट पहुँची। जो व्यक्ति सब कुछ त्यागकर संन्यास ले चुका है, उसे इस प्रदर्शन के प्रति इतना मोह क्यों है? क्या स्वामीजी अभी उस कोटि तक नहीं पहुँचे हैं?

हरिदेव ने स्वामीजी से पूछा—"महाराज, आप तो वीतरागी महात्मा हैं, फिर इस विजिटर बुक के प्रति इतना मोह क्यों है? क्या आप इसे साथ ले जायेंगे?"

यह एक ऐसा प्रश्न था जिसे सुनकर भास्करानन्द के कई शिष्य नाराज होकर बोल उठे—"तुमसे मतलब? तुम कौन होते हो पूछनेवाले?"

हरिदेव के प्रश्न ने स्वामी भास्करानन्दजी को प्रभावित किया। उन्होंने रजिस्टर को उठाकर धूनी पर रख दिया। देखते ही देखते वह जलकर भस्म हो गया। बाद में हरिदेव को पास बैठाकर स्वामीजी नाना प्रकार के उपदेश देते रहे।

काशी से वापस आकर हरिदेव पुन: अध्ययन में जुट गया। एक ओर अध्ययन और दूसरी ओर जीव-सेवा निरन्तर जारी रहा। स्कूल में पढ़ते समय ही हरिदेव ने एक सेवा-समिति स्थापित की थी। महामारी के समय वे अपने मित्रों को लेकर लोगों की चिकित्सा, पथ्य आदि का प्रबंध करते रहे। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—"मनुष्य का दु:ख देखकर मुझे बहुत कष्ट होता है और मैं यथासंभव, यथासाध्य उसे दूर करने की चेष्टा करता हूँ, किन्तु मेरी दृष्टि विशेष रूप से इधर रहती है कि उसको संसार-सुख की असारता का ज्ञान हो जाय और भगवान् को प्राप्त करने की पिपासा बढ़ जाय। एक बार पिपासा बढ़ जाने पर उसे कहीं न कहीं से पानी ढूँढ़कर निकालना पड़ेगा।"

अधिकांश संतों को अपने गुरुओं से शक्ति प्राप्त हुई है। दीक्षा के पश्चात् गुरु मंत्र देकर साधना करने की आज्ञा देते हैं। शिष्य साधना के माध्यम से कितना उन्नत हुआ है, उस आधार को देखकर शिष्य में वे शक्ति का संचार करते हैं। दूसरी ओर कुछ ऐसे संत हुए हैं जो अपने पूर्वजन्म के संस्कारों अथवा दैवी प्रेरणा से एषणा-शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। आगे चलकर जब इन्हें वास्तविक गुरु के दर्शन होते हैं तब उन्हें इष्ट के दर्शन होते हैं। हरिदेव ऐसे संतों में थे।

बारिशाल की शिक्षा समाप्त करने के बाद उन्हें उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता आना था। अब सवाल यह था कि कलकत्ता में ठहरेंगे कहाँ? अपने एक मित्र को हरिदेव ने पत्र लिखा कि वह स्टेशन पर आ जाय ताकि उसकी सहायता से वह गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाय।

सियालदह स्टेशन पर तथाकथित मित्र दिखाई नहीं दिया। एकाएक उन्हें याद आया कि दूर के रिश्ते का एक भाई कालीघाट के पास कहीं रहता है। उनका नाम श्रीकृष्ण वेदान्तवागीश है। प्रत्यक्षरूप से कभी मुलाकात नहीं हुई है। हरिदेव के लिए कलकत्ता नया शहर था। कालीघाट के बारे में पूछने पर पता चला कि यहाँ से ४-५ मील दूर है। हरिदेव ने भगवान् को स्मरण करते हुए मन में कहा—जहाँ मेरे पाँव रुक जायँगे, वहीं वेदान्तवागीश का घर मिल जायगा।

इस विश्वास के साथ वे पैदल रवाना हो गये। अचानक एक जगह इनके पाँव रुक गये। वहीं चबूतरे पर बैठे एक व्यक्ति से इन्होंने वेदान्तवागीश का पता पूछा। उस व्यक्ति ने पता बताने के बदले हरिदेव का नाम-गाँव पूछा। ज्योंही हरिदेव ने अपना परिचय दिया त्योंही उस व्यक्ति ने हर्षपूर्वक उसे गले से लगाते हुए कहा—"मैं ही हूँ तेरा दादा वेदान्तवागीश।"

इस चमत्कार को देखकर हरिदेव आनन्द से विह्वल हो उठे। मन ही मन उस परमब्रह्म परमात्मा को अशेष धन्यवाद देने लगे। उन्हें लगा जैसे माँ का आशीर्वाद उनका सहायक है। इस तरह की कई घटनाएँ उनके जीवन में हुई हैं। हरिदेव पग-पग पर यही अनुभव करते रहे कि कोई दैवी शक्ति उनकी रक्षा कर रही है।

कुछ दिनों बाद मित्रों की सहायता से वे वहाँ एक मेस में रहने लगे। यहाँ बी०ए० में अंग्रेजी, संस्कृत और दर्शन का अध्ययन करने लगे। अध्ययन करते हुए लोगों की सेवा करने के लिए 'रिलीफ फ्रेटरनिटी" नामक संस्था की स्थापना की। नित्य स्टेशन जाकर गरीब रोगियों की तलाश कर उन्हें अस्पताल में भर्ती कराते, उनकी देखरेख करते थे। छुट्टियों के दिन मूक-बधिर विद्यालय, कुष्ठाश्रम, अनाथाश्रम जाते और वहाँ के लोगों की यथासंभव सहायता करते थे। यहाँ तक कि मेडिकल कालेज में जाकर शवच्छेदन का कार्य भी करते थे। इनके श्रम, निष्ठा को देखकर सभी चकित रह जाते थे। फलस्वरूप इनकी चर्चा चारों ओर होने लगी।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार कालीचरण बनर्जी हरिदेव को पुत्र समान प्यार करते थे। कुलीन ब्राह्मण होते हुए उन्होंने ईसाई-धर्म अपना लिया था। ईसाई-धर्म को जानने के लिए हरिदेव उनके साथ प्रत्येक रविवार को गिरजाघर जाते थे। इन्हीं दिनों लन्दन से लार्ड विशप भारत आये। बातचीत के सिलसिले में विशप को हरिदेव की प्रतिभा के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। उन्होंने सोचा कि ऐसे युवक को अगर ईसाई-धर्म के प्रचार में लगाया जाय तो धर्म-प्रचार में सुविधा होगी।

बातचीत के सिलसिले में विशप ने हिन्दू-धर्म की कुप्रथाओं की चर्चा की तो हरिदेव ने कहा—''जब ईसाई-धर्म को आप अच्छी तरह नहीं जानते तब हिन्दू-धर्म के बारे में भला क्या जान सकेंगे?''

विशप ने चौंककर पूछा—''क्या मतलब?''

हरिदेव ने कहा—''बाइबिल में लिखा है—'आई एण्ड माई फादर आर वन'—इसका अर्थ मुझे समझाइये।''

विशप साहब को चुप रहते देख हरिदेव ने तुरंत दूसरा वार किया। पूछा—''बाइबिल में है—'इन दी विगनिंग देयर वाज वर्ड, दी वर्ड वाज गॉड एण्ड दी वर्ड वाज गॉड' क्या आप इसका तात्पर्य बता सकते हैं? बाइबिल के इस वाक्य का अर्थ वेदान्तदर्शन का अध्ययन किये बिना नहीं बताया जा सकता। भारत में धर्म तत्त्व सिखाने मत आना। अगर सीखने की इच्छा हो तो आना।''

इतना कहकर हरिदेव उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उठकर चले गये। विशप को स्वीकार करना पड़ा कि लड़का बहुत ऊँचे दर्जे का ज्ञानी है। हरिदेव के जीवन में इसी प्रकार की एक और घटना हो गयी। उन दिनों वे स्वामी के रूप में शिमला के एक पार्क में एक बेंच पर बैठे हुए थे। इस पार्क में भारतीयों का आना मना था। केवल अंग्रेज आते-जाते थे। अचानक एक अंग्रेज अफसर आया और स्वामीजी को बेंच खाली करने का आदेश दिया।

स्वामीजी ने कहा—''बेंच पर काफी जगह है। जहाँ इच्छा हो, बैठ जाइये।''

एक काले नेटिव के इस उत्तर पर उक्त अंग्रेज ने क्रोधपूर्वक कहा—''जानते हो किससे बात कर रहे हो?''

स्वामीजी ने ठंडे स्वर में कहा—''एक भ्रष्ट ईसाई से। मैं यहाँ चुपचाप बैठकर सूर्यास्त देख रहा हूँ। तुम व्यर्थ में चिल्लाकर मेरी शान्ति भंग कर रहे हो। ईसा के 'ब्रदरहूड आफ मैन' का यही अर्थ तुमने समझा है?''

इतना सुनना था कि उक्त अंग्रेज नरम हो गया। इसके बाद दोनों देर तक बातें करते रहे।

बी०ए० की परीक्षा के दिन निकट आ गये थे। ठीक इन्हीं दिनों पता चला कि ढाका में महामारी फैल गयी है। ये दवा आदि सामान लेकर तुरंत रवाना हो गये। जब

वे वहाँ से वापस आये तो स्वयं ही हैजा से पीड़ित हो गये। परीक्षा तीन दिन बाद शुरू होनेवाली थी। लोगों ने परीक्षा देने से मना किया, पर ये माने नहीं। बीमार हालत में परीक्षा दी। संस्कृत और दर्शन के पर्चे में कोई परेशानी नहीं हुई, पर अंग्रेजी का पर्चा लिखते समय बेहोश हो गये।

बी०ए० की परीक्षा देने के बाद शिक्षा से इनका मन उचाट हो गया। एक अज्ञात शक्ति इन्हें अपनी ओर खींचने लगी। इन्हें पिताजी को दिये वचन की याद आयी। उन्होंने निश्चय किया कि अब वह समय आ गया है।

इसी बीच एक दिन उनकी इच्छा दक्षिणेश्वर जाने की हुई। अपंने एक मित्र से कहा कि तुम अपनी मोटर लेकर आना। एक दूसरे मित्र से कहा कि दक्षिणेश्वर चलने की इच्छा हो तो आ जाना। जिस मित्र से मोटर लाने को कहा था, वह समय पर नहीं आया। कुछ देर इंतजार करने के बाद दूसरे मित्र से उन्होंने कहा—"चलो, हम लोग स्टीमर से चलेंगे।"

घाट पर आने पर मालूम हुआ कि अभी थोड़ी देर पहले आखिरी स्टीमर रवाना हो गया है। वहाँ से दोनों लोग स्टेशन आये ताकि उत्तरपाड़ा पहुँचकर नाव से उस पार दक्षिणेश्वर जायेंगे। उत्तरपाड़ा आने पर ज्ञात हुआ कि अंधेरी रात में कोई नाव नहीं चलाता। सरकार की ओर से रोक भी है।

इस बात को सुनकर मित्र महोदय घबड़ा गये। उन्हें सांत्वना देते हुए हरिदेव ने कहा—"घाट पर चलो। वहाँ कोई न कोई तैयार हो जायेगा।"

कुछ दूर आगे बढ़ने पर सहसा एक बालक सामने आया और उसने कहा—"क्या आप लोग दक्षिणेश्वर जायेंगे? चलिये, मैं पहुँचा दूँ।"

दोनों व्यक्ति उस बालक की नाव से दक्षिणेश्वर के घाट पर उतरे। स्वामीजी ने अपने मित्र से कहा कि बालक को मजदूरी के अलावा कुछ इनाम जरूर दे देना। मित्र महोदय जब बालक को पैसे देने के लिए नाव की ओर आये तो देखा नाव के साथ-साथ बालक भी गायब था। हरिदेव समझ गये कि यहाँ भी भगवान् ने कृपा की है। उनकी महिमा को स्मरण करते ही उनकी आँखें डबडबा गयीं।

इधर कुछ दिनों से हरिदेव यह अनुभव कर रहे थे जैसे कोई अज्ञात शक्ति अपनी ओर आकर्षित कर रही है। कलकत्ते से मन उचाट हो गयां। उन्होंने निश्चय किया कि पिताजी की प्रतिज्ञा की रक्षा करने का समय आ गया है।

यह मई, सन् १८६६ ई० की घटना है जब वे कलकत्ता से चल पड़े। विन्ध्याचल स्टेशन पर उतरकर गंगा-स्नान करने गये। आते समय एक गठरी में गेरुआ वस्त्र लाये थे। अपने सफेद वस्त्रों को उतार कर उन्होंने संन्यासियों का वेश धारण कर लिया। शेष सामग्री एक पेड़ के नीचे रखते हुए स्थानीय पण्डे से कहा—"कृपया आप इन सामानों को ले लें।"

बचपन से भगवान् श्रीकृष्ण को स्वप्न में देखते रहने के कारण वे कृष्ण के एकनिष्ठ भक्त बन गये थे। शायद इसीलिए गेरुआ वस्त्र धारण करने के बाद उन्होंने अपना नवीन नाम कृष्णानन्द रखा। विन्ध्याचल में कुछ दिनों तक रहने के बाद अपने आराध्य देवता श्रीकृष्ण की सेवा में वृन्दावन आ गये। यहाँ से हरिद्वार रवाना हो गये। हरिद्वार में कोई योग्य सन्त न मिलने के कारण वे और आगे बढ़ गये। इस वक्त उनका हृदय किसी सिद्ध पुरुष की तलाश में बैचेन हो रहा था।

कई दिनों तक चलने के बाद एक मनोरम स्थान पर पहुँचे। उन्होंने देखा— दूर एक गुफा के समीप एक वृक्ष के नीचे एक महात्मा पद्मासन लगाये बैठे हैं। एक अज्ञात शक्ति उन्हें इस समाधिस्थ सन्त की ओर आकर्षित करने लगी। महात्माजी के पास आने पर वे सहसा चौंक पड़े। उन्हें याद आया कि बचपन में इसी महापुरुष को उन्होंने स्वप्न में देखा था। कृष्णानन्द विस्मय से अभिभूत होकर खड़े रह गये।

उस सन्त ने मुस्कराते हुए कहा—''पास आओ बेटा। मैं तुम्हारे मन की स्थिति समझ रहा हूँ। शंका मत करो। मैं वही हूँ। उचित समय समझकर तुम्हें यहाँ बुलाया है।''

सन्त के पास जाते ही उन्होंने बड़े स्नेह से उन्हें गले लगाया और आशीर्वाद दिया। सन्त के आज्ञानुसार वे आश्रम में रहते हुए आध्यात्मिक प्रसंगों में अपनी शंकाओं का समाधान करते रहे।

कुछ दिनों बाद सन्त ने कहा—''बेटा, अब तुम्हें यहाँ से जाना पड़ेगा। तुम्हारा जन्म जीव-सेवा के लिए हुआ है। इन दिनों देहरादून में महामारी फैली है। वहाँ तुम्हारी आवश्यकता है। शीघ्र चले जाओ।''

कृष्णानन्द अपने गुरुदेव से अलग होना नहीं चाहते थे। यह जानकर गुरुदेव ने कहा—''मैं तुमसे दूर कहाँ हूँ? तुम जहाँ कहीं रहोगे, वहाँ सर्वदा तुम्हारे साथ रहूँगा। मैंने जो मंत्र तुम्हें दिया है, उसका जप बराबर करते रहना। मेरी जब जरूरत होगी तब मैं उपस्थित हो जाऊँगा। अब जल्द तुम रवाना हो जाओ।''

आगे चलकर कृष्णानन्द ने हर मुसीबत के वक्त अपने गुरु को सहयोग देते देखा था। गुरु की आज्ञा से वे देहरादून आये। यहाँ का कार्य समाप्त कर हरिद्वार चले आये। उन्होंने यह सुन रखा था कि यहाँ कन्हैयालाल नामक एक उच्चकोटि के योगी रहते हैं। लेकिन वे गुप्त रहते हैं। उनका दर्शन विरला ही कोई कर पाता है। उन दिनों कुंभ का समय था। एक दिन रात को अपनी कुटिया में बैठे कृष्णानन्द कन्हैयालाल के बारे में चिन्तन कर रहे थे। अचानक दरवाजे पर धक्के की आवाज आयी। कृष्णानन्द ने पूछा—''कौन?''

बाहर से आवाज आयी—''मैं हूँ, कन्हैयालाल। दरवाजा खोलो।''

कृष्णानन्द खुशी से झूम उठे। दरवाजा खोलने पर उन्होंने देखा कि सामने एक विशालकाय संन्यासी खड़े हैं। संन्यासी ने कहा—"तुमने मुझे स्मरण किया और मैं हाजिर हो गया।"

कन्हैयालाल ने कृष्णानन्द को गले से लगाया और फिर दोनों व्यक्ति धार्मिक विषयों की चर्चा करते रहे। भोर होने के पहले कन्हैयालालजी ने कहा—"अब मुझे यहाँ से चलना चाहिये। दिन निकलने पर लोग मुझे पहिचान लेंगे।"

कृष्णानन्द ने कहा—"कुंभ में स्नान नहीं करेंगे?"

कन्हैयालाल ने कहा—"पहले कुंभ में बड़े-बड़े महात्मा आते थे। वे शास्त्रार्थ करते थे। आजकल तो रोजगार करनेवाले साधु आते हैं।"

कृष्णानन्द उन्हें पहुँचाने के लिए नीलधारा तक आये। कन्हैयालाल गंगा में कूदकर उस पार पहुँच कर चण्डी पहाड़ के जंगल में अन्तर्धान हो गये।

जिन दिनों स्वामीजी हरिद्वार में थे, उन दिनों सहारनपुर का एक सेठ इनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बड़े आदर के साथ अपने घर ले आया। कृष्णानन्दजी को भ्रमण का शौक बचपन से ही था। आप नित्य शाम के समय टहलने निकलते थे।

एक दिन एक मकान के दो तल्ले से आवाज आयी—"ओ ब्रह्मदैत्य, यहाँ आओ।"

कृष्णानन्द ने सिर उठाकर देखा तो एक बंगाली बाबू नजर आये। वे ऊपर गये तो बंगाली बाबू ने अपना असली रूप दिखाया। उसने सोचा कि यह युवक घर से भागा है और यहाँ गेरुआ वस्त्र धारण कर घूम रहा है। इसे धमकाकर घरेलू नौकर बनाया जा सकता है। बंगाली बाबू ने कहा—"लगता है तुम घर से भागे हुए हो। कोई हर्ज नहीं। यहाँ रहने पर तुम्हें कोई पकड़ नहीं सकेगा। तुम मेरे यहाँ रहकर बच्चों की देखभाल करते रहना।"

कृष्णानन्द बंगाली बाबू का आशय समझ गये। उन्होंने कहा—"और जो कुछ कहना हो, कह डालिये। ओनली फाइव मिनट्स टाइम है। मेरा एक जगह इंगेजमेण्ट है जहाँ पहुँचना आवश्यक है।"

कृष्णानन्द के मुँह से अंग्रेजी शब्दों को सुनकर वह जरा सकपकाया। फिर कहा—"तुम्हें यहाँ कोई कष्ट नहीं होगा।"

यह बात सुनते ही कृष्णानन्द उठकर खड़े हो गये। यह देखकर बंगाली बाबू जो पेशे से चिकित्सक थे, अपने नौकरों को बुलाने लगे और कहने लगे—"अभी मैं तुम्हें पुलिस के हवाले करता हूँ।"

कृष्णानन्द बलवान पुरुष थे। उसके हाथ को झटककर बाहर चले आये। दूसरे दिन कृष्णानन्द अपने मेजबान के घर के बैठक में बातें कर रहे थे, ठीक इसी समय

बंगाली बाबू आये। सेठजी को कृष्णानन्दजी के साथ आदर से बातें करते देख वह सहम गया। जिस युवक को वह भगोड़ा समझ रहा था, उसे सेठजी इतना सम्मान दे रहे हैं।

उसने इशारे से कृष्णानन्द को दूसरे कमरे में बुलाया। उनके आने पर उनके पैर पकड़कर क्षमा माँगने लगा। कृष्णानन्द ने अभयदान देते हुए वादा किया कि कल की घटना का जिक्र वे किसी से नहीं करेंगे। तुम निश्चिन्त रहो।

एक बार स्वामीजी लाहौर में मोहनलाल बैरिस्टर के घर ठहरे हुए थे। बातचीत के सिलसिले में कृष्णानन्दजी ने कहा—"भगवान् सब कुछ करते हैं, मनुष्य कुछ नहीं कर सकता।"

मोहनलाल को यह बात चुभ गयी। मेरे यहाँ ठहरे हैं। दोनों वक्त भोजन कर रहे हैं, क्या इसमें मेरा कर्तृव्य कुछ भी नहीं है? मोहनलाल के अन्तर में विद्वेष की भावना उत्पन्न हो गयी। उन्होंने कहा—"स्वामीजी, आप शायद कलकत्ता जा रहे हैं। अगर मैं या कोई मित्र आपको टिकट खरीदकर न दे तो आप कैसे जायँगे?"

स्वामीजी को मोहनलाल के घमण्ड की बात समझते देर नहीं लगी। उन्होंने कहा—"मोहनलाल, तुम समझते हो कि मेरे लिए सारा प्रबंध तुम कर रहे हो, यह तुम्हारी भूल है। मैंने तुम्हारे या अन्य किसी के सहारे घर नहीं छोड़ा है। मैंने जिनके सहारे इस मार्ग को पकड़ा है, वह प्रतिपल मेरी सहायता कर रहे हैं।"

इतना कहकर वे यात्रा की तैयारी करने लगे। मोहनलाल उन्हें अपनी गाड़ी से स्टेशन छोड़ने आये तो उन्होंने कहा—"अब तुम मुझसे कुछ दूर खड़े रहकर भगवान् की लीला देखो।"

मोहनलाल कुछ दूर खड़े होकर इंतजार करने लगे। स्वामीजी एक बेंच पर बैठे थे। दो मिनट बाद एक अपरिचित सज्जन आये और स्वामीजी से पूछा—"आप कहाँ जायँगे स्वामीजी?"

"मैं कलकत्ता जाऊँगा।"

"आपके पास टिकट है?"

"नहीं।"

उस व्यक्ति ने कहा—"आपके लिए टिकट ला दूँ?"

स्वामीजी ने कहा—"इच्छा हो तो ला दो।"

"पहले या दूसरे दर्जे का?"

"मैं तीसरे दर्जे में सफर करता हूँ। तीसरे दर्जे का ही टिकट लाना।"

इसके बाद उक्त सज्जन ने तीसरे दर्जे का एक टिकट लाकर स्वामीजी को दिया। यह सारा दृश्य दूर खड़े मोहनलाल देख रहे थे। दौड़े हुए पास आकर उक्त सज्जन का

टिकट वापस करने के लिए अनुनय करने लगे। स्वामीजी ने कहा—"अब ऐसा नहीं हो सकता। भगवान् पर भरोसा न करना नास्तिकता है।"

+ + + +

स्वामीजी काश्मीर में काफी दिनों तक थे। वहाँ भी इस प्रकार की एक घटना हुई थी। स्वामीजी का परिचय वहाँ दो विदेशियों से हो गया था। एक दिन उन लोगों के साथ बहुत दूर निकल गये। दोपहर को भोजन का समय हुआ जानकर विदेशियों ने कहा—"स्वामीजी, आप बराबर यह कहते हैं कि भगवान् ने मुँह दिया है तो भोजन की भी व्यवस्था वही करेंगे। आपके पास भोजन नहीं है और आप हमारा भोजन खायेंगे नहीं। इस जंगल में आपके लिए भगवान् कौन-सी व्यवस्था करते हैं, आज इसे हम देखना चाहते हैं।"

इतना कहकर वे लोग अपना भोजन सामग्री निकालकर भोजन करने बैठे। स्वामीजी कुछ दूर एक पेड़ के नीचे बैठ गये। दस-पन्द्रह मिनट बाद काश्मीर के वन विभाग के अफसर के यहाँ से एक व्यक्ति एक टोकरी फल लाकर दे गया। उसने कहा—"तिब्बत के साधुओं के लिए महाराजा साहब फल भिजवा रहे थे। उन्होंने कहा कि एक संन्यासी यहाँ भी हैं। उन्हें यह फल दे आओ।"

इस आकस्मिक घटना को देखकर दोनों विदेशी हतप्रभ रह गये। उन्हें यह विश्वास हो गया कि भारतीय संतों की ऐशी-शक्ति का प्रभाव कम आश्चर्यजनक नहीं है।

सन् १६०४ में स्वामीजी काशी आये और यहाँ कामरूप मठ के महन्त रामानन्द तीर्थस्वामी से संन्यास की दीक्षा ली। दण्डी-स्वामी बनने के बाद इनका नाम प्रेमानन्द तीर्थस्वामी हो गया।

आप यहाँ जप, ध्यान और जीव सेवा करते रहे। जब किसी बीमार आदमी की सेवा करने जाते तब उसके यहाँ पानी तक नहीं पीते थे। परोक्ष या अपरोक्ष रूप से किसी का उपकार ग्रहण नहीं करते थे। अपने सेवा-कार्य के बारे में उन्होंने कहा है—"अक्सर लोग मुझसे पूछते हैं कि मैं संन्यासी होकर जीव-सेवा में इतना व्यस्त क्यों रहता हूँ। मेरी जीव-सेवा की प्रवृत्ति जन्मजात है। मेरे भगवान् इसके संचालक हैं। स्वप्न में कितनी बार जीव-सेवा में जीवन-दान करने के लिए आदिष्ट हुआ हूँ।"

महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज ने आपके बारे में लिखा है—"ये एक महापुरुष थे। मुद्रादि स्पर्श नहीं करते थे। किसी से कुछ माँगते नहीं, फिर भी किसी प्रकार के अभाव का इन्हें सामना नहीं करना पड़ा।"

"प्रेमानन्दजी कृष्णानुरागी थे और इष्टदेव के पुरुषोत्तम रूप का ध्यान करते थे। इस आदर्शरूप की उपासना से इन्हें विश्वजननी महाशक्ति की कृपा प्राप्त हुई थी। बंग-

देश में इनके बारे में अनेक अलौकिक कथाएँ प्रचलित थीं। अपने भक्तों को इन्होंने जो पत्र लिखे थे, उनमें से अधिकांश का प्रकाशन हो गया है। इनके गुरुदेव हिमालयवासी कोई महान् सिद्धपुरुष थे। वे इनके जीवन का संचालन करते थे। मुझसे इनकी घनिष्ठता हो गयी थी। इन महात्मा ने 'पूजा' नामक एक विशिष्ट ग्रंथ का संकलन किया था जिसमें मेरा भी कुछ हाथ था।''

''स्वामीजी ने एक दिन प्रसंगतः श्रीकृष्ण तत्त्व पर कुछ सुनने की इच्छा प्रकट की। तत्त्वालोचन आरंभ हुआ। उसे सुनकर उनका चित्त इतना आकृष्ट हुआ कि उस दिन प्रसंग समाप्त होने पर उन्होंने इसे लिखा देने के लिए कहा। श्रुतलेख लिखनेवाले ने ८०० पृष्ठों का ग्रंथ उन्हें समर्पित किया जिसकी प्रतिलिपि उन्होंने स्वयं अपने हाथ से की। स्वामीजी के यही इष्टदेव थे। इस ग्रंथ को हमेशा अपने साथ रखते थे। नित्य अध्ययन-मनन करते थे। सन् १९५९ में जब उनका निधन हुआ तब उनके झोले में यह पुस्तक रखी मिली थी। इस ग्रंथ के प्रति उनकी इतनी श्रद्धा थी कि १४ वर्ष तक अपने से अलग नहीं किया। बाद में यह ग्रंथ मुझे लौटा दिया। अब यह ग्रंथ हिन्दी तथा बंगला में प्रकाशित हो गया है।''

स्वामीजी में किसी प्रकार की सांप्रदायिकता अथवा संकीर्णता नहीं थी। वे बाहर से जैसे प्रेमानन्द थे, वैसे उनके भीतर भी प्रेमसागर लहराता रहता था।

अपने बारे में स्वयं ही उन्होंने एक जगह कहा है—''मैं नित्यमुक्त आत्माराम हूँ। अभाव नाम की कोई वस्तु मेरे कोश में नहीं है। मैं कर्म करता हूँ स्वभाव से। जैसे अग्नि का स्वभाव है ताप देना, बरफ का स्वभाव है शीतल करना, आलोक का स्वभाव है प्रकाश करना, चुम्बक का स्वभाव है लोहे को आकर्षित करना, बालक का स्वभाव है बाजा सुनकर नाचने लगना, बीज का स्वभाव है वृक्ष में परिणत होना, जीवाणु का स्वभाव है पूर्ण जीवत्व लाभ करना, आनन्दमय का स्वभाव है आनन्द विकिरण करना, ठीक वैसे ही मेरी आत्मा का स्वभाव है — मेरे सच्चिदानन्द का स्वभाव है त्रिविध देहों को भेदकर अपनी सत्ता, चैतन्य और आनन्द को जगत् में प्रस्फुटित-विकसित-प्रकाशित करना।''

२ मई, सन् १९५९ को आपने देहत्याग कर अमृतधाम में प्रवेश किया था।

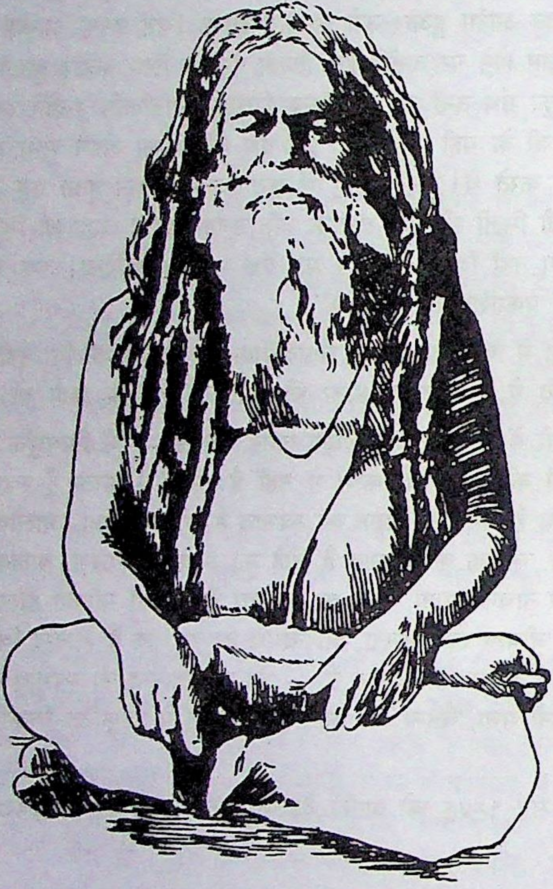

सन्तदास बाबाजी

सन्तदास बाबाजी

उस दिन हाईकोर्ट में छुट्टी थी। दोपहर का भोजन करने के पश्चात् ताराकिशोर की इच्छा हुई कि इस वक्त गंगा-किनारे चलकर कुछ देर भजन करूँ। आमतौर पर वे घर पर ही भजन-पूजन आदि करते हैं, पर आज न जाने क्यों गंगा-किनारे जाने की तीव्र इच्छा हुई।

जेठ का महीना, कड़ी धूप के कारण सड़कें तप रही थीं। हवा में बला की गर्मी थी। ऐसे माहौल में वे गंगातट की ओर पैदल ही चले जा रहे थे। हरिसन रोड और चितपुर रोड के संधिस्थल पर एक मस्जिद है। दरवाजे के पास एक सिद्ध मुसलमान फकीर रहते थे। चलते-चलते ताराकिशोर ने सोचा कि फकीर साहब का दर्शन करता चलूँ। पास जाकर उन्होंने फकीर साहब को प्रणाम किया।

फकीर ने हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हुए कहा—''वहाँ बड़ी धूप है। क्या घर में नहीं होता?''

ताराकिशोर उस वक्त अपनी धुन में थे। फकीर साहब के कथन का तात्पर्य नहीं समझ सके। काफी आगे बढ़ने पर अपनी पैनी बुद्धि से काम लिया तब सारी बातें समझ गये। फकीर साहब के कथन का मतलब था—''जहाँ जा रहे हो, वहाँ कड़ी धूप है। क्या घर पर साधन-भजन नहीं कर सकते?'' बातों का मतलब समझने पर भी वे क्रमशः आगे बढ़ते गये।

घाट पर आने पर उन्होंने देखा कि फकीर साहब की बात सही निकली। चारों ओर धूप है जैसे अंगारें बरस रहे हैं। लेकिन वे वापस नहीं गये। स्नानार्थियों के उपयोग में आनेवाली एक लकड़ी के तख्त पर बैठ गये। उस दिन की स्मृति के बारे में आपने लिखा है—

''मैं स्थिर चित्त होकर चिन्तन करने लगा। गंगा तो पापहारिणी हैं। क्या मैं इतना बड़ा पापी हूँ कि गंगामाता मेरे पापों को धो नहीं सकतीं? इसी क्षण मेरी आँखों के सामने गोमुखी का वह स्थान प्रकाशमान हो उठा जहाँ से गंगामाता प्रवाहित हो रही हैं और उस स्थान पर उमा-महेश्वर दिखाई देने लगे। मैं चकित दृष्टि से उस दृश्य को

देखने में इतना बेसुध रहा कि उन्हें प्रणाम करना भूल गया। थोड़ी देर बाद महेश्वर ने एकाक्षरी बीज मंत्र देते हुए कहा कि इसके जप से मुझे सद्गुरु प्राप्त होंगे। फिर देखते ही देखते दोनों मूर्तियाँ अन्तर्धान हो गयीं।''

ताराकिशोरजी गाँव की शिक्षा समाप्त कर जब उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए कलकत्ता आये तब पं० शिवनाथ शास्त्री आदि ब्राह्मसमाजियों के सम्पर्क में आये। ज्ञातव्य है कि प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी भी ब्राह्मसमाजी थे। उन्हें उस युग का सर्वश्रेष्ठ प्रचारक माना गया था। कट्टर हिन्दू ब्राह्मसमाजियों से नफरत करते थे, परन्तु विरोध में कुछ कर नहीं पा रहे थे। महर्षि देवेन्द्र ठाकुर के कारण तत्कालीन अनेक महापुरुष ब्राह्मसमाज से प्रभावित थे।

ठीक इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हो गयी जिसकी वजह से ताराकिशोरजी की जीवन-धारा बदल गयी। इस घटना के बारे में उन्होंने लिखा है —

''शौचादि के बाद मुझे नित्य समाचार पत्र पढ़ने की आदत थी। काशी से लौटने के बाद एक दिन मैं 'स्टेट्समैन' पत्र पढ़ रहा था। इस पत्र ने 'आस्ट्रेलियन टाइम्स' में प्रकाशित एक समाचार को उद्धृत किया था। उन दिनों 'चियारिनी सर्कस' आस्ट्रेलिया में अपना खेल दिखा रहा था। ज्ञातव्य है कि 'चियारिनी सर्कस' इसके पूर्व कलकत्ते में खेल दिखा चुका था। मुझे सर्कस से कोई दिलचस्पी नहीं थी। लेकिन 'स्टेट्समैन' में प्रकाशित समाचार ने मेरा ध्यान आकर्षित किया। ऐसा क्यों हुआ, आज मैं बता नहीं सकता।''

''उस समाचार में छपा था कि सर्कसवाले दो बाघों को जहाज पर लादकर ले जा रहे थे। समुद्र के उत्ताल तरंगों से वे डर ही नहीं गये, बल्कि उत्तेजित हो गये। इसी वजह से आस्ट्रेलिया पहुँचने के बाद वे लोग जितने खेल दिखाते थे, उनमें बाघवाला खेल तीन दिन नहीं दिखाया। चौथे दिन यह सोचकर कि अब बाघ शान्त हो गये हैं, आज खेल दिखाया जा सकता है। बाघों को लोहे के कटघरे में लाकर चारों ओर से घिरे लोहे के जंगले में प्रवेश कराया गया। जंगले के भीतर आते ही बाघ पुनः उत्तेजित होकर गुर्राने लगे। स्थिति नाजुक हो गयी। रिंग मास्टर घबराया नहीं। वह दृढ़, स्थिर और गंभीर रूप में उनकी ओर दृष्टिपात करने लगा। थोड़ी देर में बाघ शान्त हो गये और जंगले के भीतर आ गये। रिंग मास्टर आगे बढ़कर उनके शरीर पर हाथ फेरने लगा।''

इस समाचार ने मेरे मन में एक नयी बात पैदा कर दी। जो हिंस्त्र-पशु आक्रमण के लिए तैयार थे, वे कैसे शान्त हो गये? जबकि रिंग मास्टर के हाथ में कोई अस्त्र नहीं था जिससे जानवर डर जाते। केवल दृष्टि-शक्ति के वशीकरण से उनकी पाशविक-प्रवृत्ति दूर कर दी गयी है?

फलस्वरूप मेरे मन में एक अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो गया। हमारे यहाँ के गुरु अपनी

शक्ति के द्वारा शिष्य के आभ्यन्तरिक पाशविक-वृत्तियों को विशुद्ध कर देते हैं, इसीलिए लोग सद्गुरु के आश्रय में जाते हैं। मैं अब तक इसे ढोंग समझता रहा। रिंग मास्टर ने जिस प्रकार अपनी शक्ति को बाघों में संचारित किया, उसी प्रकार अगर गुरु शक्तिमान हो तो क्या वे शिष्य में अपनी शक्ति संचारित नहीं कर सकते? मैं अब तक इसे कुसंस्कार समझता रहा। मैंने जड़-विज्ञान और मनोविज्ञान का गहरा अध्ययन किया है। उस दिन ऐसा लगा कि हमारा यह शरीर यंत्र मात्र है। यह उसके आभ्यन्तरिक तड़ित-शक्ति के द्वारा संचालित हो रहा है और प्रत्येक के आभ्यन्तरिक प्रकृति के अनुरूप तड़ित-शक्ति सर्वदा उसके शरीर से विनिःसृत होकर बाह्य वस्तु में प्रविष्ट हो रही है। अगर उसकी इच्छा-शक्ति उन्नत हो जाय तो वह अपनी इच्छानुसार दूसरों के प्रति अधिक परिमाण में संचारित कर सकता है। हमारी उँगलियों का तड़ित-शक्ति से सम्पर्क बना हुआ है। उसके द्वारा तड़ित-शक्ति अपने आप निकलकर अपर वस्तु में संचारित होती है। इस तरह प्रकृतिगत गुणों के कारण ही हमारे यहाँ जातिभेद का निर्माण हुआ है।

देर तक इस समस्या पर विचार करने के बाद मैं एक नया मानव बन गया। मैंने अपने ब्राह्म मित्र कालीनाथ दत्त से इस बात की चर्चा की। उन्होंने कहा कि आपका विचार पूर्णतः सत्य है। मैंने तो शक्ति-सम्पन्न गुरु प्राप्त कर लिया है और उनकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। इस समाचार को मैंने अब तक ब्राह्मसमाज के किसी भी मित्र को नहीं बताया है और न बताने की इच्छा है। गुरु के निर्देशानुसार नित्य साधना करता हूँ।

कालीनाथ दत्त की बातों का उन पर प्रभाव पड़ा। ताराकिशोर ने सोचा कि मैं भी उनकी तरह उनके गुरु का शिष्यत्व स्वीकार कर साधना करूँ। कालीनाथ की तरह लोगों से छिपाकर साधना करने में हर्ज क्या है? इस बारे में आप लिखते हैं—

"अपने मित्र कालीनाथ दत्त के साथ उनके गुरु के यहाँ जाकर मैंने शिष्यत्व ग्रहण किया। उनका नाम था—श्री जगत्चन्द्र सेन। वे किसी आफिस में क्लर्क थे। गृहस्थ थे। शिष्यत्व ग्रहण करने के बाद वे मुझे कतिपय शिष्यों के साथ बैठाकर शक्ति-संचार करने लगे। उस वक्त मैंने सामान्य क्रिया-शक्ति का अनुभव किया। उनके द्वारा बताये नाम का भजन करने लगा। उन दिनों कलकत्ते में ट्राम-बस नहीं थीं, इसलिए नित्य शाम को उनके यहाँ जाना मेरे लिए संभव नहीं था। मैं घर पर ही भजन करता था। मैंने अपने गुरु तथा गुरु भाइयों में जिस प्रकार श्वास-क्रिया चलते देखा था, ठीक उसी प्रकार मुझमें भी चलने लगी। शरीर के भीतर से एक अद्भुत-शक्ति प्रकट होने लगी। मैंने इसकी सूचना गुरुदेव को दी। वे अपने सामने बैठाकर मुझसे साधना कराने लगे। मेरी स्थिति कुछ देर देखने के बाद उन्होंने कहा—तुम्हारे शरीर में साधन-शक्ति प्रकट हो गयी है। षट्चक्र खुल गया है।"

कुछ दिनों बाद मेरे गुरु सेन महाशय अपनी नौकरी से त्यागपत्र देकर अपने पैतृक भवन में आकर रहने लगे। उनकी बीमारी का समाचार पाकर मैं उन्हें देखने के लिए गया और सेवा करने लगा। अस्वस्थ रहते हुए भी वे प्राणायाम के द्वारा मुझमें शक्ति

संचारित करने लगे। मैं भी उनके साथ प्राणायाम करता था। मेरे शरीर में अनेक क्रियाएँ होती रहीं। अन्त में एक दिन उन्होंने कहा—"आज तुम्हारा मूलाधार से द्विदल तक छः चक्र भेद हो गया। इस तरह से षट्चक्र भेद किसी अन्य का नहीं हुआ है।"

मैं झूमता हुआ घर आकर साधना करने लगा। इन्हीं दिनों ताराकिशोर ने समाचार पत्र में पढ़ा कि अमेरिका निवासी अलकट के मकान में एक दिन कोई भारतीय महापुरुष सहसा आविर्भूत हुए। उन्होंने अलकट को भारत आने का उपदेश दिया है। उनके आगमन को स्वप्न या भौतिक घटना न समझें, इसे प्रमाणित करने के लिए उन्होंने अपनी पगड़ी उतार कर अलकट के हाथ पर रख दी ताकि उन्हें यह विश्वास हो जाय कि वे एक जीवित भारतीय व्यक्ति हैं। इसके बाद उक्त महापुरुष अन्तर्हित हो गये।

इस घटना के पश्चात् कर्नल अलकट लम्बी यात्रा करके भारत आये। वे उक्त महापुरुष की तलाश में जगह-जगह भटकते रहे। बाद में उक्त महापुरुष का दर्शन उन्हें एक पहाड़ पर हुआ।

इस समाचार ने ताराकिशोर के नास्तिक-हृदय को झकझोर डाला। उन्हें प्राचीन ऋषियों की अलौकिक क्षमता के बारे में दृढ़ विश्वास हो गया। उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होने लगी। इसी बीच एक घटना और हो गयी जिसकी वजह से उनकी बची खुची नास्तिकता-अविश्वास आदि समाप्त हो गयी। इस घटना के बारे में उनकी जबानी सुनिये —

"लाहौर से एक छोटी पुस्तिका अंग्रेजी में प्रकाशित हुई थी। जिसमें लिखा था कि मद्रास में एक भारतीय ईसाई रहते थे जो कुछ दिनों के लिए बर्मा जाकर बौद्ध-धर्म का अध्ययन करते रहे। बाद में मद्रास वापस आकर अध्यापन करने लगे। एक दिन उन्होंने रात के समय सुना कि दूर से कोई उन्हें कहीं जाने के लिए आह्वान कर रहा है। उस शब्द के प्रति वे इतने आकृष्ट हुए कि बिना विचार किये, बिना किसी को कुछ बताये, बिस्तर से उठकर तेजी से उस ओर चल पड़े। सारी रात शब्द का अनुसरण करते हुए चलते रहे। भोर के समय वे एक शिव मंदिर के सामने आकर हाजिर हुए। मंदिर में उन्होंने केवल शिवमूर्ति को देखा। वहीं से आकाशवाणी हुई कि सीधे आगे चले जाओ। साथ ही यह भी आदेश दिया गया कि सीधे जाकर जहाँ पहाड़ देखना, वहाँ रास्ता बन्द मिलेगा। वहाँ एक व्यक्ति आयेगा जो तुम्हें गन्तव्य स्थान पर ले जायगा। इस आदेश के आधार पर वे आगे बढ़ गये। आगे पहाड़ मिला जहाँ मार्ग अवरुद्ध था। कुछ देर बाद एक जटाधारी बाबा आये और उन्हें अपने साथ एक पहाड़ी के पास ले गये। वहाँ एक पत्थर के चट्टान को हटाते ही एक गुफा नजर आयी। जटाधारी बाबा ने इशारे से सूचित किया कि गुफा के भीतर चले आओ। बाबा स्वयं भीतर प्रवेश कर गये। जब दोनों व्यक्ति भीतर आ गये तब बाबा ने चट्टान को खींचकर गुफा का मुँह बन्द कर दिया।

ईसाई ने देखा—गुफा काफी बड़ी और प्रकाशयुक्त थी। गुफा के भीतर अनेक लोग मौजूद हैं जिनमें कुछ ध्यानस्थ हैं, कुछ पाठ कर रहे हैं और कुछ रोजमर्रा के काम कर रहे हैं। सारा दृश्य अद्‌भुत है। वास्तव में यह अगस्त मुनि का आश्रम है। अगस्त मुनि इस गुफा के बहुत ऊपर निमग्न अवस्था में हैं। प्रत्येक पचास वर्ष के बाद इस गुफा में अनेक ऋषि-मुनि आते हैं। उनकी सभा में अगले पचास वर्षों के कार्यक्रम निर्धारित किये जाते हैं। विभिन्न लोगों के जिम्मे कार्यभार सौंपा जाता है। इसके बाद आगत ऋषि-मुनि अपने-अपने स्थानों में वापस चले जाते हैं। इस गुफा में अनेक ग्रंथ हैं जिनमें से कुछ ग्रंथों का ईसाई ने अध्ययन भी किया।

बाद में उसकी इच्छा मानस-सरोवर जाने की हुई। यह जानकर उसे गुफा से बाहर निकाल दिया गया। वह पैदल ही मानस-सरोवर गया। वहाँ स्नान करके जब वह वापस आ रहा था तब मार्ग में एक ऋषि से मुलाकात हो गयी। उसने उनसे कैलाश पर्वत के बारे में जानकारी चाही। ऋषि उसकी आँखें बन्द कर आकाश मार्ग से उसे कैलाश पर्वत पर ले आये। यहाँ दर्शन आदि करवाने के बाद पुनः पहले की तरह आँखें बंद कर भूतल पर उतार दिया और तब अगस्त-आश्रम जाने के लिए इशारा किया। वह वहाँ से चलते-चलते लाहौर पहुँच गया। यहाँ अंग्रेजी भाषा के जानकारों से मुलाकात होने पर उसने अपनी इस रोमांचकारी यात्रा की कहानी सुनाई। इसी कहानी को अंग्रेजी में लिखकर उसने प्रचारित किया।''

ताराकिशोर के मन पर इस कहानी का भी असर हुआ। वे मन ही मन सद्‌गुरु पाने की तलाश में लग गये।

+ \+ \+ \+

श्रीहट्ट जिले के चौधरी वंश की ख्याति थी। वंश परम्परा से चौधरी लोग जमींदार थे। कहा जाता है कि १६वीं शताब्दी में कान्यकुब्ज से एक ब्राह्मण यहाँ आकर बस गया। उन्हीं के वंशज आगे चलकर चौधरी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस वंश के लोग कट्टर धार्मिक और शक्ति के उपासक थे। केवल हरकिशोर चौधरी वैष्णव-धर्म के अनुयायी हुए।

श्रीहट्ट जिले में बामै गाँव के जमींदार हरकिशोर चौधरी को शुक्रवार, १० जून, सन् १८५९ ई० को प्रथम पुत्र की प्राप्ति हुई। वैष्णव होने के कारण हरकिशोर चौधरी निरामिषभोजी थे। पति को निरामिष भोजन करते देख पत्नी श्रीमती गिरिजासुन्दरी देवी भी निरामिषभोजी हो गयीं।

अन्नप्राशन के दिन बालक का नाम ताराकिशोर रखा गया। बालक ताराकिशोर जब छः वर्ष का हुआ तब उसे ज्येष्ठ ताऊ के घर पर अक्षर-बोध कराया गया। आगे चलकर ताऊ पहाड़ा तथा व्याकरण पढ़ाने लगे। दादाजी संस्कृत के श्लोक कंठस्थ कराने लगे। अन्य बालकों से अधिक मेधावी होने के कारण ताराकिशोर की प्रगति तीव्रगति से हुई। सबेरे सभी बालकों को आलेख दिया जाता था। उन दिनों गाँवों में कागज, स्लेट या

पटिये का प्रचलन नहीं था। लड़के पहले जमीन पर अंगुली से लिखते थे। बाद में बाँस की कलम से लिखते थे। इसके बाद दीपक की कालिख से स्याही बनाकर सनई की कलम से केले के पत्तों पर लिखते थे। बाद में ताड़ के पत्तों पर उन्हें लिखने की आज्ञा दी जाती थी। दुकानों में स्याही नहीं बिकती थी। घर पर ही तरह-तरह की स्याही बनायी जाती थी। बत्तक, साही, मयूर आदि के पंख से कलम बनाकर तब कहीं श्रीरामपुरी कागजों पर सुलेख लिखना पड़ता था। ताराकिशोर को इन सभी क्रियाओं से गुजरना पड़ा था।

सात वर्ष की उम्र में उन्हें गाँव की पाठशाला में भर्ती कराया गया। वहाँ वे बंगला, अंग्रेजी और गणित पढ़ने लगे। नौ वर्ष की उम्र में माँ का निधन हो गया। कहा जाता है कि माँ का जब अंतिम काल आया तब किसी ने ताराकिशोर से कहा—''तेरी माँ जा रही है, आकर देख जा।'' हिन्दू परम्परा के अनुसार जीवन के अन्तिम समय में पिता-माता पुत्र के हाथ का जल ग्रहण करते हैं। लोगों के कहने पर ताराकिशोर ने अपनी माँ के मुँह में पानी डाला। पानी पीते ही उनका प्राण पखेरू उड़ गया।

अपने बचपन के बारे में ताराकिशोर ने लिखा है—''बचपन में मैं अत्यन्त चंचल प्रकृति का था। कहीं भी कुछ देर के लिए शांत होकर बैठे रहना मेरे स्वभाव से मेल नहीं खाता था। गाँव के सभी लोग मुझे शरारती समझते थे। मैं पिताजी से बहुत डरता था। हमेशा उनसे दूर-दूर रहता था। अगर किसी वजह से पास जाना पड़ता तो उन्हें 'जूजू' समझता था।''

दस वर्ष की उम्र में ताराकिशोर श्रीहट्ट शहर में पढ़ने आये और चौदह वर्ष की उम्र में प्रवेशिका परीक्षा में, आसाम प्रदेश के छात्रों में सर्वोच्च अंक प्राप्त किया। इन्हीं दिनों आपका विवाह हरचन्द्र भट्टाचार्य की पुत्री अन्नदा देवी से हुआ जिनकी उम्र उन दिनों दस वर्ष थी।

कहा जाता है कि जमींदार घराना होने के कारण गाँव के सभी पुरुष बाराती बनकर आये थे। कन्यापक्षवाले इस बात से परिचित थे कि जमींदार साहब अपनी प्रजाओं को लेकर आयेंगे। उन्होंने पहले से तैयारी की थी और जमकर स्वागत किया था।

एण्ट्रेस पास करने के बाद ताराकिशोर उच्चशिक्षा के लिए कलकत्ता आये। यहाँ वे प्रेसीडेन्सी कालेज में भर्ती हो गये। आपके सहपाठियों में डाक्टर सुन्दरीमोहन दास, विपिनचन्द्र पाल जैसे लोग थे जिन्होंने संपूर्ण बंगाल में उथल-पुथल मचाया था।

यहाँ अध्ययन करते समय आप पं० शिवनाथ शास्त्री के सम्पर्क में आये और ब्राह्मसमाज के आन्दोलन में शामिल हो गये। ब्राह्म-प्रचारकों का आप पर गहरा प्रभाव पड़ा। मूर्ति-पूजा तथा ब्राह्मण-धर्म के प्रति आस्था घट गयी।

ठीक इन्हीं दिनों एक और घटना हो गयी। माँ के निधन के पश्चात् पिताजी ने दूसरा विवाह किया। इस विवाह के कई वर्ष बाद आपका विवाह हुआ था। सौतेली माता ताराकिशोर की पत्नी अन्नदा को बेटी की तरह स्नेह देती रही। लेकिन वे अधिक

दिनों तक जीवित नहीं रहीं। इसके बाद हरकिशोर ने तीसरा विवाह किया। यह सौतेली माँ काफी कड़े स्वभाव की निकली। बालिका वधू को अपना स्नेह नहीं दे सकी। उन दिनों ताराकिशोर की बड़ी दादी जीवित थीं। घर में उनका अनुशासन चलता था। जब तक वे जीवित थीं, तब तक अन्नदा को कोई कष्ट नहीं हुआ। उनके निधन के बाद तीसरी पत्नी अन्नदा को पीड़ा देने लगी। फलस्वरूप अन्नदा अपने पिता के पास जाने के लिए मजबूर हो गयी।

ताराकिशोर उन दिनों कलकत्ता में थे। इन घटनाओं की जानकारी उन्हें नहीं हुई। बाद में पिता और श्वशुर के निरन्तर प्राप्त पत्रों से वे वस्तुस्थिति से अवगत हुए। वे यह समझ गये कि पत्नी का ससुराल या पित्रालय में रहना ठीक नहीं है। जब विवाह किया है तब पति के रूप में सारी जिम्मेदारी उन्हीं की है। ऐसी स्थिति में अन्नदा को अपने पास रखना उचित होगा। दूसरी ओर उन्हें यह भी समझने में दिक्कत नहीं हुई कि पत्नी को साथ में रखने पर पिता उसका खर्च नहीं देंगे। संभव है कि पत्नी का पक्ष लेने के कारण उसका खर्च भी बन्द कर दें तब उन्हें शिक्षा से वंचित होना पड़ेगा।

उन दिनों उन्हें कालेज से २० रुपये मासिक वजीफ़ा मिलता था। वे ससुराल की ओर रवाना हो गये। सीधे ससुराल न जाकर वहीं पास में एक जगह ठहर गये और श्वशुर के पास सूचना भिजवायी कि उनकी पत्नी को यहाँ भेज दिया जाय। वे अपने साथ कलकत्ता ले जायँगे। इस सूचना को पाकर श्वशुर ने अपनी लड़की भेज दी और ताराकिशोर उसे लेकर कलकत्ता चले आये।

कलकत्ता पहुँचकर ताराकिशोर ने अपने पिताजी को सूचित किया कि मेरी पत्नी की जैसी स्थिति हो गयी थी, उसके कारण मैं उसे ससुराल से लेकर चला आया। अब वह मेरे साथ रहेगी। इस पत्र को पाकर हरकिशोर आग बबूला हो उठे। लड़का ब्राह्मसमाजी होकर विधर्मी बन गया है, इसकी जानकारी उन्हें थी। वे यह सोचते थे कि शिक्षा समाप्त होने के बाद प्रायश्चित करवाकर उसे पुनः हिन्दू बना लिया जायगा। लेकिन पुत्रवधू का वहाँ जाना उन्हें पसन्द नहीं आया। कहीं पुत्रवधू भी ब्राह्मसमाजी न हो जाय, इस बात की चिन्ता उन्हें सताने लगी। इसी आशंका के कारण वे तुरन्त कलकत्ता आये और यहाँ आकर बाग बाजार में ठहर गये।

ताराकिशोर पटलडांगा में रहते थे। अपने घर से नित्य पिताजी से मिलने के लिए वे पैदल जाते थे। पिताजी के यहाँ आने का एक ही उद्देश्य था कि लड़का ब्राह्मसमाज से नाता तोड़ ले, क्योंकि इससे उनकी अप्रतिष्ठा हो रही है और वे इसे सहन नहीं कर पा रहे हैं। हरकिशोरजी हर तरह से समझाते-समझाते जब हार गये तब एक दिन तलवार निकालकर अपने बेटे का कत्ल करने को तैयार हो गये।

पिताजी को काबू से बाहर होते देख ताराकिशोर ने कहा—"मेरा शरीर आपके शरीर से उत्पन्न हुआ, यह सत्य है। लेकिन मेरी आत्मा नहीं। आप मेरे शरीर को नष्ट कर सकते हैं, पर आत्मा को नहीं।"

पिता के साथ घर का नौकर राधू सिंह भी आया था। उसने हरकिशोर को काफी समझाया तब कहीं जाकर वे शान्त हुए। बाद में उन्होंने कहा—"तुम्हारे पढ़ाने-लिखाने में जो रकम खर्च हुए हैं, उसे तुम्हें चुकाना है। मुझे कागज पर यह शर्तनामा लिखकर दो।"

अगत्या ताराकिशोर को यही करना पड़ा। उन्होंने 'तीन हजार रुपये देंगे', यह लिखकर दे दिया। इस घटना के कई रोज बाद वे गाँव की ओर रवाना हो गये। जाते समय लड़के को खर्च के लिए एक छदाम भी उन्होंने नहीं दिया। कलकत्ते से जब काफी दूर निकल गये तब न जाने उनके मन में कौन-सी भावना उत्पन्न हुई कि राधू सिंह के हाथ चार माह के खर्च के लिए रुपये भिजवा दिये। लेकिन पिता-पुत्र के सम्बन्ध में गाँठ पड़ गयी।

ताराकिशोर सन् १८८० ई० में एम०ए० पास हो गये। उन्होंने निश्चय किया कि अब अपने पैरों पर खड़ा होंगे। उन्होंने सिटी स्कूल में अध्यापन करना प्रारंभ किया। थोड़े ही दिनों में लोकप्रिय हो गये। पूजा की छुट्टियों में घर आये तो परिवार के लोगों ने प्रसन्नता प्रकट की। लेकिन एक आपत्ति हुई। इन्हें ब्रह्मज्ञानी और म्लेच्छ कहा गया। ताराकिशोर यह बात जानते थे कि गाँव के कट्टरवादी ऐसा कहेंगे। वे घर के भीतर नहीं गये। बाहर खाना मँगवा लेते और वहीं सो जाते थे।

पिताजी इन दिनों कलकत्ते में थे। लड़का घर गया है सुनकर तुरंत उन्होंने पत्र लिखा कि उसे घर के बाहर रखना। भीतर न जाने पाये। वहाँ से उत्तर आया कि यहाँ आने के साथ ही लड़का बाहर ही रहता है। इसके बाद पिताजी काशी चले गये। अचानक अस्वस्थ हो जाने पर ताराकिशोर को अपने पास बुला लिया। यहाँ आकर वे पिताजी की सेवा करने लगे।

काशी से लौटने के बाद ही ताराकिशोर ने सर्कसवाला समाचार पढ़ा और सेन महाशय का शिष्य बनकर प्राणायाम करने लगे। इसके बाद लाहौरवाली पुस्तिका मिली और गुरु-कृपा से उनका चक्र भेद हो गया।

+ \+ \+ \+

एक अर्से के बाद एक बार पुनः गाँव आये। इस बार लड़के में अद्‌भुत परिवर्तन देखकर हरकिशोर संतुष्ट हो गये। शास्त्रोक्त धर्म के प्रति अब पहले जैसी अश्रद्धा उसमें नहीं है। बातचीत के सिलसिले में एक दिन पिता ने ताराकिशोर से कहा कि वह प्रायश्चित कर हिन्दू-धर्म अपना ले।

सच तो यह है कि प्राणायाम करते रहने तथा धार्मिक-साहित्य के अध्ययन से ताराकिशोर में व्यापक परिवर्तन हो गया था। कालेजों में अध्यापन करते रहने के कारण इस ओर उनकी अभिरुचि बदल गयी थी।

इसी बीच प्रसिद्ध ब्राह्मधर्म प्रचारक विजयकृष्ण गोस्वामी गया गये। जहाँ तिब्बत के किसी महापुरुष ने आपको दीक्षा दी। यह समाचार ताराकिशोर सुन चुके थे। इस समाचार को सुनने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि अध्यापक बने रहने पर एक जगह बँधा रहना पड़ेगा। इससे अच्छा है कि वकालत जैसा स्वतंत्र पेशा अपना लूँ। पहले आपकी इच्छा वकालत करने की नहीं थी।

इस निश्चय के बाद वे अपनी जन्मभूमि में वापस आ गये। श्रीहट्ट शहर में वकालत करते हुए ताराकिशोर ने अपूर्व ख्याति प्राप्त की। तभी पिताजी की आज्ञा मानकर उन्होंने प्रायश्चित के पश्चात् पुनः हिन्दू-धर्म को अपना लिया।

वकील के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने अपना एक नियम बना लिया। सबेरे से शाम तक इस पेशे में समय देते थे। शाम के बाद मुकदमे के बारे में कोई बातचीत या काम नहीं करते थे। उस वक्त गुरुदत्त साधना करते थे।

आगे का क्रियायोग जानने के लिए एक बार आप कलकत्ता आये। गुरुदेव के निर्देशानुसार लगातार कई दिनों तक साधना करते रहे। इस क्रिया के कारण उनका शरीर षट्चक्र अतिक्रम कर ऊर्ध्व में सहस्रार की ओर दौड़ने लगा। उन्होंने अनुभव किया कि भ्रूमध्य स्थित द्विदलयुक्त षष्ठ आज्ञापुर नामक चक्र और ब्रह्मस्थान सहस्त्रदल में स्थित अन्य पर्दों का भेद होने पर सहस्त्रदल पद्म के मूल में प्रवेश किया जा सकता है। वे निरन्तर इस क्रिया में लगे रहे। इस प्रकार उनका प्रथम पर्दा-भेद हो गया।

कुछ दिनों बाद ताराकिशोर ने अनुभव किया कि श्रीहट्ट की अदालत में प्रैक्टिस करने से काम नहीं चलेगा। कलकत्ता में उनकी प्रतिभा का उपयोग हो सकता है। इसके अलावा गुरुजी कलकत्ता में रहते हैं। उनके निर्देश से आगे उन्नति की जा सकती है। यह सोचकर वे कलकत्ता चले आये। यह सन् १८८८ ई० की बात है। यह निश्चित है कि किसी भी स्थान में नये व्यक्ति को जमने में कठोर परिश्रम करना पड़ता है। कलकत्ता आकर वे हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करने लगे। प्रारंभ में उनकी हालत ऐसी हो गयी कि खर्च घटाने के लिए उन्होंने जलपान बंद कर दिया। गृहस्थी में भी कंजूसी करने लगे। लेकिन साधना में निरन्तर सक्रिय रहे।

+ \+ \+ \+

लगातार बारह वर्ष तक प्राणायाम और साधना करने के बाद उन्हें उनका अभीष्ट प्राप्त हुआ। उन्हें रह रहकर किसी योग्य गुरु की याद आने लगी। उन्होंने सोचा कि अगर कोई सद्गुरु मिल जाय तो उनकी मुराद पूरी हो सकती है। ऐसे ही समय में उन्हें गंगातट पर महेश्वर से एकाक्षरी बीज मंत्र प्राप्त हुआ जिसका जिक्र प्रारंभ में किया जा चुका है। इस घटना के तीन साल बाद उन्हें ब्रजविदेही श्री १०८ रामदास काठिया बाबा से दीक्षा प्राप्त हुई थी।

सन् १८९२ में पिताजी का निधन हो गया था। इस बीच हाईकोर्ट में वे अच्छी तरह जम गये थे। गाँव से सौतेली माता, भाई आदि कलकत्ते में आकर इनके पास रहने लगे थे। एक प्रकार से परिवार विस्तृत हो गया था। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो गयी थी।

सन् १८९३ का कुंभ मेला प्रयाग में लगनेवाला था। ताराकिशोर ने सोचा—मेले में भारत के सभी सम्प्रदाय के संत आते हैं। संभव है कि मेरे भावी गुरु का दर्शन यहीं हो जाय। यह सोचकर वे तीर्थयात्रा करने के उद्देश्य से चल पड़े। वैद्यनाथ, गया और काशी होते हुए प्रयाग आये। यहाँ विजयकृष्ण गोस्वामी का तम्बू लगा हुआ था। इसके अलावा अन्य अखाड़ों के महन्त आये हुए थे। यहीं पर सर्वप्रथम उन्होंने रामदास काठिया बाबा का दर्शन किया। दूर से प्रथम दर्शन करते ही वे अभिभूत हो उठे। उन्हें लगा कि अब तक जिस सद्गुरु की तलाश में वे परेशान थे, आज सौभाग्य से उनका दर्शन हो गया। बाबा की सेवा में लगे सेवकों से पूछने पर पता चला कि वे अब किसी को चेला नहीं बनाते। आपने निश्चय किया था कि केवल चार चेला बनायेंगे। अब तक चार को दीक्षा देकर चेला बना चुके हैं। अब नया चेला नहीं बनायेंगे।

ताराकिशोर ने सोचा कि जब बाबा की ऐसी प्रतिज्ञा है तब इनसे निवेदन करना व्यर्थ है। संभव है मेरा गुरु अन्य कोई होगा। एकाएक उनके मन में आया कि जब यहाँ तक आ गया हूँ तब एक बार प्रणाम कर लेना उचित है। संतों के आशीर्वाद से सौभाग्य प्राप्त होता है। बाबा के तम्बू के भीतर प्रवेश करते ही ताराकिशोर ने देखा—बाबा एक आसन पर बैठे हैं। पास जाकर प्रणाम करने के बाद यथास्थान बैठते ही ताराकिशोर ने सुना—"मेरे पाँच चेले हैं। सुपात्र मिलने पर अब भी चेला बना सकता हूँ।"

ताराकिशोर के सारे शरीर में बिजली दौड़ गयी। उन्हें लगा जैसे बाबा ने उन्हें देखकर यह मन्तव्य प्रकट किया है। अगर वे दीक्षाप्रार्थी होकर न आते तो यही समझते कि यहाँ उपस्थित लोगों से वार्तालाप के प्रसंग में इस बात का जिक्र बाबा ने किया है।

प्रयाग से वापस आते समय ताराशंकर एक बार पुनः बाबा का दर्शन करने उनके तम्बू में गये। आशीर्वाद देते हुए काठिया बाबा ने कहा—"तुम चैत्र के महीने में एक बार वृन्दावन में आकर दर्शन देना।"

ताराकिशोर ने कहा—"महाराज, मैं वकालत करता हूँ। चैत्र के महीने में इतनी लम्बी छुट्टी नहीं होती कि वृन्दावन आ सकूँ। अगर आप बुला लें तो जरूर आ जाऊँगा।"

बाबा ने हँसकर कहा—"हाँ, तुमको महावीरजी जरूर ले आयेंगे।"

अपनी वृन्दावन यात्रा के बारे में ताराकिशोरजी ने अपने अनुभवों के बारे में लिखा है—

"चैत्र के महीने में वृन्दावन आया। यहाँ श्री गरीबदासजी, मौनीजी आदि संतों को प्रणाम किया। गरीबदासजी मुझे नित्य दाल-रोटी बनाकर खिलाते थे। चावल खानेवाले प्रान्त का आदमी हूँ, पर इससे मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। चावल की जरूरत महसूस नहीं हुई। आश्रम के नियमानुसार अपना जूठन फेंकना और बरतन माँजने में संकोच नहीं होता था।"

''लेकिन बाबा का कार्य कलाप देखकर मुझे घोर निराशा हुई। मेरा ख्याल था कि बाबा आश्रम में समाधिस्थ रहते होंगे या भजन-पूजन में व्यस्त रहते होंगे। लेकिन मैंने देखा साधारण व्यक्तियों से बढ़कर निम्नस्तर का कार्य करते हैं। नित्य बाजार जाते हैं। दुकानदारों से सब्जियों का मोलभाव करके खरीदते हैं। छाँट-बिनकर सौदा लेते हैं। यह सब काम चेलों से नहीं कराते। बाजार से सारा सामान खरीदने के बाद कंधे पर लादकर लाते हैं। अगर कभी किसी दिन कोई सामान चेलों से मँगवाते हैं तो बड़ी कड़ाई से हिसाब-किताब पूछते हैं। आश्रम के किनारे सड़क पर बैठ जाते हैं। आते-जाते यात्री या पथयात्री उन्हें पाई, अधेला और पैसा देते हैं। अगर कोई एक पैसा देता है तो बड़े प्रसन्न हो जाते हैं। इस प्रकार दोनों वक्त जो कुछ मिलता है, उसे अपने पास रखते हैं। किसी को भी उस रकम में हाथ लगाने नहीं देते।''

''शाम के समय भगवद्-प्रसंग की जगह बेकार फालतू बातें करते हैं। मसलन किस स्थान का पानी अच्छा है, किस जगह कौन-सी चीजें सस्ती मिलती हैं, किस व्यक्ति ने कितना रुपया दिया—यही सब कहते रहते हैं। कभी किसी शिष्य को अकारण चिमटे से मारते, अश्लील बातें कहते और कंजूस सेठों की आलोचना करते रहते हैं।''

''इन घटनाओं को देखकर मेरा मन डाँवाँडोल हो उठा। क्या करूँ, समझ नहीं पा रहा था। जब तक गुरु को अच्छी तरह समझ न लिया जाय तब तक उनके निकट कैसे आत्मसमर्पण करूँ? यह सब सोचते हुए मैंने मन को सांत्वना दी कि सोच लो वृन्दावन घूमने आये थे। सो अच्छी तरह देख लिया।''

''इस घटना के दो-तीन दिन बाद अभय बाबू के भाई हरिनारायण का एक पत्र मेरे नाम उनके द्वारा आया। उस पत्र को स्वयं पढ़ने के बाद अभय बाबू ने मुझे दिया। उस वक्त हमारे सामने बाबाजी विराजमान थे। यों अभय बाबू के नाम आनेवाले पत्रों के बारे में बाबाजी कभी कोई प्रश्न नहीं करते। लेकिन इस बार उन्होंने पूछा—''चिट्ठी में क्या लिखा है?''

मेरे बदले अभय बाबू ने जवाब दिया—''मेरे भाई ने ताराकिशोर से पूछा है कि इन्होंने बाबा से दीक्षा ली है या नहीं।''

''यों इस बात को मैंने कभी किसी से नहीं बतायी थी कि मैं बाबा से दीक्षा लूँगा। ऐसी हालत में यह प्रश्न मुझसे क्यों पूछा गया, समझ नहीं सका।''

बाबाजी के प्रश्न का उत्तर अभय बाबू ने दिया—''इस पत्र में लिखा है कि बाबूजी ने आपसे दीक्षा ली है या नहीं?''

''बाबाजी ने कहा—'उनको जवाब में लिख दो कि इन्हें मुझसे दीक्षा मिल गयी है।' इसके बाद मेरी ओर देखते हुए बोले—इस वक्त तुमको दीक्षा नहीं देंगे। अपनी पत्नी के साथ श्रावण मास में आना। उस वक्त दोनों को एक साथ दीक्षा देंगे।''

"यह बात सुनकर मेरा मन शान्त हो गया। मैंने सोचा कि अभी मेरा मन दीक्षा लेने का हुआ भी नहीं था। अगर इस समय दीक्षा न भी दें तो अच्छा है। इस बातचीत के दो दिन बाद मैं कलकत्ता वापस जाने के लिए तैयार हुआ। आश्रम में रहते समय बाबाजी का व्यवहार मेरे प्रति जरा कठोर था। लेकिन विदाई के समय परिवर्तन हो गया। उन्होंने इतने मधुर ढंग से मेरी ओर देखा कि मेरी आत्मा गद्‌गद हो गयी। एक अद्‌भुत प्रेम उत्पन्न हो गया जो कलकत्ता आने तक स्थायी बना रहा।"

"आते समय तीन उपदेशों का पालन करने की मुझे हिदायत दी गयी थी।"

१- चौथे प्रहर में सोते मत रहना।

२- भीतर से काम करना, निन्दा-स्तुति को मत देखना।

३- सदा शुक्ल रहना यानी निष्पाप, निष्कपट रहना।

"इधर मुझमें बुरी आदत थी। सबेरे के वक्त ठंडी हवा लगने पर गहरी नींद आ जाती थी। आषाढ़ मास की घटना है। उस दिन एक अजीब बात हुई। कमरे की खिड़की के पास मच्छरदानी लगाकर सोता था। उस दिन चौथे प्रहर गहरी नींद आ गयी थी। ठीक उसी वक्त "उठ" कहते हुए किसी ने ढेला फेंका जो मेरे ऊपर गिरा। मैं तुरंत उस ढेले को लेकर खिड़की के पास आया ताकि यह मालूम कर सकूँ कि किसने फेंका है? वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया। दूसरे ही क्षण मुझे इस बात पर आश्चर्य हुआ कि मच्छरदानी में कहीं कोई छेद नहीं है, ऐसी हालत में यह ढेला भीतर कैसे आ गया?"

"इसी प्रकार एक रात को मैं छत पर सो रहा था। पता नहीं किसने मेरा नाम लेकर दो-तीन बार पुकारा। जागकर देखा तो कहीं कोई नजर नहीं आया। इन घटनाओं का मूल कारण क्या था, समझ नहीं पाया।"

"सच तो यह है कि अभी तक बाबाजी पर मेरी आस्था नहीं ज़मी थी। यहाँ तक कि श्रावण मास में उनके यहाँ जाकर उनसे दीक्षा लेने की इच्छा जाग्रत नहीं हुई थी। मैं दिन-रात यही सोचा करता था कि कब मुझे सद्‌गुरु के दर्शन होंगे। मेरी इस उलझन को दूर करने के लिए गुरुदेव ने एक अकल्पनीय उपाय का सहारा लिया।"

"आषाढ़ मास के अंतिम दिनों की घटना है। मैं छत पर सो रहा था। रात के चौथे पहर नींद खुल गयी। ज्योंही उठकर बिस्तर पर बैठा त्योंही आकाश को भेदकर बाबाजी प्रकट हुए और धीरे-धीरे पास आकर छत पर खड़े हो गये। मुझे आश्वासन देते हुए उन्होंने मेरे कान में एक मंत्र सुनाया। मंत्रोपदेश देने के बाद तुरंत आकाश-मार्ग से अन्तर्धान हो गये। गुरुदेव जब मुझे दीक्षा देकर चले गये तब मैंने अनुभव किया कि मेरे अंतर के प्रत्येक स्तर में गुरु प्रदत्त मंत्र अनुप्रविष्ट हो गया है और मेरे सभी संशय समाप्त हो गये हैं। क्षण भर बाद मैंने अनुभव किया कि मेरा जीवन धन्य हो गया है। वास्तव में आज मुझे सद्‌गुरु मिल गये थे।"

''श्रावण मास में सपत्नीक वृन्दावन चला आया। गुरुदेव ने कहा—''भादों मास की जन्माष्टमी तिथि को तुम दोनों को एक साथ दीक्षा दूँगा।''

''जन्माष्टमी के आने में अभी ८-१० दिन की देर थी तब तक के लिए हमें वहाँ ठहरना पड़ा।''

जन्माष्टमी के दिन सबेरे शौच और स्नानादि के बाद जब गुरुदेव के पास आया तब उन्होंने कहा—''बाजार से नये कपड़े, तुलसी की लकडी की माला और गोपी चन्दन ले आओ।''

''मेरे पास रकम थी नहीं। पत्नी से रुपये लेने गया तो वे बोलीं—''मेरे लिए सारा सामान लेते आना।''

मैं यह सुनकर अवाक् रह गया। दीक्षा लेने के उद्देश्य से वे मेरे साथ आयी थीं, पर यहाँ आने के बाद सहसा न जाने क्यों उनका विचार बदल गया और अब फिर तैयार हो गयीं। मैंने पूछा—''तुम तो कहती थी कि दीक्षा नहीं लोगी, फिर अचानक विचार कैसे बदल गया?''

पत्नी ने कहा—''इरादा तो यही था, पर आज सबेरे से न जाने क्यों मन उतावला हो उठा है।''

''बाजार से सारी सामग्री लाया। पूर्वाह्णकाल में दीक्षा-कार्य सम्पन्न हो गया। यह घटना सन् १८६४ ई० में हुई थी।''

जन्माष्टमी के बाद ब्रज मण्डल की परिक्रमा आरंभ होती है। इस बार की परिक्रमा में ताराकिशोरजी अपनी पत्नी के साथ बाबाजी की मंडली में शामिल हो गये थे।

ताराकिशोरजी सन् १८८८ ई० से लेकर सन् १६१५ तक हाईकोर्ट में वकालत करते रहे। उन दिनों आपकी गणना प्रथम श्रेणी के वकीलों में की जाती थी। यहाँ तक कि आपकी प्रतिभा का लोहा भारत के प्रसिद्ध वकील रासबिहारी घोष भी मानते थे। जिस केस में घोष महाशय के विरुद्ध ताराकिशोर खड़े होते थे, उसमें तर्कों का ऐसा जाल बिछ जाता था कि न्यायाधीश तक प्रभावित हो उठते थे।

दीक्षा लेने के बाद ताराकिशोरजी कलकत्ता आकर अपना काम करने लगे। घर में तुलाराम नामक एक नौकर था। वह नित्य शाम को घर के प्रत्येक कमरे में धूना देता था। एक दिन शाम के वक्त तुलसी के पौधे के पास धूपबत्ती जला रहा था। सहसा वह डरकर ताराकिशोर की पत्नी के पास आकर थरथर काँपने लगा। पूछने पर उसने कहा—''माताजी, मैं तुलसी के नीचे धूपबत्ती जला रहा था। अचानक बाबाजी के फोटो की तरह एक आदमी आया और मेरे हाथ से धूपदानी छीन लिया। जाते वक्त उन्होंने कहा कि शाम के समय तुम लोग आरती क्यों नहीं करते? इसके बाद वे न जाने कहाँ गायब हो गये। धूपदानी भी नहीं मिल रही है।''

ताराकिशोरजी की पत्नी यह बात सुनकर अवाक् रह गयीं। सारी घटना पति को सुनाने के बाद नित्य आरती की व्यवस्था की गयी। कई रोज बाद चहबच्चे के पास खोयी हुई धूपदानी मिली।

दीक्षा के बाद ताराकिशोरजी की काफी उन्नति हुई। आमदनी के साथ-साथ खर्च भी बढ़ गया। विमाता भी गाँव से आकर इनकी गृहस्थी में रहने लगी। रसोइया, नौकर-नौकरानियाँ, सईस, कोचवान आदि के अलावा अनेक रिश्तेदारों का आना-जाना प्रारंभ हो गया। ऐसी दशा में स्वाभाविक है कि कभी-कभी आर्थिक संकट आ जाता था। उस वक्त ताराकिशोरजी पत्नी को ढाँढ़स देते हुए कहते—"घबराओ मत। सब ठीक हो जायगा।"

उनके इस कोरे आश्वासन से पत्नी की चिन्ता दूर नहीं होती, क्योंकि घर की सारी जिम्मेदारी उन पर थी। लेकिन वे देखती कि ऐन मौके पर संकट टल जाता है। कभी-कभी ग्रहण या गंगा स्नान के लिए गाँव से काफी तायदाद में लोग आकर उनके घर डेरा जमाते थे। उनके स्वागत के लिए रकम की कमी हो जाती थी। पत्नी अपनी मुसीबत कहतीं तो ताराकिशोर कहते—"अभी काम चलाओ। अमुक दिन रकम आ जायेगी।" निर्धारित समय पर रकम आ जाती और इस प्रकार उनकी गृहस्थी चलती थी।

एक बार ताराकिशोर ने सोचा—मैं इतना श्रम करता हूँ, रकम आती है तभी इतने लोगों का पालन-पोषण हो रहा है। अगर कहीं मैं बीमार हो गया तो क्या होगा? कैसे इतनी बड़ी गृहस्थी चलेगी?

इस कल्पना को साकार रूप देने के लिए भगवान् ने शीघ्र प्रबंध किया। ताराकिशोरजी सचमुच बीमार पड़ गये। लगातार कई महीने तक खाट पर पड़े रहे। इस बीच किसी को कोई शिकायत नहीं हुई। आवश्यक सामग्री अपने आप आती चली गयी।

सन् १६०४ में आपकी आय काफी कम हो गयी थी। रिश्तेदार लोग स्थायी रूप से डेरा जमाये हुए थे। दैनिक खर्च में कमी नहीं हो पा रही थी। आय की अपेक्षा व्यय अधिक होने के कारण कर्ज बढ़ता गया। हर माह गुरुदेव को पचहत्तर रुपये भेजने पड़ते थे। हर साल पूजा की छुट्टी पर वृन्दावन जाना पड़ता था। इस बार तीन सौ रुपये कर्ज लेकर वृन्दावन गये।

वृन्दावन में उन्हें प्रतिदिन भोग के लिए फल-फूल खरीदना पड़ता था। एक दिन काठिया बाबा[1] ने कहा—"मौनी गाय के लिए जो भूसा आया है, वह अच्छा नहीं है। तुम कुछ ले आओ।"

---

[1] श्री रामदास काठिया बाबा का जीवन चरित्र पाँचवें भाग में देखिये।

गुरुदेव कभी स्वेच्छा से कुछ माँगते नहीं और आज जब भूसे के लिए आदेश दिया गया तब ताराकिशोरजी प्रसन्न हो उठे। वे एक गाड़ी भूसा खरीद लाये। लेकिन गुरुदेव को यह भूसा भी पसन्द नहीं आया। अब उन्होंने घास लाने का आदेश दिया। एक दिन बातचीत के सिलसिले में काठिया बाबा ने कहा—''आश्रम में अनाज नहीं है।''

इधर ताराकिशोरजी की रकम समाप्त होने को आयी। वे तुरंत बनिये की दुकान से उधार अनाज, तरकारी आदि खरीद लाये। इस प्रकार तरह-तरह के बहाने से काठिया बाबा ताराकिशोर की परीक्षा लेते चले गये। लेकिन ताराकिशोर ने अपना धैर्य खोया नहीं।

इन्हीं दिनों बाबा को ब्रज परिक्रमा करने की धुन सवार हुई। बाबा परिक्रमा में बराबर पैदल यात्रा करते हैं। ताराकिशोर और उनकी पत्नी बैलगाड़ी पर जाते थे। इस बार जब इनके लिए गाड़ी आयी तो बाबा उस पर बैठ गये। सभी को इस घटना पर आश्चर्य हुआ, पर किसी ने कुछ नहीं कहा। ताराकिशोरजी अपनी पत्नी को लेकर पैदल चल पड़े। पैदल चलने का अभ्यास न होने के कारण अन्नदा देवी को काफी कष्ट हो रहा था। जमीन कंकरीली होने के कारण मार्ग के काँटे चुभ रहे थे। ताराकिशोरजी निरन्तर अन्नदा देवी को ढाँढ़स बँधा रहे थे। अन्तर्यामी बाबा को स्थिति का ज्ञान हो गया। जब वे दोनों काफी पिछड़ गये तब बाबाजी गाड़ी रोकवाकर उनकी प्रतीक्षा करने लगे।

जब अन्नदा देवी बिल्कुल पास आ गयीं तब बाबा ने कहा—''बेटी, तुम्हें पैदल चलने में कष्ट हो रहा है। तुम गाड़ी पर आकर बैठ जाओ।''

अन्नदा देवी ने कहा—''गुरुदेव, ऐसी आज्ञा न दें। मैं आपके पास कैसे बैठ सकती हूँ? मुझसे यह अपराध नहीं होगा।''

बाबा ने कहा—''तू तो मेरी बेटी है। तुझे बहुत कष्ट हो रहा है। चली आ।''

परिक्रमा के बाद लोग आश्रम में आये। कार्त्तिक का महीना था। बंगाल की अपेक्षा पछांह का मौसम ठंडा रहता है। कई दिनों बाद ताराकिशोरजी कलकत्ता वापस जानेवाले थे। ऐसे ही माहौल में एक दिन सुबह अन्नदा देवी शौच के लिए बाहर गयी हुई थीं। ठीक इसी समय मूसलाधार पानी बरसने लगा। ताराकिशोर भजन कर रहे थे। उन्हें अन्नदा के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। इधर काठिया बाबा ने अपने एक शिष्य से कहा—''बाहर का दरवाजा बन्द कर दे।''

आज्ञा का पालन किया गया। अन्नदा देवी शौच के बाद आयीं तो देखा—दरवाजा भीतर से बंद है। वर्षा में आवाज भीतर तक नहीं पहुँच पा रही थी। इधर सर्दी और बरसात के कारण वे काँपने लगीं। थोड़ी देर में बेहोश हो गयीं। घण्टे भर बाद बाबा ने कहा—''दरवाजा खोलकर देख कोई चादर तो नहीं उड़ गया?''

रामफल नामक शिष्य ने दरवाजा खोला तो देखा—माताजी बेहोश पड़ी हैं। बात फैल गयी। तुरंत उन्हें उठाकर भीतर लाया गया। आग के पास रखकर उनकी सेवा की

गयी। तारकिशोर ने अपनी पत्नी से कहा—''देखो, नाराज मत होना। गुरुदेव जो कुछ कर रहे हैं, हमारी भलाई के लिए कर रहे हैं।''

शाम को अन्नदा देवी बाबा के निकट उन्हें प्रणाम करने आयीं। तभी बाबा ने कहा—''माई, इस बार मैंने तुम दोनों की परीक्षा कई तरह से ली। मुझे हर्ष है कि तुम दोनों पास हो गये हो। मैं प्रसन्न हूँ। अब तुम लोगों को चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। तुम्हें सर्वार्थसिद्धि प्राप्त होगी। जाओ, आनन्द मनाओ।''

बाबा से इस प्रकार का आशीर्वाद पाकर दोनों पति-पत्नी आनन्द से विभोर हो उठे। उनकी आँखों से आँसू फूट पड़े।

कलकत्ता वापस आने पर तारकिशोरजी को एक बहुत बड़ा मुकदमा मिला। उससे इतनी आमदनी हुई कि उनका सारा कर्ज चुकता हो गया। इस बार वृन्दावन से वापस आने के बाद से दिन-प्रतिदिन उनकी उन्नति होती गयी। आगे कभी उन्हें अर्थाभाव नहीं हुआ।

+ \+ \+ \+

काठिया बाबा जिस आश्रम में रहते थे, वहाँ साँपों का अड्डा था। तारकिशोर ने आश्रम को नये सिरे से बनवाकर उसमें मंदिर बनवाया। वे कलकत्ता से बराबर रकम भेजते रहे और बाबाजी अपनी देखरेख में बनवाते रहे। आश्रम तथा मंदिर बन जाने के बाद विग्रह की स्थापना हुई। जब तारकिशोरजी आये तब बाबा ने कहा—''यहाँ जिस ठाकुरजी की स्थापना हुई है, वे बड़े करामाती हैं। जाओ, उनसे वर माँग लो। तुम्हारे जो मन में आये, वही माँग लेना।''

तारकिशोरजी मंदिर के भीतर जाकर विग्रह के सामने खड़े होकर बोले—''मुझ पर तुम्हारी कृपा बनी रहे, इसके अलावा मैं कुछ नहीं चाहता।''

बाबाजी दरवाजे के पास खड़े होकर सुन रहे थे। उन्होंने कहा—''तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा। तुम्हें ऋद्धि-सिद्धि मिलेगी और महन्तई भी मिलेगी। भगवद्-दर्शन भी होगा। अगर यह बात सच्ची नहीं है तो हम भी सच्चा साधु नहीं हैं।''

इस वरदान को सुनकर तारकिशोरजी सन्न रह गये। उन्हें ऐसी आशा नहीं थी। यह वरदान तो भिखारी को राजा बनाने के समतुल्य था।

इस घटना के बाद से उनके जीवन में बराबर चमत्कार होते गये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि जो कुछ हो रहा है, वह सब गुरुजी का आशीर्वाद है। एक बार ब्रज का परिक्रमा करने गये तो चलते-चलते नन्दगाँव पहुँचे। कुण्ड की बगल में हलवाई की दुकान के समीप खड़े हुए तो अनेक ब्रज बालकों ने उन्हें घेर लिया और कहा—''हमें जलेबी खिलाइये।''

तारकिशोरजी ने हलवाई को जलेबी बनाने का आर्डर दिया। जब जलेबी तैयार हो गयी तभी दो अन्य बालक वहाँ आ गये। उन दोनों बालकों का भोलापन देखकर तारकिशोरजी मुग्ध हो गये। उनमें से एक में अजीब सम्मोहन-शक्ति थी।

इन बालकों ने कहा—"बाबूजी, ये सब उपद्रवी बालक हैं। आप जलेबी का दोना हमें दीजिए। हम सभी को ठीक से बाँट देंगे।" बालकों के मधुर स्वभाव और स्वर के आकर्षण से तारकिशोर प्रभावित हो गये थे। उन्होंने जलेबी का दोना उन्हें दे दिया। दोनों बालक सभी को ठीक से वितरण करने के बाद स्वयं खाने लगे। एकाएक तारकिशोरजी ने देखा कि वे दोनों बालक न जाने कहाँ गायब हो गये। शेष बच्चे अभी तक मौजूद हैं। उपस्थित बच्चों से उन बालकों का परिचय पूछने पर कोई कुछ बता नहीं सका। तारकिशोर ने अनुमान लगाया कि वे दोनों कृष्ण और बलराम थे। आज दोनों बाल रूप में दर्शन दे गये। इसके बाद जब भी वे वृन्दावन में परिक्रमा करने जाते थे, कहीं न कहीं कृष्णलीला का रूप देखते रहे।

तारकिशोरजी अन्न कम और दूध अधिक पीते थे। एकादशी का व्रत करते थे। एक बार एकादशी के दिन नन्दघाट जब पहुँचे तब तक उन्होंने पानी तक का स्पर्श नहीं किया था। गाँव में दूध के लिए आदमी भेजा गया। कई व्यक्ति खाली हाथ लौटे। उन्होंने सोचा—आज दूध के स्थान पर किसी वृक्ष या लता की पत्तियाँ खाकर रह जाऊँगा। कई वृक्ष और लताओं को देखने के बाद एक पोखरी में सिंघाड़ा के पौधे नजर आये। ज्योंही सिंघाड़े के पौधे की ओर हाथ बढ़ाया त्योंही ध्यान आया कि सूर्यास्त के बाद वृक्ष की पत्तियाँ नहीं तोड़नी चाहिए। निराश होकर डेरे पर चले आये। ठाकुरजी की आरती और भजन के बाद जब वे सोने की तैयारी कर रहे थे, उस वक्त रात के ग्यारह बज चुके थे।

तभी आँगन में एक बालक लोटे में दूध लेकर आया और तेज आवाज में बोला—"बाबूजी कहाँ हैं?"

इस यात्रा में काठिया बाबा साथ में थे। वे अपने कमरे में थे। उन्होंने एक सेवक से कहा कि बालक को बाबूजी के पास ले जाओ।

सेवक बालक से दूध लेकर तारकिशोर के पास आया तो उन्हें आश्चर्य हुआ। गुरुदेव ने अपने कमरे से कहा—"पी ले, तेरे लिए आया है।"

दूध का एक घूँट पीते ही तारकिशोर चौंक उठे। इसमें केसर, बदाम, पिस्ता मिला हुआ था। दूध पीते ही उनकी सारी सुस्ती दूर हो गयी। आश्चर्य की बात यह रही कि दूध का लोटा वापस लेने कोई नहीं आया।

इसी प्रकार क्रम चलता रहा। गुरुदेव की महानता धीरे-धीरे इतनी बढ़ गयी कि ताराकिशोर के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने निश्चय किया कि गृहस्थी के जंजाल से मुक्त होकर अब शेष समय साधना तथा भजन में लगायेंगे। परिवार के लिए गुजारे का प्रबंध करके उसकी देखरेख का भार उन्होंने अपने एक मित्र को सौंप दिया। जिस दिन ताराकिशोरजी ने यह कार्य सम्पन्न किया, उसी दिन उन्हें अपने इष्ट के दर्शन हुए।

जब रात को वे अपने कमरे में सोने के लिए गये तब दरवाजा खोलते ही देखा—''श्रीकृष्ण भगवान् चतुर्भुज रूप में खड़े हैं। उनकी ज्योति से कमरा आलोकित है। लगता था जैसे समस्त जगत् का आनन्द उनके कमरे में सिमटकर आ गया है। उन्होंने उस रूप को साष्टांग प्रणाम किया। ज्योंही वे उठकर खड़े हुए त्योंही वह दृश्य गायब हो गया। ताराकिशोरजी विस्मय से अवाक् रह गये।''

इस घटना के काफी दिनों बाद जब ताराकिशोरजी वृन्दावन आये तब उन्होंने इस घटना का जिक्र गुरुदेव से किया। सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने कहा—''यह दर्शन बड़े भाग्य से मिलता है। योगी पुरुषों के भाग्य में ऐसे दर्शन होते हैं। यह तो छाया दर्शन रहा। इसके आगे तुम्हें अनेक प्रकार के दर्शन होंगे।''

+ \+ \+ \+

वैष्णवों के चार सम्प्रदाय हैं। १- निम्बार्क, २- श्री, ३- विष्णु स्वामी और ४- माध्व। इनमें श्री सम्प्रदाय की दो शाखाएँ हैं— (क) रामानुजी, (ख) रामानन्दी। इन चारों सम्प्रदाय के महन्त भी अलग-अलग होते हैं।

काठिया बाबा निम्बार्क सम्प्रदाय यानी हंस सम्प्रदाय के महन्त थे। सन् १९०९ में रामदास काठिया बाबा का तिरोधान हो गया। इस सम्प्रदाय का नियम यह है कि महन्तजी का शिष्य ही महन्त बनता है।

बाबा के तिरोधान के पश्चात् नये महन्त का प्रश्न उपस्थित हुआ। ताराकिशोरजी के अनुरोध पर बाबा के एक शिष्य का महन्त पद पर अभिषेक किया गया। कुछ दिनों बाद अन्य शिष्यों ने नये महन्त का विरोध करना शुरू किया। फलस्वरूप उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया।

अब पुनः नये महन्त का प्रश्न उपस्थित हुआ। विभिन्न सम्प्रदायों के महन्तों का सम्मेलन किया गया। सभी सम्प्रदाय के महन्तों ने सर्वसम्मति से ताराकिशोरजी का नाम नये महन्त के लिए निर्वाचित किया।

महन्त-पद ग्रहण करने के बाद उनका नया नाम वज्रविदेही सन्तदास हुआ। उन्हें याद आया—एक बार गुरुदेव ने कहा था कि महन्तई भी मिलेगा। उनकी भविष्यवाणी सत्य हो गयी।

महन्त-पद ग्रहण करने के कुछ दिनों बाद नासिक में कुंभ मेला का आयोजन हुआ। यह सन् १९२० की बात है। सूक्ष्मरूप में आकर गुरु ने सन्तदास को आदेश दिया—"अब संकोच या ऊहापोह मत करो। महन्त हो गये हो। लोगों को दीक्षा देने का कार्य मेला से प्रारंभ कर दो। सम्प्रदाय के महन्तों का यह कर्त्तव्य है।"

आपने अपने जीवन काल में अनेक लोगों को दीक्षा देकर शिष्य बनाया। आपके शिष्यों ने भी अनेक अलौकिक घटनाओं का दर्शन किया है।

श्री संतदास के नाम पर काशी में उनकी शिष्या शोभा माँ ने एक मुहल्ले का नामकरण 'सन्त नगर' किया है जहाँ एक मन्दिर, आश्रम और बच्चों का एक स्कूल स्थापित है।

बिहारी बाबा

सर्दी, गर्मी, बरसात सभी मौसमों में काशी के गंगातट पर स्नानार्थियों की भीड़ होती है। मंदिरों में सुबह घंटा-घड़ियाल बजाकर विग्रह की आरती की जाती है। घाट पर स्थित पण्डे स्नानार्थियों का आह्वान करते हैं। नगर का प्रमुख घाट दशाश्वमेधघाट है जहाँ प्राचीनकाल में भारशिवों ने दस अश्वमेध यज्ञ किये थे।

इसी घाट पर एक दिन एक दिगम्बर संन्यासी आया और स्नान करने के पश्चात् घाट के ऊपर बैठ गया। नगर में भिन्न-भिन्न संप्रदायों के मठ, मंदिर, आश्रम और अखाड़े हैं। सड़कों पर इन संप्रदाय के संत और अनुयायी चलते-फिरते नजर आते हैं। पहले लोगों ने इस दिगम्बर बाबा की ओर ध्यान नहीं दिया। होगा किसी मठ का, चला जायगा। लेकिन उन्हें घाट से कहीं आते-जाते न देख पण्डों को आश्चर्य हुआ। स्नानार्थी भी विस्मय से इस बाबा को देखने लगे।

पण्डों का शह पाकर कुछ शरारती लोग दिगम्बर बाबा को तंग करने लगे। दूसरी ओर कुछ धार्मिक और सात्त्विक लोगों ने शरारती लोगों को डाँटते हुए कहा— ''क्यों तुम लोग सीधे-सादे संत को छेड़ते हो? तुम्हारा कोई नुकसान तो नहीं कर रहे हैं।''

शरारती लोग उद्दण्डता से जवाब देते— ''इस घाट पर न जाने कितने घरों की बहू-बेटियाँ और माताएँ स्नान के लिए आती हैं। इस नंगे साधु को देखकर उनके मन में कैसा प्रभाव पड़ता है, कभी आपने यह भी सोचा है?''

इस तरह की किचकिच अक्सर होती थी। सात्त्विक लोगों की अपेक्षा शरारती लोगों का पलड़ा भारी पड़ता था। लोग मौका पाते ही बाबा को तंग करते थे। लेकिन बाबा निर्विकार रहकर समस्त अत्याचारों को सहन करते रहे।

काशी नगरी में संत तुलसीदास, रैदास, परमहंस सदानन्द, तैलंग स्वामी, भास्करानन्द आदि महात्माओं को तंग किया गया था। अगर बिहारी बाबा यहाँ के शरारती तत्त्वों के शिकार हुए तो कोई आश्चर्य नहीं। यहाँ के लोग बिहारी बाबा की योग विभूति से अपरिचित थे।

इसके बावजूद कुछ ऐसे लोग भी थे जो श्रद्धावश बाबा के पास बैठते और उनसे प्रश्न करते थे। बिहारी बाबा किसी के प्रश्न का उत्तर नहीं देते थे। हमेशा मौन रहते या आँखे बंद कर ध्यानस्थ रहते थे। निरन्तर मौन रहने के कारण नगर के लोगों ने आपका नाम 'मौनी बाबा' रख दिया था।

बाबा के बराबर मौन रहने के कारण लोगों को उनके पूर्व इतिहास की जानकारी नहीं हो पाई। किस सम्प्रदाय के हैं? कहाँ के निवासी हैं? जाति क्या है? गुरु कौन हैं? काशी में आकर रहने का क्या उद्देश्य है? ऐसे अनेक प्रश्न थे जिनका उत्तर लोग चाहते थे, पर हमेशा निराशा हाथ लगती थी। बहुत दिनों बाद बंगाल से आये तीर्थयात्रियों ने बाबा को पहचाना और उनसे पूछताछ करने पर लोगों को जानकारी प्राप्त हुई।

काशी के नागरिक जिस बाबा को 'मौनी बाबा', 'नागा बाबा' के नाम से जानते हैं, वे वास्तव में बंगाली हैं। पूर्वी बंगाल के ढाका जिला के निवासी हैं। बचपन में इनका नाम रासबिहारी रखा गया था जिसे कुछ लोगों ने 'बिहारीलाल' के रूप में प्रसिद्ध कर दिया।

+ \+ \+ \+

सन् १८५६ ई० की बात है। श्रावण के महीने में मूसलाधार पानी बरस रहा था। पूर्वी बंगाल के त्रिपुरा जिले के 'चालतातली' गाँव में एक बालक ने कृष्णपक्ष द्वादशी के दिन जन्म ग्रहण किया। चालतातली नवजात शिशु का ननिहाल था। पिता महेशचन्द्र मुखर्जी ढाका जिले के 'तारपाशा' गाँव के निवासी थे। पद्मा नदी की बाढ़ में संपूर्ण गाँव नष्ट हो जाने के कारण महेशचन्द्र अपनी ससुराल चले आये थे। बाद में आपने ढाका के 'राजदिया' गाँव में अपना नया घर बनवाया।

महेशचन्द्र मुखोपाध्याय निष्ठावान धार्मिक प्रवृत्ति के ब्राह्मण थे। परिवार की आमदनी अच्छी थी। आपकी दो पत्नियाँ थीं। बड़ी का नाम श्रीमती गंगा देवी और छोटी का नाम श्रीमती सूर्यकुमारी देवी था। गंगा देवी के तीन पुत्र हुए— पहला अभयचन्द्र, दूसरा नवीनचन्द्र और तीसरा रासबिहारी। सूर्यकुमारी को एक पुत्र हुआ था जिसका नाम नीलरतन था।

गंगा देवी का तीसरा पुत्र रासबिहारी ही भविष्य में 'परमहंस बिहारी बाबा' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

रासबिहारी का जन्म एक ऐसी परिस्थिति में हुआ था जो अपने आप में अद्भुत घटना थी। कहा जाता है कि उन दिनों महेशचन्द्र उन्माद-रोग से पीड़ित थे। आपके उपद्रव से तंग आकर लोगों ने आपको जंजीर से बाँधकर एक कमरे में बंद कर रखा था। केवल भोजन और नित्यक्रिया के समय पुरुषों के घेरे में आपको मुक्त किया जाता था। उस वक्त कोई भी आपके सामने आने का साहस नहीं करता था।

एक दिन गंगा देवी घर में अकेली थीं। शाम होने के कारण घर के कमरों में दीपक जला रही थीं। ठीक इसी समय महेशचन्द्र अपने जंजीरों को खोलकर कमरे से बाहर आकर गंगा देवी के पास खड़े हो गये। पागल पति को अपने पास शांत भाव से खड़े होते देख गंगा देवी को बड़ा विस्मय हुआ। पति के चेहरे पर पागलपन के चिह्न नहीं थे। फिर भी गंगा देवी का सारा शरीर भय से काँपने लगा। यह देखकर महेशचन्द्र ने उन्हें आलिंगन पाश में बाँधते हुए कहा— ''डरो मत।''

शायद पति का पागलपन दूर हो गया है यह समझकर गंगा देवी ने अपने को आत्मसमर्पण कर दिया। गंगा देवी गर्भवती हो गयीं। थोड़ी देर बाद एक-एक कर लोग घर में आते रहे। महेशचन्द्र को कमरे के बाहर शृंखला से मुक्त देखकर सभी गंगा देवी से प्रश्न करने लगे। उन लोगों को बताया गया कि महेशचन्द्र का पागलपन दूर हो गया है। परीक्षा के लिए लोग उनसे बातें करने लगे। सही जवाब और ठीक ढंग से व्यवहार करते देख लोगों ने राहत की साँस ली।

अभी लोग बातचीत कर ही रहे थे कि पुनः महेशचन्द्र को दौरा आया और वे पहले की तरह उपद्रव करने लगे। अत्यन्त कठिनाई के साथ उन्हें पुनः जंजीरों से बाँधकर कमरे में बंद कर दिया गया। गंगा देवी को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि अभी-अभी जो व्यक्ति बुद्धिमानों की तरह व्यवहार करता रहा, वही सहसा बदल कैसे गया?

महेशचन्द्र की यह बीमारी लगातार बनी रही। जिस दिन बिहारीलाल भूमिष्ठ हुए, उसी दिन से उनमें सुधार होना प्रारंभ हुआ। कुछ दिनों बाद वे रोगमुक्त हो गये। लोगों ने अनुमान लगाया कि सन्तानोत्पत्ति के समय जिस प्रकार वे स्वस्थ हुए थे, उसी प्रकार बालक के जन्म के पश्चात् स्वस्थ हो गये हैं। यद्यपि घर के लोग काफी दिनों तक उन्हें संदेह की दृष्टि से देखते रहे। मुखोपाध्याय परिवार के लिए यह एक अद्भुत घटना थी।

सन् १८६४ ई० में बिहारीलाल जब पाँच वर्ष के हुए तब उनके मामा हरकान्त ठाकुर ने उन्हें अक्षरांभ कराया। बिहारीलाल बचपन से ही मेधावी थे, पर साथ ही साथ चंचल और नटखट भी थे। अक्सर घर से भागकर किसी पेड़ पर चढ़ जाते और वहीं घंटों बैठे रहते। भूख लगने पर कोयल की तरह कूकते तब माँ या परिवार का कोई व्यक्ति इन्हें वहाँ से पकड़ लाता था। साँपों के जानी दुश्मन थे। साँप को देखते ही उसे लाठी से मारकर घायल कर देते थे। घायल साँप को लेकर मित्रों के साथ खिलवाड़ करने की आदत रही। बिहारीलाल की इस आदत से नाराज होकर जब बड़े-बूढ़े डाँटते तब वे उनकी उपेक्षा कर देते थे।

बाल सुलभ चंचलता के अलावा एक विशेषता उनमें और थी। नदी या पोखर से करैली मिट्टी लाकर देव-देवियों की मूर्ति बनाकर पूजा किया करते थे। मित्रों में

अगर कोई सहयोग नहीं करता अथवा मजाक उड़ाता तो उससे झगड़ पड़ते थे। आपके बाल्यजीवन में इस तरह की अनेक घटनाएँ हुई हैं।

बालक धीरे-धीरे बड़ा होता गया। उपनयन-संस्कार के बाद बालक को त्रिसंध्या करना सिखाया गया। लोगों को इस बात की आशंका थी कि कहीं अपने जिद्दी स्वभाव के कारण ब्राह्मणोचित कार्य न करे। लेकिन यह आशंका निर्मूल सिद्ध हुई। संध्या गायत्री और पूजा-पाठ में उसका मन रम गया। यह देखकर घर के लोग आनन्दित हुए।

इस तरह कई वर्ष बीत गये। बिहारीलाल बालक से किशोर बन गया। कई जगहों से इनके विवाह के लिए निमंत्रण आने लगे। अन्त में कोला निवासी अभयचन्द्र घटक की पुत्री दक्षिणा देवी के साथ इनका विवाह हो गया।

विवाह के बाद बिहारीलाल प्रवेशिका परीक्षा (मैट्रिक) में उत्तीर्ण हुए। सन् १८७७ ई० में बिहारीलाल नारायणगंज आये जहाँ बड़े भाई साहब किसी जूट कम्पनी में कार्यरत थे। बड़े भाई के प्रयत्न से 'वार्कमायर ब्रदर्स' कम्पनी में आपकी नियुक्ति हुई। अपने श्रम और लगन के कारण कुछ ही दिनों में आपका वेतन साठ रुपये हो गया। केवल यही नहीं, जिस कुशलता से आप काम कर रहे थे और कम्पनी लाभान्वित हो रही थी, उसे देखते हुए अधिकारियों ने आपको कमीशन देना प्रारंभ किया। इस प्रकार उन दिनों आपकी मासिक आय २०० रुपये हो गयी। यह एक बड़ी उपलब्धि थी। आपके बड़े भाई अभी सामान्य बाबू मात्र थे। बिहारीलाल कम्पनी के अंग्रेज मैनेजर के सहायक बन गये।

कम्पनी के मैनेजर से घनिष्ठता बढ़ने के कारण बिहारीलाल को घर वापस आने में देर हो जाती थी। फलस्वरूप साहब के यहाँ भोजन करना पड़ता था। अंग्रेजों के दस्तरखान में शराब अनिवार्य रूप से रखा जाता था। फलस्वरूप बिहारीलाल को भी साहब के अनुरोध पर पीना पड़ता था। लेकिन इस बात की सावधानी वे बराबर बरतते थे कि रात को चुपचाप घर आकर अपने कमरे में सो जाया करते थे। अपने बड़े भाई से वे काफी डरते थे। कहीं शराब की महक का पता उन्हें न लग जाय, इस ओर से बराबर सावधान रहते थे। लेकिन अपराध का पाप अधिक दिनों तक छिपा नहीं रह सका।

बड़े भाई ने तिरस्कार करते हुए कहा— "प्रथम अपराध होने के कारण क्षमा कर रहा हूँ। भविष्य में इसकी पुनरावृत्ति हुई तो तुम्हारे दोनों हाथ काट दूँगा।"

बड़े भाई की फटकार से बिहारीलाल को बड़ी आत्मग्लानि हुई। उन्होंने कहा— "अब कभी शराब स्पर्श नहीं करूँगा।" बड़े भाई के प्रति बिहारीलाल की असीम श्रद्धा थी। अपने इस अपराध के कारण उन्होंने कम्पनी में जाना बंद कर दिया।

इनकी अनुपस्थिति मैनेजर को खल गयी। आखिर उसने आना क्यों बंद कर दिया। बिना सहयोगी के नशेबाजों को आनन्द नहीं मिलता। एक दिन मैनेजर घर आया

और बिहारीलाल को मनाकर ले गया। बातचीत के सिलसिले में सारी घटनाएँ सुनने के बाद मैनेजर ने कहा—''शराब न छूने की प्रतिज्ञा तुमने की है। कोई हर्ज नहीं। तुम्हें छूने की कोई जरूरत नहीं। तुम मुँह खोलो, मैं उसमें उड़ेल दूँगा।''

इस दिन पुनः उसे शराब पीनी पड़ी। धीरे-धीरे उसके चरित्र में दोष आने लगा। इसी बीच पत्नी गर्भवती हो गयी थी। प्रसव के लिए पीहर गयी हुई थी। एक दिन रात को बिहारीलाल ने स्वप्न में देखा कि उसकी आत्मा उसे फटकार रही है। चकित भाव से वह आत्मा की बातें सुनता रहा। उसे लगा जैसे सब कुछ माया है। यहाँ रहने से ऐसे ही लोग उसे पतन की ओर जबरन खींच ले जायेंगे। उस रात नींद से जागते ही उसने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया।

मानव-चरित्र अद्भुत है। कब, किसके मन में कौन-सी समस्या उत्पन्न होती है, इसे भोक्ता भी नहीं समझ पाता। एक दिन सब कुछ त्यागकर बिहारीलाल घर से गायब हो गये। कोई कुछ नहीं जान सका। चारों ओर उनकी तलाश में आदमी भेजे गये। जगह-जगह तार तथा पत्र लिखे गये। पुत्र के गायब होने के कारण पिता की हालत अधिक खराब हो गयी। उन्हें पुनः दौरा आने लगा। लाचार होकर लोगों ने हथकड़ी-बेड़ी लगाकर उन्हें पुनः कैद में डाल दिया। एक दिन रात को हथकड़ी-बेड़ी तोड़कर खिड़की के रास्ते वे न जाने कहाँ गायब हो गये।

महेशचन्द्र सबसे पहले ढाका गये। यहाँ पता न लगने पर वे पागलों की तरह अपने बेटे की तलाश में विभिन्न स्थानों पर चक्कर काटते हुए वृन्दावन चले आये। 'जिन खोजा तिन पाइंया' की भाँति आखिर एक दिन महेशचन्द्र की मुलाकात बिहारीलाल से हो ही गयी। पुत्र को देखते ही महेशचन्द्र का रोग दूर हो गया। उसे गले लगाते हुए वे देर तक रोते रहे। रोते-रोते महेशचन्द्र ने घर का सारा हाल बताया। अन्त में बिहारीलाल ने घर वापस जाने का निश्चय किया। यह सन् १८८६ की घटना है।

घर वापस आने पर माँ ने बड़े स्नेह के साथ कहा— ''क्यों हमें इतना कष्ट दे रहा है? अब अगर घर से भागा तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। मातृ-हत्या का पाप तुझे लगेगा।''

बिहारीलाल ने प्रतिज्ञा की कि अब वह माँ के जीवनकाल में घर से नहीं भागेगा। इन्हीं दिनों सूचना आयी कि बिहारीलाल की तीन साल की एक मात्र कन्या की मृत्यु हो गयी है। इस समाचार से बिहारीलाल को कोई दुःख नहीं हुआ। वैराग्य-भाव उदय होने के कारण उनके स्वभाव में परिवर्तन हो गया था। घर के लोगों ने प्रयत्न किया कि ऐसी हालत में बहू को यहाँ ले आये, पर बिहारीलाल राजी नहीं हुए। अपनी पत्नी का उन्होंने परित्याग कर दिया।

+ \+ \+ \+

इस प्रकार कुछ दिन बीत जाने के बाद परिवार के लोगों के अनुरोध पर उन्होंने

काम करने का निश्चय किया। इसी बीच जूट कम्पनी का मैनेजर अपने यहाँ नौकरी दिलाने का वचन दे गये, पर बिहारीलाल पुनः उस कीचड़ में पाँव रखना नहीं चाहते थे। उन्होंने निश्चय किया कि अब स्वतंत्र रूप से अपने पैरों पर खड़े होंगे। उनके इस निश्चय का स्वागत किया गया। माँ को इस बात की आशंका बराबर बनी रहती थी कि कहीं पुनः घर से भाग न जाय। आखिर एक दिन माँ ने अनुरोध किया कि वह पुनर्विवाह करके घर बसा ले।

बिहारीलाल ने कहा — ''क्यों मुझे बन्धन में फँसाना चाहती हो। एक को छोड़ चुका हूँ। दूसरे की जान साँसत में क्यों डालना चाहती हो? मैं अधिक दिनों तक यहाँ नहीं रहूँगा। केवल तुम्हारे कारण हूँ। फिर मेरी पत्नी और बच्चों की परवरिश कौन करेगा?''

माँ ने कहा — ''तुम्हारे मझले भैया निःसंतान हैं। भगवान् न करे तुम पुनः घर से भाग जाओ। अगर ऐसी घटना हुई तो मझली बहू और तुम्हारा भाई उनके देखरेख करेंगे।''

इस तर्क में मझली बहू ने सहयोग किया। फलस्वरूप बिहारीलाल को स्वीकृति देनी पड़ी। गोविन्द चक्रवर्ती की सुपुत्री सावित्री देवी के साथ बिहारीलाल का पुनर्विवाह हो गया। उन दिनों बिहारीलाल की उम्र तीस साल की थी। विवाह के एक साल बाद हैजे की बीमारी में माँ का देहान्त हो गया। इन दिनों बिहारीलाल त्रिपुरा जिले के चाँदपुर में स्वतंत्र रूप से जूट का कारबार करते थे। माँ के निधन के पश्चात् बिहारीलाल की उदासी बढ़ती गयी। पत्नी प्राणपण से सेवा करती थी, फिर भी उनकी वेदना में कमी नहीं हुई। इसी बीच उन्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई।

कुछ दिनों बाद बिहारीलाल ने अपनी पत्नी से कहा कि मैं तीर्थयात्रा पर जाना चाहता हूँ। क्या तुम मेरे साथ चल सकोगी? बच्चा अभी कुल जमा छह माह का था। माँ उसकी ममता को त्यागने में असमर्थ हो गयी। यह जानकर बिहारीलाल एक दिन पहले की तरह चुपचाप घर से चले गये। कुछ दिनों तक वे अपने एक मित्र के यहाँ रहकर साधन-भजन करते रहे। इसके बाद हरिद्वार चले आये। उत्तराखण्ड के विभिन्न स्थानों का दर्शन करने के बाद पुनः हरिद्वार आये। यहाँ वर्षा के समय साधु-संत नहीं रहते। सभी सुदूर चले जाते हैं। बिहारीलाल चण्डी पहाड़ पर चले गये। उन्होंने निश्चय किया कि लोकालय से दूर जंगल में साधना शांति से हो सकती है। दिन भर शांत परिवेश में वे साधन-भजन करते और रात को पेड़ पर चढ़ जाते। बचपन में वे पेड़ों पर चढ़कर कैसे रहा जाता है, इसका अभ्यास कर चुके थे। एक डाली पर लेटकर अपने शरीर को धोती से बाँध लेते थे ताकि गहरी नींद आ जाने पर नीचे गिर न पड़े। रात के समय जंगली जानवर शिकार की तलाश में चक्कर काटते रहते थे। एक बार एक चीते ने उछलकर हमला किया था और इनकी जाँघ को नोंच लिया था। दूसरी बार एक बाघ

ने इनकी जाँघ पर दाँत गड़ाया तो बिना विचलित हुए बिहारीलाल ने कहा– ''तू मुझे खाना चाहता है? खा ले। शायद भगवान् की यही इच्छा है।''

बिहारीलाल ने सुन रखा था कि जंगली जानवरों से सद्व्यवहार करने पर हिंसक-प्रवृत्ति का प्रदर्शन नहीं करते। इनकी बात सुनते ही बाघ चुपचाप नीचे उतर गया। चीता और बाघ द्वारा किये क्षत के निशान उनकी जाँघ पर आजीवन बना रहा। बिहारीलाल को इस बात पर आश्चर्य होता कि उनके जैसे अकिंचन पर भी भगवान् की कृपादृष्टि निरन्तर बरसती है। जंगली फलों का सेवन करते हुए वे गुफाओं में दिन गुजारते रहे। एक बार उन्हें लगातार पाँच दिनों तक अनाहार रहना पड़ा। भूख के कारण साधन-भजन में मन नहीं लग रहा था। ठीक इसी समय एक चील के मुँह से एक पोटली उनके सामने गिरी। यह देखकर बिहारीलाल अपने स्थान से दूर जाकर बैठे ताकि चील निडर होकर अपना भोजन ले जा सके। कुछ देर बाद चील पुनः आयी और उस पोटली को मुँह से उठाकर उड़ गयी। पुनः बिहारीलाल के पास उक्त पोटली गिरी। इस बार काफी नजदीक गिरी थी। आश्चर्य की बात यह रही कि पोटली गिराने के बाद चील न जाने कहाँ गायब हो गयी। अब बिहारीलाल उत्सुकतावश पोटली के समीप आये और उसे खोलकर देखा—उसमें गरम-गरम पूरियाँ, आलू की तरकारी और हलवा था।

इस भयंकर जंगल में ऐसी सामग्री को पाकर बिहारीलाल उस परमब्रह्म परमात्मा की कृपा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए आनन्दाश्रु बहाने लगे जिनकी आराधना के लिए वे यहाँ आये हैं। भोजन समाप्त करके वे पानी की तलाश में पहाड़ पर से नीचे उतरने लगे। कहीं कोई झरना, सोता नहीं दिखाई दिया। ठीक इसी समय कुछ महिलाएँ पानी का कलश लिए जाती हुईं दिखाई दीं। उनमें से एक पास आकर बोली—''पानी पिओगे?''

बिहारीलाल ने सिर हिलाकर जताया कि हाँ। वह कलश से पानी उनकी अंजलि में उड़ेलने लगी। भरपेट पानी पीने के बाद बिहारीलाल ने उस महिला को साक्षात् भगवती समझकर प्रणाम किया। वह महिला कलश लेकर एक पेड़ के पीछे गयी और अचानक अदृश्य हो गयी। यह देखकर बिहारीलाल अवाक् रह गये। इस सुनसान स्थान पर भगवान् ने कैसी लीला की?

इस घटना के बाद से उन्हें भोजन की कभी कमी नहीं हुई। वे कुछ दूर स्थित एक गाँव में जाते और वहाँ से भीख में आटा माँग लाते। आटे की लिट्टी बनाकर झोले में रख लेते। जब भूख लगती तब दो-एक खा लेते थे। इसी प्रकार साधन-भजन करते हुए अगले साल काशी आये। यहाँ अपने उन मित्रों से मिले जिनके साथ हरिद्वार, ऋषिकेश में वे साधना करते रहे। यहाँ कुछ दिनों तक रहने के पश्चात् पुनः तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। चारों धाम के अलावा अन्य अनेक स्थलों की यात्रा उन्होंने की, पर उन्हें अपने गुरु के दर्शन नहीं हुए। बिहारीलाल योग्य गुरु की खोज में चारों ओर

भटकते रहे। दरअसल उनकी एक प्रतिज्ञा थी। उनकी माता ने देहत्याग के समय एक 'इष्टमंत्र' सुनाया था। बिना प्रश्न किये जो व्यक्ति उस मंत्र को सुनायेगा, वही मेरा गुरु होगा। भारत के विभिन्न स्थानों में अनेक संतों से मुलाकात हुई, पर बिहारीलाल की प्रतिज्ञा अभी तक पूरी नहीं हुई थी।

+ + + +

पुनः उत्तराखण्ड की ओर चल पड़े। इस बार उनका लक्ष्य मानस-सरोवर था जिसके बारे में उन्होंने सुन रखा था—

मानस सरोवर कोन पर्शे, जहाँ बिन बादल हिम वर्षे।
उड़त कस्कर जीव तरसे, नर-नारायण जाय पर्शे ॥

सन् १८९७ ई० में बिहारीलाल मानस-सरोवर पहुँचे। कई दिनों तक भ्रमण करने के बाद सहसा एक संत के दर्शन हुए। इस दिव्यमूर्ति को देखकर बिहारीलाल का हृदय अपूर्व भाव से विमोहित हो गया। उन्हें लगा जैसे यही मेरे वास्तविक गुरु हैं जिनकी तलाश में अब तक वे परेशान थे।

बाबा जिन्हें स्थानीय लोग "पहाड़ी बाबा" के नाम से जानते थे, मानस-सरोवर में उनका स्थायी आश्रम है, पर वे गंगोत्री के समीप एक गुफा में अधिकतर रहते थे। इस वक्त गंगोत्री से मानस-सरोवर स्थित सिद्धाश्रम जा रहे थे। बिहारीलाल के निवेदन करने पर बाबा ने उन्हें बंगाली, दुर्बल चित्त आदि कहकर दुत्कार दिया। लेकिन बिहारीलाल इस अपमान से निराश नहीं हुए। बराबर कृपा-भिक्षा माँगते रहे। बाबा चुपचाप अपनी गुफ़ा के भीतर चले गये। शायद वे सूक्ष्म रूप से बिहारीलाल के अस्तित्व की परीक्षा लेते रहे। बिहारीलाल गुफा के बाहर बैठकर बाबा के आगमन की प्रतीक्षा करते रहे। आहार-निद्रा त्यागकर बिहारीलाल दो सप्ताह तक बाहर बैठे रहे तब जाकर बाबा बाहर आये।

बिहारीलाल जब तीर्थयात्रा के लिए रवाना हुए थे तब तीस हजार रुपया लेकर चले थे। अब तक की यात्रा में छब्बीस हजार रुपये खर्च हो गये हैं। शेष चार हजार के नोट कमर में बाँध रखा है। पहाड़ी बाबा ने अपनी अतीन्द्रिय शक्ति से इस रहस्य को जान लिया। उन्होंने बिहारीलाल से कहा— "चला है साधना का मार्ग ढूँढ़ने, यहाँ दीक्षा लेने आया है, पर अभी तक माया से जकड़ा हुआ है।"

थोड़ी देर तक चुप रहकर पहाड़ी बाबा ने मुस्कराते हुए कहा— "मोह-माया में जब तक उलझा रहेगा तब तक इष्ट नहीं मिलेगा। क्या करेगा चार हजार रुपये? फेंक दे इसे।"

बाबा की बातों ने बिहारीलाल पर जादू सा असर डाला। उस वक्त वे पहाड़ी बाबा के आकर्षण से प्रभावित हो गये थे। बिना द्विधा के उन्होंने सारी रकम पहाड़ पर

बिखेर दिये। पहाड़ी बाबा ने कहा— "अब तू मुक्त हो गया। भगवान् भक्तों की हमेशा रक्षा करते हैं।"

पहाड़ी बाबा ने बिहारीलाल को यथाविधि दीक्षा दी। दीक्षा के समय मातृ वाक्य को सुनते ही बिहारीलाल आनन्द से विभोर हो गये। आज उनकी मनोकामना पूर्ण हो गयी।

दीक्षा देने के बाद गुरुदेव ने कहा — "आज से तीन साल तक तुम्हें मौन रहकर साधना करनी होगी। हरिद्वार, वृन्दावन या काशी जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, सुविधा प्राप्त हो, वहाँ रहना। तीन साल के बाद पुनः यहाँ आना।"

इस आदेश को पाकर बिहारीलाल ने गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम किया। आशीर्वाद देने के पश्चात् गुरुदेव अपने आश्रम चले गये।

बिहारीलाल कुछ दिनों तक हरिद्वार और वृन्दावन में व्यतीत करने के बाद काशी आकर जम गये। उन दिनों वे पूर्ण दिगम्बर थे, इसलिए 'नागा बाबा' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। अचानक तीर्थ करने के लिए बड़े भाई काशी आये और उनकी मुलाकात बिहारीलाल से हो गयी। वे घर वापस चलने के लिए अनुरोध करने लगे। वहीं चलकर तुम साधना करना। पिताजी तुम्हारे लिए बड़े व्याकुल हैं। सारी बातें सुनने के बाद बिहारीलाल इस शर्त पर चलने को तैयार हुए कि कोई मुझे वहाँ रहने के लिए मजबूर नहीं करेगा।

गाँव आते ही उन्हें यह ज्ञात हो गया कि उनके आज्ञानुसार पत्नी ने मझली भाभी को अपना पुत्र दान कर दिया है। लेकिन एक दिन जब वे भोजन कर रहे थे तब उन्होंने सुना कि उनकी पत्नी मझली भाभी से पूछ रही हैं — "बच्चा रोता है क्या?" पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि अभी तक पत्नी में अपने बच्चे के प्रति मोह है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपनी पत्नी से कुछ नहीं कहा। एक दिन चुपचाप काशी चले आये। काशी में दशाश्वमेधघाट पर आसन जमाकर गुरु के निर्देशानुसार साधना करने लगे।

अभी तक उन्होंने संन्यास नहीं लिया था। शीतलाघाट के ऊपर सरस्वती मंदिर के पास धूनी लगाकर मौन बैठे रहते। शरारती लोग उन्हें छेड़ने लगे। कभी धूनी बुझा देते, कभी धूनी पर इन्हें ढकेल देते। एक बार उन्हें इस तरह ढकेला गया कि उनकी जाँघ जल गयी। दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी थे जो उनकी सेवा करते थे। दो-तीन भद्र महिलाओं की सेवा से वे पुनः स्वस्थ हो गये। बिहारीलाल शरारत करनेवालों को कभी डाँटते या बिगड़ते नहीं। वे यह समझकर उन्हें माफ कर देते थे कि यह मेरा प्रारब्ध भोग है। इसके विपरीत इन तथाकथित गुण्डों से स्नेह पूर्वक व्यवहार करते रहे।

साधना के तीन वर्ष पूर्ण होने के बाद बिहारीलाल पुनः गुरु-चरणों में उपस्थित हुए। शिष्य साधना के माध्यम से काफी उन्नत हो गया है समझकर उन्होंने बिहारीलाल

को संन्यास देने का निश्चय किया। सभी लोगों को पिण्डदान देने के बाद गुरु के निर्देश से उन्होंने कहा—

तृप्यध्वं पितरो देवा देवर्षिमातृकागणाः ।
गुणातीतपदे यूयमनृणीकुरुताचिरात ॥

अर्थात् ''हे पितृगण, हे देवगण, हे देवर्षि और ऋषिगण, आप सभी तृप्त हों, मैं गुणातीत पद की ओर गमन कर रहा हूँ। आप लोग अपने-अपने ऋण से मुझे मुक्त करें।''

इसके पश्चात् आत्मश्राद्ध, पिण्डदान, त्र्यम्बक मंत्र की उपासना के बाद धूनी प्रज्ज्वलित कर आहुति दी गयी। पूर्णाहुति के पश्चात् विरजा-यज्ञ समाप्त हुआ। यज्ञाग्नि संभूत भस्मांश खाते ही बिहारीलाल अपने में अपूर्व तेज अनुभव करने लगे। गुरु के संन्यास मंत्र प्राशन देने के बाद बिहारीलाल ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। गुरु ने उनके दोनों बाँहों को पकड़कर उठाया और कहलवाया—

नमस्तुभ्यं नमोमूह्यं तुभ्यं महं नमोनमः।
त्वमेव तदहमेव विश्वरूपं नमोहस्तु ते॥

[तुम्हें नमस्कार, मुझे नमस्कार, तुम्हें और मुझे बार-बार नमस्कार करता हूँ। हे विश्वरूप, तुम वही पदवाच्य, तुम वही परब्रह्म हो, अतएव तुम्हें बार-बार नमस्कार।]

सन् १९०१ में उन्होंने संन्यास-ग्रहण किया। उन दिनों आपकी उम्र एकतालीस वर्ष की थी। गुरु की आज्ञानुसार आप काशी चले आये और दशाश्वमेधघाट के ऊपर अपना आसन लगाया। अभी पिताजी जीवित थे। उनकी इच्छा हुई कि एक बार वे अपने रासबिहारी को देख लें। अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए वे अपने लड़कों के साथ काशी आए और गाँव चलने का आग्रह किए। बिहारीलाल ने पहलेवाली शर्त रखी। इसके बाद भाइयों के साथ गाँव चले गये।

पिताजी ने संन्यास लेने की सारी कहानी सुनने के बाद घर में रहने का आग्रह नहीं किया। कुछ दिनों बाद वे पुनः काशी चले आये। घाट के ऊपर बिहारी बाबा का रहना पण्डों को पसंद नहीं था। नगर की अधिकांश महिलाएँ इसी घाट से शीतला मंदिर दर्शन करने तथा गंगा-स्नान के लिए आती हैं। बाबा को यहाँ से खदेड़ने पर अधिकांश लोगों को नाराज होते देख लोगों ने उनके लिए लकड़ी का एक कमरा बनवा दिया। इस कार्यवाही पर म्युनिसिपल बोर्ड ने आपत्ति की। फलतः वे अस्सीघाट चले गये। बिहारी बाबा के चले जाने पर अनेक भक्तों ने जिला कलक्टर के पास आवेदन दिया। फलस्वरूप कलक्टर ने अपनी देखरेख में पुनः नया निवास स्थान बनवाया। इसके पूर्ववाला तोड़ दिया गया था। बाबा पुनः यहाँ आकर रहने लगे। स्नानार्थी, भक्त लोग फल, मीठा, दूध आदि चढ़ाते थे। लेकिन बाबा इन सामग्रियों का उपयोग नहीं करते

थे। भक्त, बालक तथा अन्य लोग चढ़ावा खा जाते थे। अगर कोई बहुत आग्रह करता तो उसकी सामग्री से कुछ अंश खा लेते थे।

सन् १९११ में बाबा ने इशारे से लोगों को बताया— ''मैं यहाँ विशेष कारण से रह रहा हूँ। मेरे गुरु का आदेश है कि नगर के लोगों के मंगल के लिए यहाँ साधना करो ताकि तुम सब में धार्मिक-भावना का विकास हो, साधना और तपस्या के प्रति लगाव हो। इस काशी नगरी में अनेक संत इसी उद्देश्य से यहाँ आते रहे। मैं भी गुरु के आदेश से यहाँ आया हूँ, वर्ना मेरे लिए स्थान की कमी नहीं है।''

बिहारी बाबा गुरु के आदेशानुसार मौन रहकर इशारे से अपना भाव व्यक्त करते थे। जिन भक्तों की मनोकामना बिहारी बाबा के आशीर्वाद से पूरी हो जाती थी, वे उनके कट्टर भक्त बन जाते थे। यहाँ तक कि आपकी ख्याति अंग्रेजों में भी फैल गयी। कभी-कभी मौज आने पर वे लीला करते थे। पण्डों के साथ टहलने निकलते तो अचानक अदृश्य हो जाते। गंगा में स्नान करने गये तो डुबकी लगाते ही न जाने कहाँ गायब हो जाते। लोग बेचैन होकर उन्हें खोजते। एकाएक पीछे की ओर नजर जाते ही लोग देखते कि बाबा यहाँ खड़े-खड़े मुस्करा रहे हैं।

इसी प्रकार की अनेक घटनाओं को निरन्तर देखते रहने पर स्थानीय पण्डों को विश्वास हो गया कि बाबा साधारण संन्यासी नहीं हैं। सिद्धयोगी हैं। अब अगर कोई व्यक्ति बाबा के साथ शरारत करता तो उसे सजा देते थे। बाबा के कारण उनकी आय में भी वृद्धि हो रही थी।

+ + + +

एक बार बाबा के पास एक शराबी दो बोतल शराब लेकर आया। उद्देश्य था कि बाबा इसे प्रसाद बना दें। उसका उद्देश्य समझते ही बाबा ने एक के बाद एक करके दोनों बोतलों को खाली कर दिया। बाबा को इस तरह शराब पीते देख शराबी की हालत 'काटो तो खून नहीं' जैसी हो गयी। वह तुरंत वहाँ से कुछ दूर हटकर शराब की प्रतिक्रिया देखने लगा। बाबा पर कोई असर नहीं हुआ।

इसी प्रकार एक बार एक बदमाश व्यक्ति विष मिलाकर दूध ले आया और बाबा से पीने के लिए आग्रह करने लगा। बिहारी बाबा अपनी अतीन्द्रिय शक्ति से इस व्यक्ति की हरकत को जान गये। वह व्यक्ति सामने बैठा रहा। इसी बीच दो-चार भक्त और आ गये।

ठीक इसी समय एक कुत्ता आया और दूध के बरतन में मुँह लगाया तो बैठे हुए भक्तों ने उसे भगाना चाहा, पर बाबा ने मना कर दिया। कुत्ते के थोड़ा-सा पी लेने के बाद बाबा ने उसे हटा दिया। देखते ही देखते कुत्ता बेहोश होकर गिर पड़ा। यह दृश्य देखकर उपस्थित लोगों को समझते देर नहीं लगी कि यह दूध बाबा को दिया गया है। तुरंत उस व्यक्ति को पकड़कर लोगों ने पुलिस के हवाले कर दिया।

बारिशाल जिले की सुधा बसु बालविधवा थी जो काशी आकर अपना शेष जीवन व्यतीत कर रही थी। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अत्यन्त कठोरता के साथ करती रही। एक दिन जब वह गंगा स्नान के लिए जा रही थी तब उसने देखा कि बाबा स्नान करके मंदिर के सामने खड़े हैं। एक अनजानी प्रेरणा से सुधा देवी गमछे से बाबा का शरीर पोछने लगी। बाबा ने विरोध नहीं किया। इस घटना के बाद से वह बराबर बाबा की सेवा करने लगी।

यहाँ तक कि एक दिन बाबा ने इशारे से सूचित किया— "तुम मेरी माँ हो। मैं स्तन-पान करना चाहता हूँ।"

सुधा बालविधवा है, यह बात वह बाबा को बता चुकी थी। बाबा की इच्छा जानकर उसने बाबा को स्तनदान किया। बाबा छोटे बालक की तरह स्तन-पान करने लगे। बाबा की धूनी पर पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की अधिक भीड़ देखकर कुछ मनचले विद्यार्थियों का हृदय कलुषित हो गया। एक दिन उन्होंने एक अन्य ब्रह्मचारी से शिकायत करते हुए कहा— "बाबाजी बहुत ही भ्रष्ट प्रकृति के हैं। रात को महिलाओं के साथ रंगरेलियाँ मनाते हैं।"

ब्रह्मचारीजी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा — "क्या तुम लोगों ने अपनी आँखों से देखा है?"

उद्दण्ड विद्यार्थियों ने कहा — "जी हाँ। चाहे तो आप रात को किसी भी दिन छिपकर यह दृश्य देख सकते हैं।"

ब्रह्मचारीजी ने कहा — "ठीक है। आज मैं यह दृश्य देखूँगा। अगर तुम लोगों की बात सही निकली तो कल सबेरे बाबा के हाथ-पैर बाँधकर गंगा में फेंक दूँगा। बाबा बनने का सारा ढोंग समाप्त हो जायगा।"

उस दिन रात के समय ब्रह्मचारीजी आड़ में छिपकर बिहारी बाबा के पास आने-जाने वालों की हरकत गौर से देखते रहे। सारा दृश्य देखकर वे अवाक् रह गये।

सबसे पहले दो-एक मुसलमान आये। उन लोगों ने बाबा को माला पहनाकर प्रणाम किया। बोले— "हम लोग नमाज के वक्त आपको देखते हैं। हमारे ऊपर आपकी बड़ी मेहरबानी है।"

कुछ मुसलमान बाद में फल-दूध ले आये और उनके निकट रखकर चले गये। बाबा के कुछ भक्त मुसलमान भी थे। इन लोगों के जाने के बाद एक महिला आयी और अपने स्तन को खोलकर उनकी ओर बढ़ायी। बाबा अपने दोनों हाथ जमीन पर रखकर बच्चों की तरह स्तनपान करने लगे। कुछ देर बाद महिला ने स्तनदान बंद कर दिया। बाबा भी तनकर बैठे। महिला ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया और कहा — "बाबा, आज्ञा दीजिए।"

इन सभी दृश्यों को देखकर ब्रह्मचारीजी अभिभूत हो उठे। विद्यार्थियों का दल चकित रह गया। अपने इस अपराध के कारण वे बाबा के निकट आये और उन्हें प्रणाम कर वापस चले गये। ब्रह्मचारीजी ने इस घटना का जिक्र बाद में अनेक लोगों से किया था।

सन् १९११ में बिहारी बाबा की पत्नी श्रीमती सावित्री देवी काशी आयीं। उनकी इच्छा थी कि यहाँ रहकर पति की सेवा करें, पर बाबा ने मना कर दिया। वे बाबा से दूर एक पण्डे के घर में रहने लगीं। बाबा मंदिर का दरवाजा खोलकर रात भर बैठे रहते।

५ फरवरी, सन् १९१२ ई० के दिन गंगा स्नान करने के बाद बाबा पण्डाजी के घर आये और सुधा देवी से कहा— "जरा केदार पण्डा को बुला लाओ।"

केदार पण्डा ने आकर कहा— "हुक्म बाबाजी।"

हाथ के इशारे से बिहारी बाबा ने कहा— "अब मैं जा रहा हूँ।"

यह बात सुनकर सभी घबड़ा गये। केदार पण्डा तुरंत उमाचरण कविराज को बुलाने गये। सावित्री और सुधा देवी उनकी पीठ सहलाने लगीं। तभी बाबा ने कहा— "तुम लोग अब मुझे स्पर्श मत करो। तुम लोगों को अब रोने की जरूरत नहीं है। मैं जा रहा हूँ।" कहने के साथ ही वे लुढ़क गये। तभी केदार पण्डा और कविराजजी आये। कविराजजी ने क़हा— "बाबा चले गये।"

देखते ही देखते अपार भीड़ एकत्रित हो गयी। 'हर-हर महादेव' की ध्वनि के साथ पत्थर की पेटिका में बाबा का स्थूल रखकर लोगों ने गंगा में विसर्जित कर दिया।

कहा जाता है कि उच्चकोटि के साधक अपनी ऐशी-शक्ति के प्रभाव से बराबर भक्तों तथा प्रियजनों को दर्शन देते हैं और सत्कर्म में सहायता करते हैं। एक दिन जब सावित्री देवी ने मंदिर के दरवाजे को खोला तो देखा— सामने पद्मासन लगाये बाबा बैठे हैं। इसी प्रकार एक दिन वे एक लड़की के साथ पण्डाजी के घर में बैठी बातें कर रही थीं अचानक दोनों महिलाओं ने देखा कि बगलवाली सीढ़ी से वे शिव मंदिर में चले गये। कई बार इस तरह की घटना होने के बाद अक्सर संकट के समय बाबा का ध्यान करने पर वे प्रकट होकर सावित्री देवी को अभय देते थे।

एक दिन पण्डाजी के घर पर कई मुसलमान भक्तों ने आकर कहा— "पण्डितजी, बाबा आप लोगों के संत जरूर रहे, पर आज भी हमें नमाज के वक्त दर्शन देते हैं, इसीलिए हम उनका आसन छूने आते हैं।"

सुधा देवी एक बार बदरीनाथ दर्शन करने गयीं तो डाकुओं ने उन्हें एकांत में पकड़ लिया। साथ के लोग काफी आगे चले गये थे। डाकुओं ने सुधा को घायल करके सब कुछ छीन लिया। पत्थरों से इतना मारा था कि सामने के कई दाँत टूट गये थे। ठीक से बोल नहीं पाती थीं। इसके बाद उन्हें सड़क से दूर एक गुफा में फेंककर भाग गये। होश आने पर वे बाबा का स्मरण करने लगीं।

अचानक बाबा सशरीर उपस्थित हो गये। सुधा देवी को गोद में उठाकर ऊपर झरने के पास ले आये। मुँह में पानी के छींटे देकर उन्हें होश में लाये। जब वे पूर्ण रूप से होश में आयीं तो देखा बाबा गायब हो गये थे।

थोड़ी देर बाद आगे बढ़ गये लोगों में से मृत्युंजय सुधा देवी की खोज में आया। सारी कहानी सुनने के बाद साथ के सभी लोग चारों ओर डाकुओं को खोजने लगे। बाबा की कृपा से सभी अवश होकर एक जगह बैठे थे। उन सभी को पकड़कर इन लोगों ने पुलिस को सौंप दिया। इसी प्रकार न जाने कितने भक्तों पर बाबा कृपा करते रहे।

जिस प्रकार डेढ़सी के पुल के समीप रहनेवाले खिचड़ी बाबा के बारे में लोगों को कम जानकारी है, उसी प्रकार बिहारी बाबा के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। खिचड़ी बाबा भूखे भिखारियों को बराबर खिचड़ी खिलाते थे। कहा जाता है कि उनकी हँड़िया कभी खाली नहीं होती थी। खिचड़ी बाबा के पूर्वाश्रम का परिचय किसी को नहीं मालूम है। केवल उनकी चमत्कारपूर्ण कहानियाँ ही प्रसिद्ध हैं।

ठीक यही स्थिति मौनी बाबा के बारे में है। न जाने कितने लोग दशाश्वमेधघाट पर स्नान करने और गंगा माता का दर्शन करने जाते हैं। घाट के ऊपर एक छोटे से मंदिर में मौनी बाबा की संगमरमर की मूर्ति स्थापित है। बाहर छोटा-सा शिलापट्ट है, पर उनके बारे में पूर्ण जानकारी कहीं प्राप्य नहीं है।

इस मंदिर के निर्माण में स्वनामधन्य वकील श्री राममोहन दे, राजा मोतीचन्द, तत्कालीन कमिश्नर आदि का हाथ था। बिहारी बाबा की पत्नी सावित्री माता अगर उग्र रूप धारण कर मंदिर की रक्षा न करतीं तो कुछ दुष्ट प्रकृति के लोग इसे गिरवा देते। इसके बाद सावित्री देवी के प्रयत्न से 'मौनी बाबा सिद्धाश्रम' की स्थापना हुई।

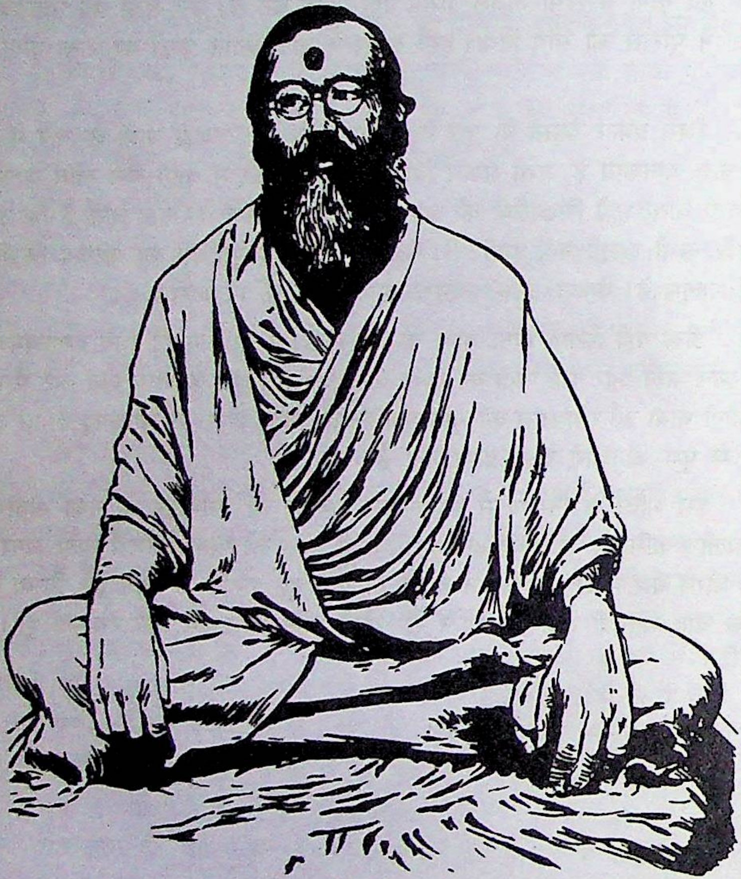

स्वामी उमानन्द

स्वामी उमानन्द

कुछ संतों को गुरु के निर्देशानुसार कठोर साधना करनी पड़ती है। कुछ ऐसे हुए हैं जो नाम के सहारे योगी बन गये हैं और कुछ ऐसे भी हुए जिन्हें बचपन में ही दैवी शक्ति प्राप्त हो जाती है। स्वामी उमानन्द को स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि बिना प्रयास के एक दिन उन्हें घर-द्वार छोड़कर संन्यास ग्रहण करना पड़ेगा।

पूर्वी बंगाल (वर्तमान बांग्लादेश) के विक्रमपुर परगना के अन्तर्गत तेटिया नामक गाँव था। पद्मा नदी के किनारे वहाँ के जमींदार का एक महलनुमा विशाल भवन था जिसमें पचास के ऊपर कमरे थे। जमींदार कायस्थ थे, उपाधि दत्त थी।

बंगाल में एक लोकोक्ति प्रचलित है— धनवानों के यहाँ चार प्रकार के राम जन्मग्रहण करते हैं— १- केनाराम, २- बाबूराम, ३- बेचाराम और ४- हाभातराम। अर्थात् प्रथम पुत्र केनाराम अपनी बुद्धि और कार्यकुशलता से बाप-दादों की सम्पत्ति में श्रीवृद्धि करते हैं। दूसरे बाबूराम बाप-दादों की जायदाद के जरिये गणमान्य यानी प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। तीसरे बेचाराम एय्याशी, बढ़ते खर्च के निवारण के लिए पूर्वपुरुषों की जायदाद बेचते हैं। चौथे हाभातराम के भाग्य में पूर्वपुरुषों का कर्ज, खण्डहरवाला मकान, पारिवारिक कलह और वंश के आभिजात्य का झूठा अभिमान रहता है जबकि उनके लिए दोनों जून दो मुट्ठी अन्न मयस्सर नहीं होता।

चौथे प्रकार के हाभातराम यानी नृपेन्द्र कुमार इसी तेटिया गाँव के खण्डहर में, रविवार, नवम्बर माह, सन् १८८६ ई० के दिन भूमिष्ठ हुए थे। पिताजी समय पर स्कूल की फीस नहीं दे पाते थे। कर्ज का बोझ इतना बढ़ गया था कि भोजन को कौन कहे, कभी-कभी नाश्ते में कटौती करनी पड़ती थी। ऐसे माहौल में नृपेन्द्र कुमार का लालन-पालन हुआ।

सन् १६०५ ई० में बंग-भंग आन्दोलन प्रारंभ हुआ। उस समय बालक नृपेन्द्र ११वीं क्लास में अध्ययन करता था। उसके अध्यापक और तत्कालीन आन्दोलन के प्रमुख नेता सर्वश्री अश्विनी कुमार दत्त, जगदीश बाबू, कालीश पण्डित आदि उसके कालेज के अध्यापक थे। इन लोगों के कर्मठ जीवन का उस पर प्रभाव पड़ा। बारिशाल आन्दोलन में वह सक्रिय कार्यकर्ता था।

सन् १६१२ ई० में जब नृपेन्द्र कुमार की नियुक्ति ढाका कालेज के इतिहास विभाग में हुई तब वह कालीश पण्डित को प्रणाम करने गया। आशीर्वाद देते हुए पण्डितजी ने कहा—"देखो बेटा, एक बात याद रखना कि गीता-पाठ कभी मत छोड़ना।"

कालीश पण्डित के आशीर्वाद का असर यह हुआ कि वह रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद आदि ग्रंथों का अध्ययन करता रहा। आगे चलकर पी-एच०डी० की डिग्री प्राप्त की। अब वेतन में बढ़ोत्तरी हो गयी। कर्ज का बोझ हल्का होता गया। इसी बीच दो पुस्तकें प्रकाशित हुईं। कलकत्ते में अपना मकान हुआ और गाड़ी भी खरीदी। लेकिन एक दुर्घटना भी हुई। प्रथम पुत्र १७ वर्ष का होकर चल बसा। दूसरा पुत्र अभी पाँच वर्ष का था। साथ ही सिर पर कर्ज का बोझ था और बंगाल में संस्कृत भाषा के प्रचार का कार्य करना था।

ठीक इन्हीं दिनों अर्थात् सन् १६२६ ई० में उनका श्रीमत् साधु ताराचरण परमहंसदेव से सम्पर्क हुआ। साधु बाबा बंगाली-समाज में सर्वमान्य महात्मा माने जाते थे। पाश्चात्य-शिक्षा तथा इतिहास का अध्यापक होने के कारण नृपेन्द्र को साधु-संन्यासियों के प्रति तनिक भी श्रद्धा नहीं थी। साधु बाबा से मित्रों के घरों में अक्सर मुलाकात हो जाती थी। उनका प्रवचन सुनता, बातें सुनता और कुछ आकर्षण अनुभव करता। यह सब करते लगभग सात-आठ साल गुजर गये। अचानक साधु बाबा एक दिन उसके घर आये और एक मंत्र बताकर जप करने का आदेश दिया। इसके बाद वे चले गये। उस वक्त नृपेन्द्र को यह महसूस नहीं हुआ कि उनकी दीक्षा हो गयी। करते भी कैसे? जबकि मंत्र देते समय कोई अनुष्ठान नहीं हुआ और न मंत्र कान में सुनाया गया। बातचीत के सिलसिले में मंत्र बताकर साधु बाबा चले गये। मंत्र तो स्मरण रहा, पर आस्था न रहने के कारण उसने जप प्रारंभ नहीं किया। वास्तव में जप, मंत्र, दीक्षा, ध्यान आदि के प्रति उन्हें विश्वास नहीं था।

इस घटना के बाद ३-४ वर्ष और बीत गये। नृपेन्द्र यह नहीं जान सके कि जप न करने पर भी दीक्षा ने अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया है। अपने अनजाने वे साधु बाबा के प्रति आकर्षित होकर उनके यहाँ आने-जाने लगे।

एक रात को उन्हें स्वप्न में निर्देश मिला कि तुम अपने घर काली-पूजा करो। इस स्वप्न का क्या अर्थ है, यह पूछने के लिए वह साधु बाबा के पास आया। साधु बाबा पूजा करवाने के लिए उस पर दबाव डालने लगे। यहाँ तक कि अपने जीवन में जो कार्य कभी नहीं किया है, उसके लिए भी तैयार हो गया। काली-पूजा में वे पुरोहित बनेंगे। नृपेन्द्र को इस बात पर आश्चर्य के साथ-साथ प्रसन्नता भी हुई। पूजा के बाद साधु बाबा ने कहा—"पूजा खूब अच्छी तरह हुई है। इसका फल शुभ होगा।"

कौन-सा शुभ फल होगा, इसे नृपेन्द्र तत्काल नहीं समझ सका। बाद में धीरे-धीरे सब स्पष्ट हो गया।

इस पूजा के बाद साधु बाबा के प्रति नृपेन्द्र की आस्था बढ़ती गयी। अब वे नियमित रूप से उनके यहाँ आने-जाने लगे। पूरे ३१ वर्ष अध्यापन करने के बाद प्रोफेसरी से जी ऊब गया और समय से पहले उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने निश्चय किया कि शेष जीवन धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन में व्यतीत करेंगे। लेकिन सबसे बड़ी समस्या यह हुई कि जब भी वह कोई पुस्तक लेकर पढ़ने बैठते तब साधु बाबा हाजिर हो जाते थे। इस प्रकार उन्हें अध्ययन से विरत रहना पड़ता था। समझते देर नहीं लगी कि मैं कोई पुस्तक पढ़ूँ, बाबा को पसन्द नहीं है। इस प्रकार और पन्द्रह वर्ष गुजर गये। इसी बीच मन में अशान्ति उत्पन्न होने पर नृपेन्द्र ने अपने मन की स्थिति साधु बाबा को सुनाई। उन्होंने कहा—''माँ काली का ध्यान निरन्तर करो।''

माँ काली का ध्यान करने पर कुछ अनुभव नहीं हुआ। एकाएक एक दिन अपने भीतर से उसे दैववाणी सुनाई दी—''श्मशान।'' श्मशान के प्रति नृपेन्द्र के मन में भय और घृणा की भावना थी, पर वे दैववाणी की उपेक्षा नहीं कर सके। जलती चिता के पास जाकर वह बैठने लगे। धीरे-धीरे भय और घृणा की भावना दूर हो गयी। गंगापुत्र और डोम आत्मीय जैसे प्रतीत होने लगे। शवदाह से अशुचि और रोगाक्रान्त होना पड़ता है, यह भावना भी दूर हो गयी। साधु बाबा ने एक दिन कहा—''मनुष्य के मर जाने पर मृतदेह और देवता में कोई अंतर नहीं रहता। उन्हें प्रणाम करना चाहिए। चाहे वह किसी जाति का हो।''

अब उन्होंने चाय पीनी बंद कर दी। स्वल्पाहार करने लगे। लेकिन इन सब क्रियाओं से मन शान्त नहीं हो रहा था। पता नहीं, साधु बाबा ने क्या कर दिया है। नौकरी छोड़ दिया, भोजन भी छूटने की तरह है, पत्नी-बच्चों की माया से अलग हो गये। अब क्या होगा? क्या साधु बाबा मुझे गलत राह पर ले जा रहे हैं?

अन्त में बेचैनी इतनी बढ़ी कि वह कलकत्ता से चलकर अपने पैतृक निवास स्थान पर चले आये। उनके जाते ही पैतृक भवन में निवास करनेवाले सज्जन अन्यत्र चले गये। पचास कमरे, आम का बाग, दो तालाब, पद्मा नदी का किनारा, ३-४ ड्योढ़ी वाले भवन के भीतर पूजा मण्डप, दरबार हाल, सब कुछ सामने था। प्रजाओं में लोहार, नाई, धोबी, कैवर्त्त, भूँईमाली आदि थे। इनके अलावा बेलदार लठैत, मुसलमान किसान और कुछ शूद्रों के घर थे। दो हजार की आबादीवाले गाँव में ७५ प्रतिशत मुसलमान्थे।

यहाँ आकर उन्हें संतोष मिला। श्मशान जैसा सुनसान वातावरण था। यहाँ वे कृच्छ्रसाधन में लग गये। दैनिक कार्यों को समाप्त कर शेष समय जप-ध्यान में लगाते रहे। घर की बगल में श्मशान भूमि थी। वहीं माँ की चिता पर कालीमाता का मंदिर बनवाया।

आश्चर्य की बात यह रही कि जिस दिन मंदिर का निर्माण पूर्ण हुआ, उसके दूसरे दिन से गाँव में मलेरिया, हैजा और चेचक जैसी बीमारियाँ कम होने लगीं। लोगों में साहस

बढ़ाने के लिए नृपेन्द्र ने एक संकीर्तन-मण्डली स्थापित की। लेकिन इस मण्डली में बहुत कम लोग आते थे। कुछ आस्थावान हिन्दू महिलाएँ आकर कालीमाता से मन्नत माँगने लगीं। उन्हें उनका अभीष्ट मिल गया। इस प्रकार प्रचार होता गया।

गाँव का चौकीदार कालाजार से मरणासन्न था। बरवट काफी बढ़ गया था। इलाज के लिए पैसे नहीं थे। उसकी पत्नी ने स्वप्न देखा कि नृपेन्द्र के हाथ से प्राप्त सामग्री से उसका पति स्वस्थ हो गया है। जब चौकीदार की पत्नी ने नृपेन्द्र से पाद-अर्घ माँगा तो वह भौचक्का रह गया। उसने कातर स्वर में कहा कि देवी ने मुझे आपका पाद-अर्घ लेने की आज्ञा दी है। लाचारी में उसने पानी में पैर स्पर्श करके दे दिया। आश्चर्य की बात है कि उस जल से चौकीदार ३-४ दिन में स्वस्थ हो गया। इस घटना का प्रचार इतनी तेजी से हुआ कि हिन्दुओं के अलावा मुसलमान भी कीर्तन में भाग लेने आने लगे।

नृपेन्द्र कुमार दिन पर दिन विस्मय के सागर में तैरने लगे। आखिर यह कौन-सा चमत्कार हो रहा है। क्या यह कालीमाता की कृपा से हो रहा है या परोक्ष रूप से गुरुदेव का आशीर्वाद फलीभूत हो रहा है? गाँव में एक मौलाना रहते थे। वे १४ साल मक्का में थे। अरबी-फारसी और उर्दू के विद्वान थे। उनके अनेक शिष्य थे। उनसे अपनी चमत्कारवाली घटनाओं का जिक्र किया तो उन्होंने कहा—''आपके पास जो कोई आये, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, उसे अपने मन से आप जो कुछ भी देंगे, उससे उसका भला होगा। इसके लिए संकोच न करें।''

कहने की आवश्यकता नहीं कि मौलाना के सुपुत्र भी नृपेन्द्र से प्राप्त आशीर्वाद के फूल से स्वस्थ हो गया था। नृपेन्द्र ने अनुभव किया कि जब वे किसी को कुछ देते हैं या आशीर्वाद देते हैं तो उससे उसका लाभ होता है। इन घटनाओं के बारे में उन्होंने कहा—

''एक मुसलमान की लड़की आकर बोली कि उसका पति आज छः माह हुए कमाने के लिए आसाम गया है। आज तक न तो उसने एक पत्र भेजा और न रकम। मुझे डर है कि कहीं वहाँ किसी गैर औरत से शादी करके बस न गया हो या मर न गया हो।''

''मैंने उसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। तीसरे दिन उसके पति का पत्र आया और पत्र आने के कई रोज बाद वह काफी रकम कमाकर वापस आ गया।''

गाँव में एक नाई रहता था। आमदनी अधिक न होने के कारण पूरा परिवार कभी आधा पेट तो कभी अनाहार रहता था। उसकी आठ से बारह आने की दैनिक आमदनी थी। उन दिनों चावल की कीमत दो रुपये सेर थी। अन्त में नाई ने आत्महत्या करने को सोचा। उसी दिन मैंने उससे कहा—''ऐसा गलत कार्य मत करो। भगवान् का नाम लेकर काम पर जाओ। मंगल होगा।''

''कहने को मैंने आश्वासन दे दिया, पर भगवान् की क्या इच्छा है, यह वही जाने। उस दिन उसकी आमदनी तीन रुपये हुई थी और बाद में इसी प्रकार की होती गयी।''

"अब मुसलमान महिलाएँ भी मेरे पास आने लगीं। पहले रात को आती थीं। लम्बा घूँघट काढ़कर मेरे पास सिकुड़कर बैठती थीं। बहुत धीरे-धीरे अपनी बातें कहती थीं। बाद में पता चला कि उनके घर के पुरुषों ने उन्हें आने के लिए कहा है। एक दिन एक महिला ने संकोच के साथ पूछा—"आप तो अल्लाह के आदमी हैं, फिर कुरान में मनाही रहते आप क्यों मूर्तिपूजा करते हैं?" मैं इस तरह के प्रश्न के लिए तैयार नहीं था। दार्शनिक व्याख्या करने पर लोग समझ नहीं पाते। मैंने कहा—"मैं मूर्ति-पूजा नहीं करता। मेरे देवता मेरी माँ है। मैं खुदा को अर्थात् सृष्टिकर्ता को माँ मानते हुए सम्बोधन करता हूँ। कारण, मेरी माँ ने मुझे अपने पेट में रखा था, पैदा होने के बाद से वे अपने शरीर से आहार देकर मेरा लालन-पालन करती रहीं। जब तक मैं सक्षम नहीं हुआ तब तक वे मेरी रक्षा करती रहीं। उनसे बढ़कर मेरा कौन है। यही वजह है कि मैं अल्लाह को माँ मानता हूँ। संसार की प्रत्येक महिला मेरी माँ हैं, पर इतनी महिलाओं की पूजा कैसे कर सकता हूँ। यह कुरान में वर्णित मूर्तिपूजा नहीं है। मैं मूर्ति की पूजा नहीं करता। विश्वस्रष्टा माँ की पूजा करता हूँ।"

"मुझे मस्जिद में जाकर प्रार्थना करने में कोई संकोच नहीं होता था। मुझे लगता था जैसे मंदिर में बैठकर माँ का ध्यान कर रहा हूँ। धीरे-धीरे मुझमें वैष्णव-भाव का विकास होता गया। अन्न का त्याग कर चुका हूँ। गोश्त-मछली का प्रश्न ही नहीं उठता। चूहे, तेलचिट्टा, चींटी, खटमल, मच्छर, मक्खी आदि को समभाव से देखने लगा। साँप, गोजर, बिच्छू, कुत्ता, बिल्ली को प्यार करने लगा। अब मुझे साँप से डर नहीं लगता। साँप कमरे में, बिछौने पर, पूजा-स्थान पर विचरण करते थे। इन सभी के बीच मैं साधना करता रहा।"

+ \+ \+ \+

सन् १९४५ में नृपेन्द्रजी कलकत्ता चले आये। बातचीत के सिलसिले में एक दिन साधु बाबा ने उनसे पूछा कि "गाँव के मंदिर में कौन पूजा करता है?"

"पुरोहित करता है।"

"तुम क्यों नहीं करते थे?"

नृपेन्द्र ने चौंककर कहा—"ऐसा कैसे हो सकता है? एक तो मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। दूसरे मेरे खानदान की चौदह पीढ़ियों में किसी ने कभी काली-पूजा नहीं की है। मैं मंत्र-तंत्र भी नहीं जानता।"

साधु बाबा ने कहा—"हृदय में भक्ति और एकाग्रता रहना चाहिए। इसी से काली-पूजा हो जाती है।"

इस बातचीत के दो दिन बाद साधु बाबा काशी यात्रा के लिए जब चलने लगे तब उन्होंने कहा-"आश्रम में स्थित कालीमाता की पूजा की जिम्मेदारी आज से तुम पर होगी।"

नृपेन्द्रजी ने कहा–"मैं काली–पूजा की पद्धति या मंत्र वगैरह कुछ भी नहीं जानता। कम–से–कम कुछ सीखने का अवसर तो दीजिए।"

"मंत्र–तंत्र सीखने की जरूरत नहीं है। अपनी इच्छा के अनुसार पूजा करना।" इतना कहकर साधु बाबा गाड़ी पर बैठ गये।

कुछ देर बाद कई व्यक्तियों ने आकर कहा कि शाम हो गयी है। चलिये, आरती कर दीजिये। नृपेन्द्रजी बड़े असमंजस में पड़ गये। आरती में कौन–कौन से उपकरण लगते हैं, नहीं जानता। घण्टा कैसे बजाया जाता है, जो व्यक्ति नहीं जानता, वह पूजा करना कैसे जान सकता है? इधर नये पुजारी की आरती देखने के लिए लोग उत्सुक हो उठे। यह देखकर नृपेन्द्रजी का हृदय रो पड़ा। कैसे आरती हुई और क्या–क्या किया, यह उन्हें स्मरण नहीं रहा।

दूसरे दिन से नियमित रूप में घर से आश्रम आते, गंगा में स्नान करते, पूजा–आरती के बाद चण्डी पाठ करते। यह सब करने में दो बज जाता था। फिर शाम को यही सब करना पड़ता और तब रात दस बजे घर वापस आते। नित्य आठ मील पैदल चलना पड़ता था। यहाँ तक कि सन् १९४६ के दिनों जब दंगा, उपद्रव आदि का जोर था तब भी बिना नागा किये उन्हें आश्रम जाना पड़ता था। प्रचण्ड गर्मी, घुटने भर पानी में और कड़ाके की सर्दी में भी नृपेन्द्र को नित्य पूजा करना पड़ता था। बाबा जब काशी से लौटे तब नृपेन्द्रजी को विश्वास हो गया कि अब कालीमाता की पूजा से उन्हें मुक्ति मिल जायगी। बाबा से यह बात कहते ही वे उखड़ गये। बोले—"ठीक है, आज से अपना काम मैं स्वयं करूँगा। किसी को मदद करने की कोई जरूरत नहीं है।"

बाबा को नाराज होते नृपेन्द्र ने कभी देखा नहीं था। उन्होंने निश्चय किया कि अब तक जिस ढंग से वह पूजा करता आया है, उसी प्रकार वह करता जायगा। अपने इस निश्चय की सूचना उन्होंने बाबा को दी। उस वक्त बाबा की आकृति पर मधुर मुस्कान छा गयी। दरअसल इस पूजा के माध्यम से नृपेन्द्र को शक्ति सम्पन्न बनाने की इच्छा उनके मन में थी, परन्तु इसे प्रकट करना नहीं चाहते थे, इससे पात्र में अभिमान उत्पन्न हो जाता और ऐशी–शक्ति की हानि होती। बाबा यह समझ गये थे कि माँ की कृपा नृपेन्द्र पर हो गयी है जो शनैः–शनैः विकसित होती जायंगी।

इस घटना के कुछ दिनों बाद बाबा हिचकी–रोग से पीड़ित हुए। दिन–रात हिचकी लेते थे। आहार–निद्रा गायब हो गया था। दवा से लाभ नहीं हो रहा था। अपने गुरुदेव की यह हालत देखकर नृपेन्द्र मन ही मन बहुत दुःखी रहा। अचानक एक दिन पूजा करने के पहले उन्होंने सोचा कि पूजा के माध्यम से गुरुदेव का कष्ट दूर हो सकता है या नहीं? यह विचार आते ही उस दिन इस उद्देश्य से गुरु के निकट निवेदन करने के पश्चात् वे पूजा करने बैठे।

दूसरे दिन नृपेन्द्र जब घर से पूजा करने आये तो देखा कि गुरुदेव पहले की तरह खाट पर पड़े हैं। झल्लाकर उसने कहा—"अब मैं पूजा नहीं करूँगा।"

"क्यों? क्या हुआ जो पूजा नहीं करोगे?"

"जिस कार्य के लिए व्रती हुआ, उसका फल नहीं मिला। मैंने पूजा की, पर आपकी बीमारी दूर नहीं हुई। ऐसी निष्फल पूजा से क्या लाभ?"

बाबा ने हँसकर कहा—"पूजा करने के बाद से ही मेरी बीमारी दूर हो गयी। कमजोरी के कारण मैं खाट पर सोया हुआ हूँ।"

नृपेन्द्र को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि बाबा मुझे बहला रहे हैं। बाद में आश्रम के लोगों से पूछने पर पता चला कि पूजा समाप्ति के बाद से बाबा की हिचकी बंद हो गयी थी। यह जानकर नृपेन्द्र को हार्दिक प्रसन्नता हुई। उस दिन से विशेष भक्ति और उत्साह के साथ वे पूजा करने लगे।

+ + + +

काली-पूजा निरन्तर करते रहने के कारण उनके साथ बराबर अलौकिक घटनाएँ होती रहीं। यद्यपि इसकी शुरुआत गाँव में रहते समय हो गयी थी जिसका जिक्र आगे किया जा चुका है। कठिन रोगों से मुक्ति, मुकदमे में जीत, नौकरी पाना, परीक्षा में पास होना, खोयी हुई वस्तु की प्राप्ति आदि के मामले में नृपेन्द्र की विभूति प्रकट होने लगी। नृपेन्द्र यह बात अच्छी तरह से जानते थे कि एक साधक के लिए यह सब प्रक्रिया उचित नहीं है। साधना करते रहने पर यह अपने आप हो जाती है। किन्तु इधर ध्यान देने पर भगवान् साधक का ध्यान विपरीत दिशा की ओर मोड़ देते हैं, तब मन में स्वार्थ की भावना उत्पन्न होती है। इससे शक्ति की क्षय और हानि होती है। अब सवाल यह उठता है कि भगवान् इसे देते क्यों हैं? पुराणों में तप-भंग करने के लिए अप्सराएँ भेजी जाती थीं, नाना प्रकार के उपद्रव कर साधक को भयभीत किया जाता था, उसी प्रकार साधक के आत्मसंयम की परीक्षा के लिए विभूति दी जाती है। एक दृष्टि से यह लाभप्रद भी है। विभूतियाँ साधक के मन के अवसाद को दूर करती हैं, शक्ति-संचार करती हैं, पीड़ितों का मंगल करती हैं और साधना के मार्ग को प्रशस्त करती हैं। किन्तु योग्य गुरु "सावधान" करते हुए उसका मन साधना की ओर लगा देते हैं। नृपेन्द्रजी यह सारी बातें जानते हुए भी विभूति के लिए प्रयोग करते रहे।

टलीगंजवाले आश्रम में एक बूढ़ा नौकर रहता था। वह कमर-पैर की गठिया से पीड़ित हो गया। धीरे-धीरे हालत ऐसी हो गयी कि उसका चलना-फिरना दूभर हो गया। उसका इलाज जारी था, पर कोई भी दवा आराम नहीं दे रही थी। एक दिन जब नृपेन्द्र जप कर रहे थे तब उसे असह्य दर्द से कराहते देख उसे अपने पास बुलाया। जहाँ-जहाँ दर्द हो रहा था, वहाँ-वहाँ उन्होंने हाथ फेरने के बाद पूछा-"दर्द में कुछ कमी हुई?"

पहले धीरे-धीरे और बाद में उछलते हुए उसने हर्ष से चिल्लाते हुए कहा–''मैं बिलकुल ठीक हो गया ठाकुर।''

नृपेन्द्र को अपने इस चमत्कार पर विश्वास नहीं हुआ। जब उस बूढ़े को पहले की तरह काम-काज में संलग्न पाया तब उन्हें विश्वास हो गया कि माँ की कृपा से वृद्ध स्वस्थ हो गया। अपने इन चमत्कारों को नृपेन्द्र बाबू गुरुदेव से छिपाते थे। कहीं वे नाराज न हो जायँ। लेकिन गुरुदेव को अपने शिष्य की योग्यता की जानकारी थी। एक दिन एक महिला को लेकर गुरुदेव उसके पास आये। उस वक्त नृपेन्द्र पूजा करने बैठ गया था। बाबा ने कहा–''इनका रोग दूर कर दो।''

बात को ठीक से न समझ पाने के कारण नृपेन्द्र भयवश चुप रहे। यह देखकर बाबा ने क्रुद्ध स्वर में कहा–''आप माँ काली के उपासक हैं और यह मामूली सा काम आप नहीं कर सकते?''

उनके तिरस्कार से नृपेन्द्र का भय दूर हो गया। उन्होंने कहा–''ठीक है, आपके आदेश का पालन करूँगा।''

बाबा रोगिणी को नृपेन्द्र के पास छोड़कर चले गये। दो-तीन मिनट बाद जब रोगिणी स्वस्थ हो गयी तब उन्होंने कहा–''मैंने आपके लिए कुछ भी नहीं किया। जो कुछ हुआ, उसकी जड़ में साधु बाबा स्वयं हैं।''

इस प्रकार यदाकदा साधु बाबा नृपेन्द्र की अजानकारी में रोगियों को भेजते थे। अक्सर वह सोचता कि यह सब करना उचित है या नहीं, क्योंकि कभी-कभी पीड़ित व्यक्ति के रोग का शिकार उसे भी होना पड़ता था।

एक बार एक शिशु जो कि सन्निपात से पीड़ित था, उसे ठीक करने पर वे स्वयं सर्दी-खाँसी से पीड़ित हो गये। एक महिला के पेट का दर्द ठीक करने के बाद उनके पेट में पीड़ा उत्पन्न हो गयी और कई दिनों तक पूजा के समय कष्ट पाते रहे। इस बारे में प्रश्न करने पर साधु बाबा ने कहा–''दूसरों की भलाई करने में अगर हम स्वयं कुछ पीड़ा अनुभव करते हैं तो कोई हर्ज नहीं। यह याद रखना अपने स्वार्थ, अर्थ या यश के लिए अगर किया जायगा तो अधःपतन होगा। दूसरों को बचाने के लिए अपने प्राण का नाश कर देना श्रेयष्कर है।''

इसी सिलसिले में एक असफलता के कारण उनके मन में गहरा आघात लगा। टायफाइड रोग से पीड़ित एक शिशु को नृपेन्द्र ने आशीर्वाद का एक फूल दिया और वह बच्चा मर गया। यह पहली असफलता थी। गाँव से लेकर कलकत्ते में होनेवाली किसी भी घटना में असफलता नहीं मिली थी। उसका कष्ट देखकर साधु बाबा ने कहा–''दुःख मत करो। तुमने अपना कर्त्तव्य किया। सफलता और असफलता में भगवान् का हाथ है। उसके प्रारब्ध दोष से उसका निधन हो गया।''

+ \+ \+ \+

कुछ दिनों बाद साधु बाबा तीर्थयात्रा के लिए चल दिये। जाते समय सभी से कह गये कि जिसे जिस बात की कमी या शिकायत हो, वह डाक्टर (नृपेन्द्र कुमार को वे इसी नाम से बुलाते थे।) से कह सकता है।

आश्रम के पास ही हरिश्चन्द्र घोष रहते थे। इनके परिवार के सभी लोग आश्रम में आते-जाते थे। एक दिन सबेरे आरती करने के लिए नृपेन्द्र बाबू आश्रम जा रहे थे। तभी मार्ग में हरिश्चन्द्र ने कहा—"मेरी पत्नी घर पर बेहोश पड़ी है। आपको कुछ करना होगा। साधु बाबा मुझसे कह गये हैं कि कभी कुछ होने पर आपसे कहूँ।"

लाचारी में उन्हें जाना पड़ा। हरिश्चन्द्र की पत्नी सुशीला जमीन पर बेहोश पड़ी थी। पूछने पर पता चला कि पेट में रोग है। पेट पर उंगली रखते ही सुशीला चीख उठी। बाद में पता चला कि पेट में ट्यूमर हुआ था। आपरेशन के बावजूद ठीक नहीं हुआ था। साधु बाबा के पास आने पर दर्द में कमी होती रही। बाद में वह स्वस्थ हो गयी। इस घटना के बाद हरिश्चन्द्र घोष नृपेन्द्र बाबू के पीछे पड़ गये।

एक दिन आयें और कहा—"मेरा लड़का गणित में बहुत कमजोर है। पिछले साल फर्स्ट इयर में फेल हो जाने के कारण अटका हुआ है। इस साल पुनः परीक्षा देने जा रहा है। अगर इस साल फेल हो गया तो उसकी पढ़ाई बंद हो जायगी। आप कुछ करिये।"

घोष बाबू की बातें सुनकर नृपेन्द्र अवाक् रह गया। समझ में नहीं आया कि इस सम्बन्ध में वह क्या कर सकता है। कुछ सोचने के बाद उन्होंने कहा कि परीक्षा वाले दिन आश्रम में आकर मुझसे पूजा के फूल ले जाय। इस बार की परीक्षा में लड़के को १०० में ९० अंक प्राप्त हुए थे। वह प्रथम श्रेणी में पास हो गया था।

कुछ दिनों बाद समाचार आया कि हरिश्चन्द्र घोष को कालरा हो गया है। पेशाब बंद है, हालत चिन्ताजनक है। नृपेन्द्र को लोग बुलाकर ले गये। उन्होंने सोचा कि आर्थिक कठिनाई के कारण ठीक से इलाज नहीं हो रहा है। गृहिणी के हाथ बीस रुपये देते हुए नृपेन्द्र ने कहा—"किसी अच्छे डाक्टर को बुलाकर इलाज कराइये।" बाद में पता चला कि रोगी ठीक हो गया है। नृपेन्द्र पर विश्वास रहने के कारण डाक्टर को नहीं बुलाया गया था।

साधु बाबा के एक भक्त आशुतोष घोष थे जो एक कारखाने के मालिक थे। वे उस वक्त आये जब नृपेन्द्र पूजा प्रारंभ करने जा रहे थे। तीन घंटे तक पूजा करने के बाद जब नृपेन्द्र कमरे से बाहर आया तो देखा—पूजाघर के सामने वे चुपचाप बैठे हैं। उन्होंने कहा—"आप जब पूजा कर रहे थे तब मैंने देखा कि पूजाघर से एक कमल का पौधा निकला जिसमें सोने का फूल था। मैं यह दृश्य देखकर अवाक् रह गया।" आगे चलकर उन्होंने आश्रम को सोने का एक कमल फूल दान में दिया था।

प्रत्येक रविवार को कीर्तन और धार्मिक कथा का आयोजन आश्रम में होता है।

अनेक भक्त आते हैं। एक बार वर्षा के समय मूसलाधार पानी बरसने लगा। रात बढ़ने लगी, पानी रुकने का नाम नहीं ले रहा था। लोग घर जाने के लिए छटपटाने लगे। ठीक इसी समय श्री के०सी० रायचौधुरी ने नृपेन्द्र कुमार से कहा—''ठाकुर, कोई व्यवस्था करिये।'' नृपेन्द्र ने कहा—''पानी रोकने के लिए मैं क्या व्यवस्था कर सकता हूँ। और १०-५ मिनट आप लोग रुक जाइये।''

ज्योंही नृपेन्द्रजी ने अपनी बात पूरी की त्योंही जादू की तरह वर्षा थम गयी। लोग अपने-अपने घर चले गये। इस तरह वर्षा रोकने की घटना कई बार हुई थी।

सरदार छत्तर सिंह साधु बाबा के भक्त थे। उनका एक मुकदमा हाईकोर्ट में चल रहा था। एक साल से वकील लोग रकम खा रहे थे, पर मुकदमे की पेशी नहीं हो रही थी। एक दिन वे आये और साधु बाबा के न रहने के कारण नृपेन्द्र के पीछे पड़ गये। एक दिन वे पूजा के समय नृपेन्द्र के साथ आश्रम में बैठे रह गये। उस दिन घर पर जब गये तब मालूम पड़ा कि मुकदमे में तारीख लग गयी है। आगे चलकर वे विजयी बने।

साधु बाबा ने नृपेन्द्र कुमार को कालीमाता का केवल पुजारी ही नहीं बनाया बाकायदा पुरोहित बनाते चले गये। भक्तों से मंत्र पढ़वाना, ग्रहण के अवसर पर गंगा स्नान करते समय मंत्रोच्चार करवाना आदि कार्य करना पड़ता था। भक्तों में केवल हिन्दू ही नहीं, मुसलमान और ईसाई भी थे। कहाँ वह था— जमींदार, प्रिंसिपल, गवेषक और लेखक। आज वह पुरोहित बनकर लोगों की निगाह में ठाकुर महाशय बन गया। लेकिन इनकी पत्नी अपने पति के इस रूप को तनिक भी पसंद नहीं करती थीं। यहाँ तक कि कभी वह आश्रम में नहीं गयीं। इधर नृपेन्द्र कालीमाता की पूजा और गुरुदेव के आदेश में इतना रम गये थे कि उन्हें गृहस्थी से अरुचि हो गयी थी। इस अशांति से बचने के लिए उन्होंने गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया। गेरुआ वस्त्र धारण करने के बाद घर की समस्या हल हो गयी। अब तक परिवार के लोगों का विश्वास था कि डराकर-मनाकर नृपेन्द्र को पुनः सही रास्ते पर लाया जा सकेगा, किन्तु अब उनकी उस आशा पर वज्रपात हो गया। एक गेरुआधारी बाबा के साथ पैदल या गाड़ी पर सफर करने में इनकी पत्नी को संकोच होने लगा। लेकिन एक मुसीबत बढ़ गयी। दाढ़ी-मूँछ बढ़ गयी थी। पहनावा गेरुआ देखकर बसवाले किराया नहीं माँगते थे। मंदिर में बैठकर जप-ध्यान करते समय लोग पैरों के पास माथा टेककर चावल, फूल या पैसे देने लगे।

एक बार बस की प्रतीक्षा में एक जगह लाइन में वे खड़े थे। सहसा एक जीप वहाँ आकर रुकी। उस पर ३-४ पंजाबी सज्जन थे। उनमें से एक ने पूछा—''कहिये संतजी, कहाँ जायँगे?'' नृपेन्द्र ने अपना गन्तव्य स्थल बताया तो उन लोगों ने कहा कि हम उधर से ही आगे जायँगे। आइये, बैठ जाइये। नृपेन्द्र राजी नहीं हो रहे थे। एक प्रकार से वे लोग जबरन बैठा कर ले चले। जबकि वहाँ कुछ अन्य लोग बस की प्रतीक्षा में खड़े थे, फिर अकेले उनसे क्यों पूछा गया? शायद बाबा का भेष देखकर। इसी उधेड़बुन के कारण नृपेन्द्र को इतना क्रोध आया कि घर आते ही सिर के बाल ही नहीं, दाढ़ी-मूँछें बनवा डालीं।

सन् १९४८ ई० के जुलाई माह में श्री साधु ताराचरण का महाप्रयाण हो गया। नृपेन्द्र कुमार के जीवन का एक अध्याय यहीं समाप्त हो गया।

+ \+ \+ \+

सन् १९४६ ई० में गाँव में स्थित काली मंदिर की पूजा की जिम्मेदारी प्रियनाथ चक्रवर्ती को देकर नृपेन्द्र कलकत्ता चले आये थे। गाँव में नृपेन्द्र बाबू के हम उम्र का एक मित्र था जिसकी देखरेख में प्रियनाथ नामक बालक सारा कार्य करता था। देश के बँटवारे के कारण तेटिया गाँव से ही नहीं, विभिन्न जगहों से लोग भारत चले आये थे। प्रियनाथ बालक होने पर भी उतने बड़े भवन में अकेला रहने में डरता नहीं था।

ऐन दीपावली के दिन उसी घर के आँगन में नृपेन्द्र बाबू के मित्र का निधन हो गया। लोगों की कमी के कारण रात को शवदाह नहीं हो सका। प्रियनाथ शाम को पूजा-आरती करने बैठा। श्मशान भूमि में मंदिर, भीतर आँगन में उसके रक्षक का शव, चारों ओर सन्नाटा। एक अनजाने आशंका से वह भयभीत हो उठा। धीरे-धीरे उसका भय इस कदर बढ़ा कि उस पर बेहोशी छाने लगी। तभी उसने देखा कि उसकी बगल में नृपेन्द्र काका बैठे हैं। उसका साहस लौट आया। पूजा निर्विघ्न रूप से समाप्त हो गया। उस वक्त नृपेन्द्र कुमार कुर्सियांग स्थित एक गुफा में नेपाली काली मंदिर में पूजा कर रहे थे। बाद में कलकत्ता आने पर प्रियनाथ के पत्र से सारी बातें मालूम हुईं। उसने यह भी लिखा कि प्रत्येक अमावस्या की पूजा में आप मेरी बगल में विराजमान रहते हैं। नृपेन्द्रजी यह पत्र पढ़कर चकित रह गये। कौन मेरा रूप धारण कर प्रियनाथ को ढाँढ़स बँधा रहा है? क्या कालीमाता? इस प्रश्न का उत्तर उन्हें नहीं मिला।

सन् १९४३ ई० में नृपेन्द्र बाबू संस्कृत कालेज के अध्यक्ष थे और हाईकोर्ट के जज माननीय डा० विजन मुखोपाध्याय बंगीय संस्कृत असोसियेशन के सभापति थे। इसलिए दोनों व्यक्तियों में गहरी मित्रता हो गयी थी। नौकरी से अलग होने पर भी मैत्री बनी रही। विजन बाबू को नृपेन्द्र कुमार की अलौकिक शक्ति के बारे में कुछ-कुछ जानकारी हो गयी थी। एक दिन उन्होंने नृपेन्द्र से कहा कि मेरी पुत्रवधू तीन साल से बीमार है। हर तरह की चिकित्सा की गयी, पर कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर कौन-सी बीमारी है, इसे डाक्टर समझ नहीं पा रहे हैं। अगर आप इस दिशा में कुछ मदद कर सकें तो कृपा होगी।

नृपेन्द्र ने कहा—"मैं राजी हूँ। इसके लिए आपके घर में ही पूजा करनी होगी। आप तैयारी कीजिए। सुबह ९ बजे से लेकर दोपहर १ बजे तक पूजा होगी।"

विजन बाबू की पत्नी का निधन हो गया था। घर के सदस्यों में वे, उनका पुत्र, पुत्रवधू और एक भांजी थी। पुत्र ९ बजे आफिस चला जाता है। विजन बाबू ने कहा कि मैं पूजा प्रारंभ करवाकर कचहरी चला जाऊँगा। यह बात सुनकर नृपेन्द्र जरा हिचकिचाया, पर दूसरे ही क्षण राजी हो गया।

दोपहर को एक बजे पूजा समाप्त करने के बाद नृपेन्द्र ने देखा कि विजन बाबू पूजावाले कमरे के दरवाजे के पास तन्मय होकर बैठे हैं। नृपेन्द्र के प्रश्न करने पर उन्होंने कहा कि मेरे घर में पूजा हो रही है और मैं न रहूँ, ऐसा कैसे हो सकता है। कचहरी में समाचार भिजवा दिया है कि आज डेढ़ बजे के बाद आऊँगा।

विजन बाबू की पुत्रवधू स्वस्थ हो गयी। ज्ञातव्य है कि आगे चलकर विजन बाबू सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान विचारपति नियुक्त हुए थे।

नृपेन्द्र बाबू को कभी-कभी आकस्मिक घटनाओं पर स्वतः आश्चर्य होता था कि कैसे यह बात हो जाती है? क्या यह सब कोई दैवी-सत्ता कराती है या गुरुदेव का प्रच्छन्न आशीर्वाद काम करता है।

+ \+ \+ \+

एक दिन नृपेन्द्र कालीघाट से ट्राम द्वारा टालीगंज जा रहे थे। कुछ देर बाद नृपेन्द्र को लगा जैसे वे गन्तव्य स्थल तक आ गये हैं। झट ट्राम से उतर पड़े। अब गौर से चारों ओर देखने के बाद उन्हें यह प्रतीत हुआ कि वे बहुत पहले उतर गये हैं। आखिर ऐसी गलती कैसे हो गयी? इस वक्त वे सदर्न एवेन्यू के मोड़ पर थे। पास ही मणि बाबू का मकान था। अपने आप उनके कदम उधर मुड़ गये।

वहाँ पहुँचते ही मणि बाबू की पत्नी श्रीमती साधना बोली—"आज सबेरे से आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। मैं मुसीबत में फँस गयी हूँ। मेरे भाई के पेट में घाव हो गया है। डाक्टरों ने आपरेशन कराने की सलाह दी है।"

इन सारी बातों को सुनने के बाद नृपेन्द्र को ज्ञात हो गया कि वे प्रमादवश यहाँ नहीं उतरे हैं। इस महिला की इच्छा-शक्ति ने उन्हें आकर्षित किया है।

इसी प्रकार एक बार महालया के दिन नृपेन्द्र बीमार होकर खाट पर पड़े थे। उसी दिन ज्योतिर्मय का साला श्री शैलेन मुखोपाध्याय जो कि कालीघाट स्थित गंगातट पर गये हुए थे, देखा— नृपेन्द्रजी कमर भर पानी में खड़े होकर तर्पण कर रहे हैं। उसने सोचा कि पानी से ज्यों ऊपर आयँगे त्यों मैं उन्हें डाँटूँगा। देर तक प्रतीक्षा करने पर भी वे ऊपर नहीं आये। दूसरे दिन शैलेन यही शिकायत लेकर नृपेन्द्रजी के घर आया तब उसे ज्ञात हुआ कि उस दिन से आज तक वह घर से बाहर नहीं निकले। शैलेन को विश्वास नहीं हुआ। अंत में नृपेन्द्र ने मंदिर के लोगों को बुलाकर गवाही दिलायी तब उसे लगा कि शायद उसे आँखों का भ्रम हो गया था।

नृपेन्द्र को इस घटना पर अविश्वास नहीं हुआ, क्योंकि लगातार इस तरह की घटनाएँ उनके जीवन में हो रही थीं।

बोड़ाल के नीलरतन मुखोपाध्याय को अंतर से प्रेरणा मिलने पर वे मंदिर में आये और सहयोग देने लगे। एक कर्मठ नेता के कारण मंदिर का दिनों दिन विकास होता गया। मंदिर में नियमित रूप से कीर्तन होने लगा। यह सब होने के बावजूद एक कर्मठ गायक के अभाव के कारण आनन्द नहीं आ रहा था।

कुछ दिनों बाद श्रीकृष्ण तपस्वी नामक एक व्यक्ति को अपने साथ लाकर नीलू बाबू ने कहा—"आप एक अच्छे गायक हैं। बोड़ाल में यात्रा, नाटक, कीर्तन आदि में काम करते थे। हमारे यहाँ 'मास्टर' के नाम से प्रसिद्ध हैं। फिलहाल कलकत्ते के हिन्दुस्तान बीमा कम्पनी में नौकरी करते हैं। पिछले दस वर्षों से डिस्पेप्सिया रोग से पीड़ित होने के कारण सूखकर लकड़ी हो गये हैं। अगर यही हालत रही तो नौकरी से निकाल दिये जायँगे। अगर आप इनके लिए कुछ कर सकें तो अच्छा होगा।"

कुछ देर तक गौर से देखने के बाद नृपेन्द्र ने कहा—"कोई भी भजन सुनाइये।"

मास्टर ने कहा—"पिछले दस साल से उसका गाना-बजाना बंद है। तान ले नहीं सकूँगा।"

नृपेन्द्र ने कहा—"कोई हर्ज नहीं। आपसे जैसे हो सके, उसी ढंग से सुनाइये।"

नृपेन्द्र के अनुरोध पर मास्टर भजन गाने लगे। उसकी आवाज सुनते ही यह ज्ञात हो गया कि इस व्यक्ति में दम नहीं है। नृपेन्द्र ने कहा—"आपको ठीक किया जा सकता है, पर मेरी तीन शर्तें हैं। प्रथम भविष्य में भक्ति गीतों के अलावा फालतू गीत नहीं गायँगे। दूसरा देव-स्थान या भक्तों के समूह के अलावा अन्यत्र गाना नहीं गायँगे। तीसरा और अन्तिम शर्त यह है कि इस मंदिर में नियमित रूप से माँ को अपना भजन सुनायेंगे।"

जो व्यक्ति पिछले दस वर्ष से परेशान है, वह ऐसे साधारण शर्तों को सुनकर कैसे इंकार करता? तुरंत राजी हो गया। माता काली की कृपा से उसके स्वास्थ्य में काफी प्रगति हुई। धीरे-धीरे गला भी ठीक हो गया। इस प्रकार मास्टर के सहयोग से मंदिर में कीर्तन-मण्डली भी जम गयी। मास्टर नित्य आफिस से छुट्टी पाते ही मंदिर में चला आता और रात साढ़े दस बजे तक गाते-बजाते थे। यह कार्यक्रम लगातार दस वर्ष तक जारी रहा। एक दिन के लिए वे गैरहाजिर नहीं हुए।

कुछ दिनों बाद जब मास्टर स्वस्थ हो गये तब एक दिन नृपेन्द्रजी ने कहा—"मास्टर, तुमसे कुछ खाने की इच्छा हो रही है।"

मास्टर ने कहा—"आज्ञा कीजिए ठाकुर। आप जो कुछ कहेंगे, मैं हाजिर करूँगा।"

नृपेन्द्र ने कहा—"भादों का महीना है। तालपीठा (ताड़ के रस से बनी पीठी) खाने की इच्छा है।"

यह बात सुनकर उपस्थित सभी लोग हँस पड़े, क्योंकि यह बहुत मामूली चीज थी जैसे दालपीठी। लोग सोचते रहे कि ठाकुर कोई नायाब खाद्य सामग्री माँगेंगे। यह बात सुनकर नीलू बाबू ने कहा—"मेरे बाग में ताड़ के अनेक पेड़ हैं। कल वहाँ चले जाओ और ले आओ।"

दूसरे दिन मास्टर नीलू के बाग में गये तो वहाँ किसी भी पेड़ में पके ताड़फल नहीं मिले। जबकि मौसम ताड़फलों का ही है। नीलू बाबू के बाग के अलावा आसपास के कई बागों में खोजने पर भी नहीं मिला। मास्टर हताश होकर सोचने लगे कि अब कलकत्ता वापस जाकर वहाँ तलाश करूँगा। राह चलते एक सज्जन ने कहा कि आप देवी

त्रिपुरेश्वरी के मंदिर के पास तलाश करिये। शायद वहाँ मिल जाय। यहाँ आने पर भी नहीं मिला। इन्हें देखकर मंदिर के चबूतरे पर बैठी मण्डली ने इनसे भजन गाने का अनुरोध किया। मास्टर की तबीयत तो इस वक्त ताड़फल की ओर था। गायन में मन कैसे लगता। लेकिन भक्तों के विशेष आग्रह पर गाने लगे।

ठीक इसी समय एक अपरिचित बुढ़िया ताड़ के तीन फल लेकर दूर से पुरोहित से पूछने लगी—"कोई ताड़फल लेगा?" लोकालय से दूर सड़क के किनारे, दोपहर के वक्त कोई वृद्धा ताड़फल बेच सकती है, इसका कल्पना कोई नहीं कर सकता। पुरोहित ने दो आने में तीनों ताड़फलों को खरीदकर मास्टर को समर्पित किया। ताड़फल हाथ में लेते ही मास्टर की आँखें भर आयीं। वह समझ गया कि ताड़फल इस बहाने कौन आकर दे गयी है। शाम के समय नृपेन्द्र से सारा समाचार कहने पर उन्होंने कहा— "तुम बड़े भाग्यवान हो मास्टर।"

इसी प्रकार एक बार मास्टर को अपने साथ लेकर नृपेन्द्र बाबू काशी आये। मास्टर की पत्नी उन्हें नृपेन्द्र के साथ जाने नहीं देना चाहती थी। उसे भय था कि मेरे पति काशी जाकर संन्यासी बन जायँगे। यहाँ तक कि जोड़ा मंदिर में आना भी वे पसन्द नहीं करती थीं। आफिस और घर पर जाते समय कह गये थे कि एक सप्ताह में वापस आ जाऊँगा। लेकिन उन्हें काशी का वातावरण इतना अच्छा लगा कि कुछ दिन और ठहर गये। कब लौटना होगा, निश्चित न होने के कारण घर पर कोई सूचना मास्टर ने नहीं भेजी। इसी तरह कुछ दिन और बीत गये।

इधर पति का कोई समाचार न पाने पर पत्नी बहुत बेचैन हो उठी। क्या करे, किससे मदद ले, समझ नहीं पा रही थी। एक दिन दोपहर को एक भिखारिन बुढ़िया आयी और पीने के लिए पानी माँगा। बातचीत के सिलसिले में बुढ़िया ने कहा—"लगता है आपके पति कहीं बाहर गये हैं।" मास्टर की पत्नी के 'हाँ' कहने पर बुढ़िया ने निश्चिन्त भाव से कहा—"गृहस्थ आदमी ठहरे। जल्द वापस आ जायँगे। वे परदेश में अधिक दिन नहीं रुकेंगे। जल्द आ जायँगे।"

मास्टर की पत्नी को कौतूहल हुआ। पूछा—"तुम कहाँ रहती हो, तुम्हारे कौन-कौन हैं, कैसे गुजारा करती हो।"

बुढ़िया ने कहा—"मैं गड़िया के जोड़ा मंदिर में रहती हूँ। मेरे साथ एक लड़का है। भक्त लोग जो कुछ देते हैं, उसी से गुजारा होता है। शाम को कीर्तन होता है, सुनती हूँ। अच्छा लगता है।"

मास्टर की पत्नी कभी मंदिर में गयी नहीं थी। उसने सोचा कि शायद बुढ़िया अपने मंदिर में रहती है। इसके अलावा और कितने लोग वहाँ रहते हैं वह नहीं जानती। इधर कई दिनों के बाद नृपेन्द्र और मास्टर कलकत्ता के लिए रवाना हुए। नृपेन्द्र या मास्टर किसी ने अपने रवाना होने की कोई सूचना नहीं भेजी।

जिस दिन ये दोनों लोग रवाना हुए, उसी दिन पुनः दोपहर को वह बुढ़िया मास्टर

के घर आयी। इस बार उसने कहा कि आज उसके पति रवाना हुए हैं। विश्वास है कि कल तक घर आ जायँगे। मास्टर की पत्नी ने उससे कोई प्रश्न नहीं किया। उसने समझा कि इस बात की सूचना मंदिर में आयी होगी।

मास्टर सबेरे देर से घर पहुँचे और तुरंत आफिस चले गये। दूसरे दिन बुखार आ जाने के कारण वे अपने आफिस नहीं जा सके। दोपहर को पत्नी ने बुढ़िया द्वारा प्राप्त सूचनाओं की जानकारी दी तो मास्टर अवाक् रह गये। उसे समझते देर नहीं लगी कि भिखारिन के भेष में उसके यहाँ कौन आयी थी। वह बुखार की हालत में तुरंत मंदिर आया और नृपेन्द्र से कहा—''माँ मेरे घर गयीं और बिना आदर किये उन्हें विदा कर दिया गया। इस अपराध का प्रायश्चित कैसे करूँ?''

नृपेन्द्र ने हँसकर कहा—''भक्तों से चावल-दाल लेकर कल मंदिर में भोग दिया जायगा। चिन्ता मत करो।''

यहाँ एक बात बता देना आवश्यक है । पूर्वी बंगाल में इतने जोर से दंगा होने लगा कि आजादी के बाद तेजी से हिन्दू भागने लगे। इसी माहौल में तेटिया स्थित काली मंदिर का पुजारी प्रियनाथ चक्रवर्ती कलकत्ते में नृपेन्द्र के पास चला आया। यहाँ आकर वह जोड़ा मंदिर का पुजारी बन गया।

नृपेन्द्र को बचपन से भुट्टा खाने का शौक था। भुट्टा गँवार लोग खाते हैं, परिवार में यह अपवाद जारी था, क्योंकि जमींदार का घराना था। लेकिन नृपेन्द्र को घर से बाहर जहाँ कहीं भुट्टा खाने का अवसर मिलता तो जरूर खाते थे।

एक दिन घर से मंदिर जाने के लिए तैयार हो रहे थे तभी बाहर सड़क से किसी फेरीवाले की आवाज आयी—''भुट्टा चाहिए, हरा-हरा भुट्टा।'

भुट्टे का नाम सुनते ही नृपेन्द्र के मुँह में पानी भर आया। तुरंत नौकर को आवाज देकर कहा कि उससे भुट्टा खरीद ले। थोड़ी देर बाद वापस आकर नौकर ने कहा—''भुट्टावाला न जाने कितनी दूर चला गया, उसका पता नहीं चला।''

बात आयी और गयी हो गयी। मंदिर आने के कुछ देर बाद प्रियनाथ आकर बोला—''आज एक सज्जन भोग में दो भुट्टा चढ़ा गये हैं। इसका क्या होगा?''

देवी को आज तक किसी ने कभी भोग में भुट्टा नहीं चढ़ाया था। नृपेन्द्र को समझते देर नहीं लगी कि कालीमाता ने उसकी इच्छा की पूर्ति की है। माँ के प्रसाद को उस दिन नृपेन्द्र ने बड़ी श्रद्धा के साथ ग्रहण किया। इस बात को सुनकर उपस्थित भक्तों ने कहा कि जब माँ ने आपकी इच्छा की पूर्ति की है तब हम लोग भी कल से भोग में भुट्टा चढ़ायेंगे। लेकिन वे लोग कालीमाता की लीला से परिचित नहीं थे। माँ की ऐसी कृपा हुई कि सभी यह बात भूल गये। कोई भक्त कभी भुट्टा नहीं लाया।

+ \+ \+ \+

एक बार नृपेन्द्र गया शहर गये। वहाँ उनके कई भक्त थे। ठाकुर आये हैं सुनकर

कीर्तन का आयोजन किया गया। इसके बाद कभी इनके यहाँ तो कभी उनके यहाँ नित्य कीर्तन का आयोजन होने लगा। शिबू बाबू नामक एक सज्जन ने नृपेन्द्र बाबू से पूछा—"आपके गुरु कौन हैं?"

नृपेन्द्र ने कहा—"यह बात मैं आपको बाद में बताऊँगा। अभी आप कीर्तन-सभा में चलिये।"

शिबू बाबू गया शहर के वाशिन्दा हैं। एक अर्से से यहाँ रहते हैं। उनके साथ एक रिक्शे पर नृपेन्द्र बाबू एक सज्जन के यहाँ आयोजित कीर्तन-समारोह में जा रहे थे। काफी दूर आकर एक घर के सामने रिक्शावाले से रोकने को कहकर शिबू बाबू उतर पड़ें। रिक्शे से उतरने के साथ ही बोले—"बड़ी गलती हो गयी। यह मकान नहीं है।"

पुनः रिक्शे को मोड़कर दूसरी ओर चलने का निर्देश देते हुए शिबू बाबू ने कहा—"इधर के सभी मकान मेरे परिचित हैं, फिर भी मुझसे गलती हो गयी। ऐसी गलती नहीं होनी चाहिए थी। बेकार आपसे चक्कर लगवाया। इसके लिए माफी चाहता हूँ।" फिर कुछ सोचकर बोले—"इस भूल का एक कारण समझ में आ रहा है। इस मकान में आज से कई वर्ष पूर्व एक महापुरुष मकान मालिक के यहाँ अतिथि के रूप में रहते थे। शायद यह भवन आपको देखना था, इसलिए यह भूल हो गयी।"

नृपेन्द्र ने पूछा—"कौन से महापुरुष यहाँ थे?"

शिबू बाबू ने कहा—"श्रीमत् ताराचरण परमहंसदेव।"

यह जवाब सुनते ही नृपेन्द्र रोमांचित हो उठे। तभी शिबू बाबू ने पूछा—"हाँ, आपने अपने गुरु का नाम नहीं बताया?"

"आपने मौका कहाँ दिया? स्वयं ही मेरे गुरु का नाम आपने उच्चारण किया।"

यह बात सुनते ही शिबू बाबू आनन्द से विभोर हो उठे। केवल वे ही नहीं, कीर्तन-मण्डली के लोगों को आज की घटना सुनाने पर सभी खुशी से झूम उठे, क्योंकि सभी साधु ताराचरण के भक्त थे। इसके साथ ही यह भी ज्ञात हुआ कि वह स्वयं जिस मकान में ठहरा है, उसी मकान के कोनेवाले कमरे में कई दिनों तक साधु बाबा ठहरे थे। ऐसा संयोग उनके जीवन में कभी नहीं हुआ था। यहाँ साधु बाबा के बारे में लोग अनेक अलौकिक कहानियाँ सुनाते रहे। नृपेन्द्र बाबू साधु बाबा के शिष्य हैं जानकर गया में उनका काफी आदर-सम्मान हुआ।

इसी गया शहर में एक और घटना हो गयी जिसके कारण नृपेन्द्र बाबू संकट में फँस गये और न चाहते हुए उन्हें शीघ्र चल देना पड़ा। बात यह हुई कि परेश बाबू के यहाँ कीर्तन का आयोजन किया गया था। काफी भक्त थे, पर स्वयं परेश बाबू जरा उदास थे। पूछने पर पता चला कि आज की गोष्ठी में उनकी लड़की गानेवाली थी, पर दोपहर को एक साँड़ ने उसे ऐसा हुरपेटा कि बेचारी घायल होकर पड़ी है।

सभी लोग दुःख प्रकट करने लगे। एकाएक नृपेन्द्र बाबू ने कहा—''मैं उस लड़की को देखना चाहता हूँ।''

परेश बाबू उन्हें अन्दर महल में ले आये। उस वक्त भी लड़की दर्द से कराह रही थी। नृपेन्द्र बाबू ने कहा—''आज के कीर्तन समारोह में तुम्हारा गाना होगा और तुम्हें गाना पड़ेगा।'' कहने के साथ ही उसके शरीर पर कई बार थपकी देने के बाद बोले—''चलो उठो।''

बिना किसी कष्ट के लड़की बिस्तर पर बैठ गयी और फिर कीर्तन गोष्ठी में आयी। उसके बाद मधुर कंठ से गीत गाने लगी। गीत के बाद जब वह वापस जाने लगी तब लगा जैसे कुछ हुआ नहीं था। नृपेन्द्र बाबू की इस विभूति को लोगों ने प्रत्यक्ष रूप से देखा और फिर दूसरे दिन से कुछ लोग उनके पीछे पड़ गये। कुछ चमत्कार करने के बाद वे काशी चले आये।

काशी में बाबा विश्वनाथ की शयन आरती देखने के बाद एक दिन अन्नपूर्णा मंदिर में आये। मूर्ति के सामने प्रांगण में एक जगह बैठकर देवी मूर्ति को एकटक देखते हुए ध्यानमग्न हो गये। कुछ देर बाद मंदिर के पुजारी ने अन्नपूर्णा देवी पर चढ़ाई गयी कुछ मालाएँ लाकर नृपेन्द्र बाबू के गले में डाल दी। पुजारी के इस कृत्य से वे आनन्दमग्न हो गये। देवी के गले की मालाओं को कहाँ रखें, यह नृपेन्द्र बाबू की समझ में नहीं आया। यत्र-तत्र फेंकना उचित नहीं है। इसे गंगा में प्रवाहित कर दूँगा। यह सोचकर वे मंदिर से बाहर निकले। तभी एक साँड़ इनके सामने आकर इनके गले की मालाओं को खाने लगा। राह चलते लोग साँड़ को मारने के लिए उद्यत हुए और दो-तीन लोग चिल्लाकर उसे भगाना चाहा। नृपेन्द्र बाबू ने लोगों को ऐसा करने से मना किया। सभी मालाओं को खाने के बाद साँड़ उन्हें बिना नुकसान पहुँचाये आगे बढ़ गया। नृपेन्द्र बाबू ने इसे देवी की कृपा समझा।

+ + + +

नृपेन्द्र बाबू को देवी की पूजा करना, कीर्तन करना और पीड़ितों की भलाई करना पसंद था, पर वे गुरुवाद के विरुद्ध थे। किसी को दीक्षा देने की कल्पना तक नहीं करते थे। इस आकांक्षा से जो लोग उनके पास आते थे, उन्हें निराश होना पड़ता था। दीक्षा देने का अर्थ है कि शिष्य के सभी भार को वहन करना। यह बात अलग है कि किसी रोगी को मंत्र या कवच दिया, उससे उसका भला हो गया। यद्यपि एक बार बातचीत के प्रसंग में साधु बाबा ने कहा था-''आप दीक्षा दे सकते हैं।'' किन्तु गुरुवाद के भय से वे अब तक बचते आये हैं। यहाँ तक कि मंदिर में आनेवाले जिन भक्तों को आपने दीक्षा देने से इंकार किया, वे सभी नाराज हो गये। उन लोगों ने मंदिर में आना बंद कर दिया।

लेकिन नृपेन्द्र बाबू ने कभी इस बात की कल्पना नहीं की थी कि एक दिन प्रियनाथ यह प्रस्ताव पेश करेगा। उसने कहा कि मुझे स्वप्न में आदेश मिला है कि आपसे दीक्षा लूँ। नृपेन्द्र बाबू यह बात सुनकर चौंक उठे। उन्होंने यह सोचकर मन को सान्त्वना दी कि कालीमाता ने उन्हें ऐसा आदेश नहीं दिया है। इसी बीच एक घटना और हो गयी। कालीरंजन भट्टाचार्य की पत्नी लम्बे अर्से से उन्माद रोग से पीड़ित रहीं। अनेक चिकित्सा कराने पर भी राहत नहीं मिली। पत्नी के कारण पति का जीना हराम हो गया था। इस रोगी को देखने के बाद नृपेन्द्र बाबू ने अनुभव किया कि साधारण प्रक्रिया से यह रोग दूर नहीं होगा। इसका एक मात्र इलाज है- दीक्षा दान। सामान्य लोग भी निरंतर दीक्षा देने के लिए तंग करते रहे। अन्त में एक दिन उन्हें कहना पड़ा-''माँ की आज्ञा के बिना मैं यह कार्य नहीं कर सकता। अगर स्पष्ट आदेश या इशारा करेंगी तो में दीक्षा देना प्रारंभ करूँगा।''

इस निश्चय के बाद कुछ दीक्षा प्रार्थियों को अपने साथ लेकर नृपेन्द्र बाबू कालीघाट के मंदिर में आये। उन्होंने निश्चय किया कि आज कोई उत्तर बिना प्राप्त किये यहाँ से नहीं जाऊँगा। साथ में जो लोग आये थे, वे लोग भी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे कि ठाकुर को आज क्या मिलता है, देखा जाय।

कुछ देर बाद वहाँ एक व्यक्ति आया और नृपेन्द्र की बगल में बैठकर भजन गाने लगा। गीत का अर्थ था-''मैं जीर्ण अशक्त काष्ठ खण्ड हूँ। तुम मुझे अपने इच्छानुसार जलाकर, पीटकर नाव बना लो, जिससे लोग इस पार उस पार आ-जा सकें। मैं यह जानता हूँ कि यह एक जीर्ण नाव है और इसकी शक्ति कम है, पर परापार के स्वामी तो तुम्हारे चरणरूपी नाव हैं, मैं तो केवल उपलक्ष्य मात्र हूँ।''

गीत के भाव को समझते ही नृपेन्द्र सन्नाटे में आ गये। यह गीत उनके द्विधाग्रस्त मन के प्रश्न का उत्तर था। नृपेन्द्र अब तक यही समझते रहे कि इतना बड़ा बोझ वे कैसे उठायेंगे? लेकिन आज उन्हें ज्ञात हो गया कि यह बोझ उन्हें नहीं उठाना है, वह तो केवल उपलक्ष्य मात्र हैं। कालीमाता उनके द्वारा जो कुछ करायेंगी, उसे करते जाना है।

नृपेन्द्र ने गायक का हाथ झट से पकड़कर पूछा-''तुम्हें यह गीत कहाँ मिला और आज यहाँ क्यों गाया?''

अचानक एक अपरिचित व्यक्ति के द्वारा इस तरह हाथ पकड़ने से वह व्यक्ति घबरा गया। फिर धीरे से कहा-''काफी दिन पहले यह भजन मैंने सीखा था। इधर ४-५ वर्षों से कभी इस भजन को नहीं गाया। आज मंदिर में आकर यहाँ बैठते ही मेरी अन्तरात्मा ने इस भजन को गाने की प्रेरणा दी। क्या मुझसे कोई गलती हो गयी?''

नृपेन्द्र बाबू उसे गले से लगाते हुए भावातुर होकर बोले-''नहीं। आज आपने इस भजन के माध्यम से मेरी एक बड़ी समस्या को हल कर दी। आपने मेरा बड़ा उपकार किया।''

पता नहीं, उस व्यक्ति ने क्या सोचा, फिर धीरे-धीरे सीढ़ियों पर कदम रखता हुआ मंदिर के बाहर चला गया।

साधु बाबा का पूर्व आदेश तथा आज माँ की प्रेरणा पाने के बाद नृपेन्द्र ने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। उन्होंने समवेत लोगों से कहा—''आगामी महाष्टमी (सन् १९५४ ई०) की पूजा के दिन मैं आप लोगों को दीक्षा दूँगा।''

इस घोषणा से सभी को प्रसन्नता हुई। उस दिन सर्वप्रथम प्रार्थी प्रियनाथ की दीक्षा हुई। प्रियनाथ ने दीक्षा लेते समय देखा कि नृपेन्द्र बाबू की गोद में एक छोटी लड़की बैठी है। जब उसने यह बात बतायी तब नृपेन्द्र बाबू ने कहा—''दीक्षा वही लड़की दे रही है। मैं तो केवल मंत्र पढ़ रहा हूँ।''

नृपेन्द्र बाबू समझ गये कि असली दीक्षा कालीमाता दे रही हैं, वह केवल उपलक्ष्य मात्र हैं। प्रियनाथ की इच्छा आज पूरी हो गयी। कालीरंजन भट्टाचार्य की पत्नी को दीक्षा देने के दो-चार दिन बाद उसका रोग दूर हो गया। इसी प्रकार जिन लोगों ने दीक्षा ली, उन सभी के रोग दूर होते गये। दीक्षा कैसे दी जाती है, क्या-क्या उस समय करना होता है, इसकी जानकारी उन्हें नहीं थी, पर वे गुरु के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।

+ + + +

एक बार एक सज्जन सिद्धि प्राप्त करने के उद्देश्य से नृपेन्द्र बाबू के पास आये। उन्होंने कहा—''मैं भारत के तमाम तीर्थों का दर्शन कर चुका हूँ। अनेक साधु-संतों का साथ किया है, पर मेरी मनोकामना पूरी नहीं हुई। गया में मुझे लोगों ने बताया कि आपके पास जाऊँ। इसी उद्देश्य से आपके निकट आया हूँ। कृपया मुझे अपनाइये।''

नृपेन्द्र बाबू ने कहा—''मैं साधन-पथ का एक राही मात्र हूँ। सिद्धि किसे कहते हैं, यह मैं नहीं जानता। मैं माँ को पुकारता हूँ, वे जो कुछ देती हैं या दिखाती हैं, मैं उसी से संतुष्ट रहता हूँ। इससे अधिक मैं कुछ नहीं चाहता।''

इतना सुनने के बाद भी वह व्यक्ति लगातार कई महीने तक मंदिर में बड़ी आशा लेकर आता रहा। अंत में नृपेन्द्र बाबू ने कहा—''मेरे धर्म का मूल मंत्र है त्याग और भक्ति। लज्जा, घृणा और भय के रहते यह प्राप्त नहीं होता। आपको त्याग करना पड़ेगा— यथा धन का, वंश का, विद्या का, मान का। सभी जीवों में भगवद् रूप देखना पड़ेगा। माँ को सब कुछ समर्पण करने की शिक्षा मुझे प्राप्त हुई है। यदि आप प्रथम उद्योग के रूप में नित्य श्मशान में जाकर, एक माह तक चिता-कार्य में संलग्न डोमों का चरणरज अपने मस्तक से लगा सकें तो आगे क्या और करना पड़ेगा, उसे बताऊँगा।''

इस राय को सुनकर उक्त सज्जन फिर नहीं आये। कारण वंश-गौरव को त्याग करना उनके लिए संभव नहीं हो सका। संन्यासियों की विभूति देखकर कुछ लोग स्वत: इसे प्राप्त करना चाहते हैं, पर यह कितना कठिन मार्ग है, इसे भाँप नहीं पाते। साधना की प्रारंभिक अवस्था में चंचल मन को वश में करना चाहिए। ऐसा करने के लिए काम-क्रोध आदि रिपुओं पर विजय प्राप्त करना चाहिए। पूर्वजन्म की सुकृति न रहने पर गीता

के प्रवचन के अनुसार वैराग्य का आश्रय लेना पड़ेगा। पर यह सहज साध्य नहीं है। इसके लिए गुरु के उपदेश तथा भगवान् की कृपा चाहिए। गुरु के उपदेशों पर अमल करने के लिए उन पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास करना आवश्यक है। भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए चाहिए—आत्म-विसर्जन।

कालीरंजन भट्टाचार्य की श्रीमती परिमलवासिनी का उन्माद रोग नृपेन्द्र बाबू ने ठीक कर दिया था। इस घटना के बाद से इस परिवार के सदस्य अधिकतर किसी भी कार्य के लिए नृपेन्द्र बाबू से आज्ञा लेने आते थे। एक दिन काली बाबू आये और कहा कि वे जमशेदपुर में अपनी लड़की के यहाँ घूमने जाना चाहते हैं। ठाकुर से आज्ञा लेने आये हैं। आम तौर पर नृपेन्द्र बाबू ऐसे कार्यों के लिए अनुमति दे देते हैं। लेकिन इस बार उनके मुँह से निकल पड़ा—''नहीं, मत जाइये।''

बात सामान्य थी। काली बाबू ने इस पर ध्यान नहीं दिया और वे जमशेदपुर चले गये। उनके जाने के बाद उनकी पत्नी पर थ्राम्बोसिस का आक्रमण हुआ और वे बेहोश हो गयीं। कई घंटे बाद उनका निधन हो गया। काली बाबू की अनुपस्थिति के कारण शव-दाह के लिए परेशानी हुई। दुर्भाग्य की बात यह हुई कि इस मौके पर नृपेन्द्र बाबू का ध्यान किसी को नहीं आया। उन्हें किसी ने सूचना नहीं दी। काली बाबू इतने पास थे, फिर भी उन्हें तार दो दिन बाद मिला। यहाँ आने पर उन्हें मृत पत्नी का मुँह तक देखने को नहीं मिला।

काली बाबू पर पत्नी के निधन के बाद दूसरा आघात हुआ। उनका बड़ा लड़का खड़गपुर इंस्टिट्यूट से प्रथम श्रेणी में पास हुआ और उसे अमेरिकी सरकार ने छात्रवृत्ति दी। आगे की शिक्षा के लिए वह अमेरिका जाने की तैयारी करने लगा। अचानक नृपेन्द्र बाबू ने सोचा कि अमेरिका जाने के पहले अगर उसे दीक्षा दे दी जाय तो अच्छा होगा। अपनी इच्छा को उन्होंने काली बाबू के सामने प्रकट की, पर जोर देकर नहीं कह सके। किशोर होने के कारण लड़के ने दीक्षा को महत्त्व नहीं दिया। लड़का अमेरिका रवाना हो गया।

इधर न जाने क्यों नृपेन्द्र बाबू के मन में काँटा सा चुभता रहा, पर इसे वे प्रकट नहीं कर पा रहे थे। उधर लड़का सफलतापूर्वक एम०एस० पासकर डाक्टरेक्ट की डिग्री के लिए तैयारी करने लगा। ठीक इन्हीं दिनों समाचार आया कि लड़के को ब्रेन हेमरेज हो गया है। काली बाबू दौड़े हुए नृपेन्द्र बाबू के पास आये। नृपेन्द्र ने ध्यान लगाया तो अन्तरात्मा ने शुभ संकेत नहीं दिया। गुरुदेव प्राण विनिमय की क्रिया जानते थे, पर नृपेन्द्र बाबू इससे अपरिचित रहे। माँ ने कोई आदेश नहीं दिया। लड़का चल बसा।

इन्हीं काली बाबू का सबसे छोटा पुत्र परीक्षा में फेल होकर घर के लोगों को बिना सूचना दिये भाग गया। घर के लोग दो दिनों तक उसकी तलाश में चक्कर काटते रहे। मित्र, आत्मीय-स्वजन, ज्योतिषी, साधु-सन्त और पुलिस की सहायता ली गयी। कुछ पता नहीं चला। काली बाबू की बड़ी लड़की मंदिर में सूचना देने आयी।

नृपेन्द्र बाबू ने कहा—''आज की रात तुम लोग मंदिर में ठहर जाओ।''

परिवार के लोग राजी नहीं हुए। कारण, एक तो मन खराब है, दूसरे काशीपुर में लड़के के होने का आभास मिला है। सभी लोग तुरंत वहाँ जायँगे। नृपेन्द्र बाबू ने पुनः जोर देकर मंदिर में ठहरने को कहा। बाप-बेटी आपस में सलाह करने के बाद रात को ठहर गये। भोर के वक्त घर चले गये। दूसरे दिन काली बाबू लड़के को लेकर मंदिर में आये।

लड़के ने जो आपबीती सुनाई, वह अविश्वसनीय सी लगी। वह दो दिन तक वर्धमान और बोलपुर में था। नौकरी की तलाश में चक्कर काट रहा था। साथ में रकम न ले जाने के कारण भूखा-प्यासा चक्कर काट रहा था। उसकी बातों तथा चाल-चलन से लड़का गायब करनेवालों को संदेह हुआ। नौकरी दिलाने का लालच देकर उसे वे लोग निर्जन स्थान में ले गये। वहाँ हाथ-पैर बाँधकर मुँह में कपड़ा ठूँस दिया। उसी हालत में कंधे पर उठाकर रेल पर चढ़े और बेंच के नीचे छिपा दिया। उनकी बातचीत से पता चला कि दोनों मुसलमान हैं और इस वक्त पाकिस्तान जा रहे हैं। दो स्टेशन के बाद गाड़ी पाकिस्तान (बांग्लादेश) में प्रवेश कर जायेगी। अगले स्टेशन पर अचानक उसके हाथ-पैर के बंधन अपने आप खुल गये। वह पीछे खिसक कर गाड़ी से कूद गया और सीधे स्टेशन मास्टर के कमरे में घुस गया। वहाँ से उसे थाने पर लाया गया। उससे पता पूछकर पुलिस ने उसके पिता को सूचित किया। दूसरे दिन काली बाबू वहाँ जाकर लड़के को ले आये। जिस रात काली बाबू जोड़ा मंदिर में थे, उसी रात को लड़का आततायियों के कब्जे से मुक्त हुआ था। शरण में आये भक्तों की रक्षा माँ कैसे करती हैं, यह वही जानें।

इस प्रकार की अनेक घटनाओं की चर्चा स्वामी उमानन्द (नृपेन्द्र कुमार ने दीक्षा लेने के बाद यह नाम ग्रहण किया था।) ने अपनी जीवनी में लिखा है। अन्त में आप यह स्वीकार करते हैं कि सभी घटनाओं का निराकरण माँ काली की कृपा से हुई है। मैं तो निमित्त मात्र था। मुझमें योग-विभूति दिखाने की क्षमता नहीं है। अन्तरात्मा के माध्यम से माँ जो कुछ कहलाती थीं या जितना कराती थीं, मैं केवल उतना ही करता था। उनके सभी कार्यों में माँ की कृपा और गुरु का आशीर्वाद सहायता देते रहे।

उमानन्दजी ने धर्म के विषय पर न कहीं कोई भाषण दिया, न कोई आश्रम बनाया, यहाँ तक कि अपने मत का प्रचार भी नहीं किया। चन्दा माँगना, बड़े आदमी से सहायता लेना, उनकी रुचि के विपरीत था। जब आप प्रोफेसर थे तब प्राचीन भारत के सम्बन्ध में दो पुस्तकें लिखीं और इसके बाद अपनी जीवनी। कलकत्ता में आज भी जोड़ा मंदिर है जहाँ भक्त लोग कालीमाता का दर्शन करने जाते हैं।

आपका तिरोधान मई, १६७६ ई० शुक्ल चतुर्दशी के दिन हुआ था।

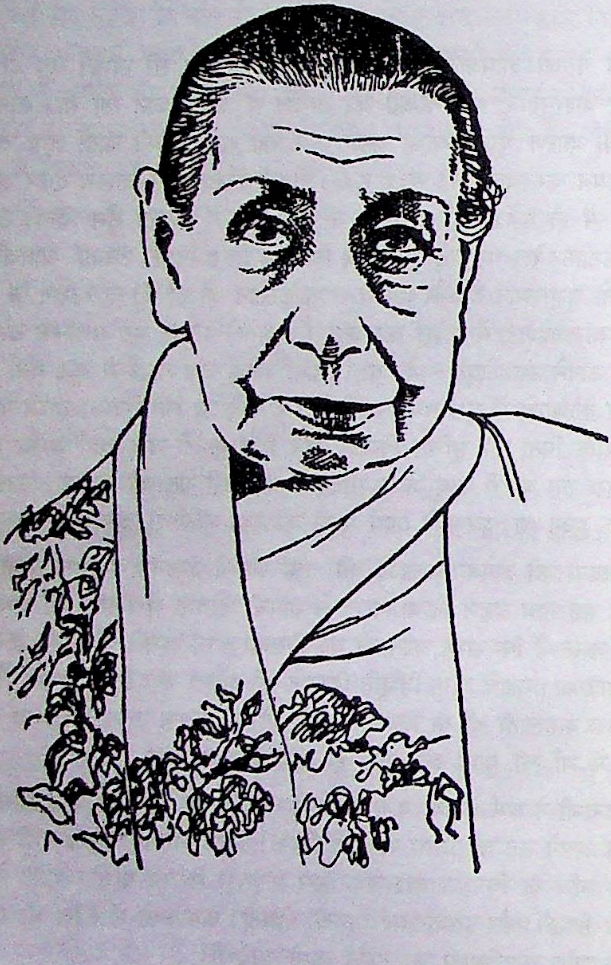

पाण्डिचेरी की श्रीमाँ

पाण्डिचेरी की श्रीमाँ

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की बात है, उन दिनों फ्रांस की राजधानी पेरिस में श्री मरिस अलफासा (जो कि प्रसिद्ध बैंकर थे) सपरिवार रहते थे। यद्यपि अलफासा के पूर्वज कई पुश्तों से फ्रांस के नागरिक बन गये थे, परन्तु इस परिवार का मूल निवास-स्थान फ्रांस नहीं था। इस परिवार का आदि निवास मिस्र के आसपास किसी देश में था जिसके बारे में इन्हें विशेष दिलचस्पी नहीं थी। अपने मूल स्थान से आपके पूर्वज फ्रांस क्यों चले आये, इसकी भी जानकारी अलफासा को नहीं थी।

इसी परिवार में सन् १८७८ के २१ फरवरी को एक बालिका ने जन्म लिया। इस बालिका का नाम मीरा रखा गया जो चित्तौड़ की महारानी मीरा के नाम पर था। फ्रांस जैसे देश में बालिका का ऐसा नाम क्यों रखा गया, कहा नहीं जा सकता। श्री मरिस या उनकी पत्नी को स्वप्न में भी विश्वास नहीं हुआ कि उनकी पुत्री अतिमानवी के रूप में पैदा हुई है जो आगे चलकर अध्यात्म-जगत् में ''श्रीमाँ'' के रूप में प्रतिष्ठित होगी। जिन्हें विश्व के अनेक लोग माताजी, मदर, श्रीमाँ, डुसमैर आदि नामों से सम्बोधन करेंगे। इन नामों के बावजूद वे 'पाण्डिचेरी की श्रीमाँ' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं।

योगिराज अरविन्द ने एक बार कहा था—''माँ जन्म से ही माँ हैं। भगवान् जब मनुष्यों के बीच आते हैं तब मनुष्य के रूप में आते हैं, पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे अपना ईश्वरत्व छोड़कर आते हैं। उनमें सब कुछ रहता है, वह सब ऐश्वर्य समय पर प्रकट होता है। हमारी माँ बचपन से सभी मानवों के ऊपर हैं।''

स्वयं माँ ने भी इस बात को एक जगह स्वीकार किया है—''जब मेरी उम्र चार साल की थी तभी से मुझमें योग की प्रक्रिया आरंभ हो गयी थी। मैं चुपचाप कुर्सी पर बैठी रहती थी। इन दिनों मेरे मस्तिष्क में एक प्रकार का प्रकाश अठखेलियाँ करता था। इसका मतलब क्या है, समझ नहीं पाती थी। सच तो यह है कि इसे समझने लायक मेरी उम्र नहीं थी। आगे चलकर जब इस रहस्य को समझ पायी तब समझा कि मुझे इस संसार में विराट् कार्य करना है।''

संसार में अनेक ऐसे प्रतिभावान नर-नारी हुए हैं जिनमें बचपन से ही अध्यात्म-

शक्ति का विकास हो गया था। आनन्दमयी माँ, गौरी माँ, सिद्धमाता आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जबकि अधिकतर लोगों में यह शक्ति समय के साथ प्रकट होती है अथवा गुरु से प्राप्त होती है।

बचपन से ही माँ किसी का दुःख देखकर गम्भीर हो जाती थीं। माँ के इस रूप को देखकर उनकी माँ प्रायः पूछ बैठतीं—"क्यों बेटी, तू हर वक्त इतनी गम्भीर क्यों रहती है? क्या सारे जहान का दर्द तेरे सिर है?"

नन्हीं माँ जवाब देती—"हाँ, माँ! तुमने ठीक समझा है। सारे जहाँ का दर्द मुझे ढोना पड़ रहा है, इसलिए कभी-कभी गम्भीर हो जाती हूँ।"

लड़की की बातें सुनकर माँ अवाक् रह जाती। कच्ची उम्र की लड़की कैसे यह बात कह सकी? इसे तो अभी तक संसार के रहस्य का ज्ञान ही नहीं है।

दरअसल बचपन से ही माँ को एक विराट्-शक्ति ने आच्छादित कर रखा था। अहरह वे यह अनुभव करती थीं कि एक उज्ज्वल प्रकाश उनके मस्तक में मौजूद है। बचपन से ही उन्हें वृक्ष, लता, गुल्म, पशु, पक्षी से अपार प्रेम था। पेरिस के बागों में जाकर वे किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाती थीं।

इस सम्बन्ध में माँ ने कहा है—"वृक्ष के नीचे बैठ जाने के बाद मैं तन्मय हो जाती थी। मुझे ऐसा लगता था जैसे इन सभी से मेरा आन्तरिक योग है। पेड़ों पर बैठे पक्षी तथा गिलहरी मेरे निकट आकर बैठते, उछलते और नाचा करते थे। यहाँ तक कि मेरे शरीर पर से गुजर जाते थे। वे सब मुझे अपना आत्मीय समझते थे। एक बार जब मैं एक वृक्ष के नीचे आकर खड़ी हुई तब वह जैसे उलाहना देते हुए कहने लगा—"मुझे काटने का निश्चय किया गया है। कृपया आप मेरी रक्षा करने का प्रयत्न कीजिए।"

जिन दिनों माँ की उम्र सात साल थी, उन दिनों दैवयोग से एक घटना हो गयी। राह चलते बड़े भाई ने एक साइनबोर्ड की ओर इशारा करते हुए पूछा—"बता तो, उस बोर्ड पर क्या लिखा है?"

माँ पढ़ना-लिखना नहीं जानती थी, ऐसी स्थिति में वह क्या बतलाती। भाई को शरारत करनी थी। उसने माँ का मखौल उड़ाया। माँ आवेश में घर लौट आयी और पढ़ने बैठ गयी। इस जिद्द का परिणाम साल भर बाद प्रकट हुआ जब वे परीक्षा में प्रथम श्रेणी में पास हुईं।

इन्हीं दिनों की एक और घटना है। स्कूल में तेरह वर्ष का एक बालक अक्सर माँ से परिहास किया करता था। वह उम्र में माँ से छः साल बड़ा था। उसकी निर्लज्जता पर एक दिन माँ ने उसे बुरी तरह फटकारा, पर उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वह पहले की तरह परिहास करता रहा। ठीक इन्हीं दिनों माँ में अतुलित शक्ति अपने आप उत्पन्न हो गयी। एक दिन उस लड़के को शून्य में उठाकर जमीन पर पटक दिया। इस

घटना की चर्चा करते हुए माँ ने एक बार कहा था—"मुझमें यह शक्ति ईश्वर की कृपा से अचानक उस समय आ गयी थी।"

वय:संधि काल पार होने के बाद माँ का विवाह फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान पल रिशा के साथ हुआ। विवाह के पश्चात् माँ का नाम मैडम क्यासा हुआ, पर वे मीरा रिशा लिखा करती थीं। विवाह के काफी दिनों बाद माँ उत्तरी अलजीरिया के क्लेमसन विशिष्ट अतीन्द्रिय-साधक मसियो तेंओ के निकट आयीं। उद्देश्य था— गुप्त-विद्या की शिक्षा प्राप्त करना। माँ की अलौकिक शक्ति देखकर तेंओ प्रभावित हुआ। उसने माँ को अपनी विद्या की शिक्षा देने का निश्चय किया।

एक दिन माँ पियानो बजा रही थीं। अचानक संगीत रुका तो सदर दरवाजे के पास से एक बड़े मेढक की आवाज आयी—'कोआक।'

इस आवाज को सुनते ही माँ ने मेढक की ओर देखा। मेढक ने क्या कहा, इसे केवल माँ समझ पायी। मेढक ने कहा—"फिर बजाओ।"

माँ उसके अनुरोध पर पुन: बजाने लगीं। मेढक चुपचाप संगीत सुनता रहा। इस बार जब संगीत समाप्त हुआ तब वह चुपचाप चला गया। इस प्रकार वह मेढक नित्य आता और अनुरोध करता था। माँ के संगीत में स्वर्गीय आनन्द था।

अलजीरिया में हुई एक घटना की चर्चा करती हुई माँ ने कहा था—"गर्मी के मौसम में अलजीरिया की जमीन आग उगलती है। कारण पास ही सहारा का रेगिस्तान है। उन दिनों मैं तेंओ से अतीन्द्रिय-विद्या सीख रही थी। नित्य दोपहर को एक वृक्ष के नीचे ध्यान लगाती थी। एक दिन की बात है। नित्य की तरह गहरे ध्यान में तन्मय हो गयी थी। ठीक ऐसे समय न जाने क्यों मैं बेचैनी अनुभव करने लगी। अचानक मैंने आँखें खोलकर देखा— सामने से एक काला नाग फन फैलाये मेरी ओर बढ़ रहा है। मैं समझ नहीं पा रही थी कि नागराज अचानक मुझ पर कुपित क्यों हो गये। अचानक मुझे महसूस हुआ कि मैं उसके बिल पर बैठी हुई हूँ। लेकिन इस समय यहाँ से भागना खतरे से खाली नहीं था। अगर हटा तो काट खाएगा। मैं इस आकस्मिक घटना से न तो भयभीत हुई और न अधीर हुई। उसकी आँखों से आँखें मिलाकर शक्ति का प्रयोग करने लगी। धीरे-धीरे वह काबू में आ गया। उसका फन झुक गया और वह पीछे की ओर लौट गया।"

इस घटना की चर्चा करने पर तेंओ ने कहा—"वह साँप स्नान करने के बाद अपने घर में प्रवेश करना चाहता था, पर तुमने उसका रास्ता बंद कर रखा था, इसलिए वह क्रुद्ध हो गया था।"

माँ तेंओ तथा उसकी पत्नी से आकल्टीज्म (दैवी-शक्ति) विद्या की शिक्षा ग्रहण करती रही। इस शिक्षा के लिए माँ को दो बार अलजीरिया आना पड़ा था। उन दिनों इस विद्या का सर्वश्रेष्ठ साधक तेंओ ही था जो स्थूल शरीर को समाधिस्थ करने के

पश्चात् सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करने की विद्या जानता था। केवल यही नहीं, सूक्ष्म शरीर को निद्रित कर और गहरे में जाने की क्रिया जानता था, जहाँ चैतन्यावस्था प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार सीढ़ी-दर-सीढ़ी उन्नत होकर साधक लक्ष्य तक पहुँच सकता है। इस क्रिया को अतीन्द्रियवादी अनैसर्गिक स्तर कहते हैं। माँ इस स्तर तक पहुँच गयी थीं।

इस विद्या के बारे में माँ ने कहा है—"अतीन्द्रिय जगत् का ज्ञान जड़-जगत् तथा शरीर के आसपास स्थित सूक्ष्म-जगत् और सूक्ष्म-शरीर की नींव पर आधारित है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसे 'चेतना अवस्था का निश्चय' कहा जाता है, पर उक्त चेतन-अवस्था समूह वास्तव में भिन्न-भिन्न जगत् के चेतन अवस्था के समूह हैं। अतीन्द्रिय-प्रक्रिया में इसीलिए सत्ता के भीतर स्थित विभिन्न स्तरों तथा सूक्ष्म-शरीर से परिचित होना पड़ेगा। इस बारे में जानकारी प्राप्त करनी होगी जिससे एक के बाद एक करके उनका प्रकाश सम्भव हो सके। स्थूल-शरीर से निकलकर सूक्ष्म से सूक्ष्मातिसूक्ष्म-जगत् में प्रवेश करने तथा अतीन्द्रिय-प्रक्रिया के क्रम-पर्याय में स्थूल से सूक्ष्म एवं अतिसूक्ष्म से इथर के स्तर में मिल जाना पड़ेगा।"

आगे माँ ने इस प्रक्रिया के बारे में कहा—"इस अद्भुत जगत् में तुम देखोगे— भय-संकुल दृश्य। साधारण तौर पर तुम्हें महसूस होगा कि यहाँ हवा नहीं है— सब खाली है। आकाश नीला है, सफेद बादल हैं, धूप झिलमिला रही है। किन्तु जब दूसरी ओर देखोगे तब ऐसा लगेगा जैसे सब कुछ बदल गया है— मानो समस्त वातावरण बदल गया है। आवहवा में हजारों-लाखों छोटी-छोटी आकृतियाँ उभर आयी हैं, वे सब मानसिक या प्राणिक इच्छा से गठित जीव समूह हैं, मानसिक विकलांग समूह हैं। ये सब चारों ओर से तुम्हें इस प्रकार घेर लेंगे कि तुम भयभीत हो जाओगे। अगर तुम भयभीत नहीं हुए और शांत भाव से देखते रहे तो भय का कोई कारण नहीं रहेगा।"

+ + + +

जिन दिनों माँ अलजीरिया में तेंओ के निकट यह विद्या सीख रही थीं, उन दिनों एक बार पेरिस में आपके कुछ मित्र एक जगह बैठे आपस में बातें कर रहे थे। माँ अपने स्थूल शरीर से निकलकर सहसा वहाँ पहुँच गयीं और एक कागज पर कुछ लिखकर वापस अपने स्थान पर आ गयीं। इस तरह के चमत्कारों का प्रयोग भविष्य में उन्होंने फिर कभी नहीं किया। दरअसल वे मानव-कल्याण के लिए विशेष रूप से सक्रिय रहीं। उच्चकोटि के साधक इस प्रकार की योग-विभूतियों का प्रदर्शन नहीं करते। इसे हेय दृष्टि से देखते हैं।

अतीन्द्रिय-शक्ति के माध्यम से मानव-कल्याण किया जा सकता है। माँ के जीवन में एक बार ऐसी घटना हुई थी। इस घटना में उन्हें भाग लेना पड़ा था। यह घटना उस समय हुई थी जब माँ अलजीरिया से वापस घर की ओर आ रही थीं। आपके

साथ गुरुवर तेंओ भी थे जो यूरोप घूमने के लिए साथ चल रहे थे।

इस घटना के बारे में माँ लिखती हैं—"अलजीरिया से मैं हमेशा के लिए रवाना हुई। साथ में तेंओ भी थे। वे यूरोप घूमने की इच्छा से साथ में आ रहे थे। सहसा समुद्र में भयंकर तूफान उत्पन्न हो गया। सभी यात्री भय से व्याकुल हो उठे। यहाँ तक कि कप्तान की आकृति पर भय के चिह्न प्रकट हो गये। तेंओ ने मेरी ओर देखते हुए कहा—'इस तूफान को रोक दो।'

"इस आदेश को पाकर मैं अपने केबिन में जाकर सो गयी। इसके बाद अपना स्थूल शरीर छोड़कर समुद्र में सूक्ष्म शरीर में घूमने लगी। मैंने विस्मय से देखा कि समुद्र की तरंगों पर अगणित प्रेतात्माएँ पागलपन कर रही हैं। सबके सब जहाज के साथ खिलवाड़ कर रही हैं। मैंने उन्हें नम्र भाव से समझाया। अंत में मेरी बातों का प्रभाव उन पर पड़ा। तुरंत समुद्र शांत हो गया। वहाँ से मैं अपने स्थूल शरीर में वापस आ गयी। बाद में डेक पर आकर मैंने देखा— तूफान गायब हो गया था। सभी यात्री प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे।"

सन् १६१० में आपके पति पल रिशा भारत यात्रा के लिए चल पड़े। वे फ्रांस सरकार द्वारा नियुक्त पाण्डिचेरी के गवर्नर बनकर आये थे। तभी माँ ने उन्हें एक योगचक्र देकर कहा—"इस नक्शे की व्याख्या भारत में कोई योगी ही कर सकता है। आप ऐसे योगी की तलाश अवश्य करें। जो व्यक्ति इसकी व्याख्या कर सकेगा, वही मेरे योग-मार्ग का सहायक होगा। वास्तव में वही योगी मेरा गुरु होगा।"

पल रिशा स्वयं अध्यात्म से दिलचस्पी रखते थे। पत्नी के अनुरोध को उन्होंने स्वीकार कर लिया। मई माह में वे पाण्डिचेरी पहुँचे। उन दिनों महर्षि अरविन्द वहाँ निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे। पाण्डिचेरी फ्रांस के अधिकार में था। रिशा महर्षि के निकट आये और उक्त योगचक्र के बारे में प्रश्न किया।

प्रत्युत्तर में श्री अरविन्द ने कहा—"यह सत्, चित्त, आनन्द का प्रतीक है— प्राण, प्रकाश और प्रेम का प्रतीक है— सृष्टि के वैचित्र्य प्रवाह का प्रतीक है। इसके भीतर के विकसित पद्म सूचित कर रहे हैं— चेतना का उन्मीलन।"

दूसरी ओर यही योगचक्र श्री अरविन्द का प्रतीक था जो आगे चलकर अरविन्द और माँ के योग-सूत्र का प्रतीक बना।

श्री अरविन्द की इस व्याख्या को पति की जबानी सुनकर माँ भारत आने के लिए व्याकुल हो उठीं। यह सन् १६१४ की बात है।

अपनी आकुलता के बारे में माँ ने लिखा है—"मुझे नींद में ही नाना प्रकार के अनुभव होते रहे। मैं भिन्न-भिन्न गुरुओं से उपदेश प्राप्त करती रही। आगे चलकर उनमें से कुछ गुरुओं का दर्शन भी प्राप्त हुआ था। बाद में ज्यों-ज्यों आध्यात्मिक जीवन में

उन्नति होती गयी त्यों-त्यों किसी न किसी के साथ घनिष्ठता बढ़ती गयी। उस समय तक मैं भारतीय धर्म-दर्शन से पूर्णतः अपरिचित थी। पता नहीं, किसने कृष्ण रूप में चिन्तन करना सिखाया। जब मैंने पहले पहले श्री अरविन्द को देखा तब उन्हें पहचान लिया। इसी व्यक्ति को जो मेरे निकट कृष्ण हैं, इन्हें इसी नाम से पुकारती हूँ ……।''

+ + + +

सन् १६१४ ई० संसार के इतिहास में इसलिए प्रसिद्ध है कि इसी सन् को विश्व-युद्ध प्रारंभ हुआ था। इन्हीं दिनों माँ के हृदय में श्री अरविन्द के दर्शन के लिए इस कदर व्याकुलता बढ़ी कि वे ७ मार्च को 'कामागारू' नामक जहाज से भारत की ओर रवाना हुईं। जहाज के रवाना होने पर वे परमब्रह्म परमेश्वर के निकट प्रार्थना करने लगीं—

''हे भगवान्, हे अनुपम बंधु, हे सर्वशक्तिमान प्रभु, मेरी समग्र सत्ता में तुम प्रवेश करो।''

एक अर्से तक यात्रा करने के बाद जहाज कोलम्बो बन्दरगाह पर आया और जब यहाँ से जहाज रवाना हुआ तब माँ की कैसी स्थिति हुई, इस सम्बन्ध में वे कहती हैं—''पाण्डिचेरी किस दिशा में है, इसकी जानकारी मुझे नहीं थी। जहाज किस दिशा की ओर जा रहा है, इसकी जानकारी कुतुबनुमा यंत्र से प्राप्त हो रही थी। किनारा कहीं नजर नहीं आ रहा था। अचानक मुझे ऐसा महसूस हुआ कि एक ओर से चुम्बक की तरह आकर्षित किया जा रहा है। तुरंत मेरी अतीन्द्रिय शक्ति ने सूचना दी कि पाण्डिचेरी किस दिशा में है। श्री अरविन्द की योग-शक्ति का विस्तार यहाँ तक हो गया है। ज्यों-ज्यों जहाज किनारे की ओर बढ़ने लगा त्यों-त्यों मेरी अतीन्द्रिय शक्ति यह दिखाने लगी कि शहर के एक केन्द्र में नीले रंग की एक रश्मि झलमला रही है।''

जब श्रीमाँ के चरण भारतमाता की पवित्र भूमि पर पड़ी तब उक्त रश्मि और गहरे रंग की हो गयी।

२६ मार्च, सन् १६१४ के दिन माँ को सर्वप्रथम अपने गुरु का दर्शन मिला। स्वप्न में वे जिस ज्योति को निरन्तर देखती रहीं, इस वक्त वही ज्योति प्रत्यक्ष रूप में उनके सामने मौजूद है। उन्होंने यह भी देखा—श्री अरविन्द के भीतर एक पूर्ण समर्पित प्राण, आत्मा प्रचण्ड-शक्ति का आधार बनकर मौजूद है।

दूसरी ओर श्री अरविन्द ने देखा— उनके सामने एक विराट्-शक्ति उपस्थित है। मानवी-तन में ऐसा भगवत्-समर्पित प्राणी आज तक उनकी दृष्टि में कोई नहीं आया। वे अपने अतिमानस काल के बारे में निश्चिन्त हो गये। अब पृथ्वी में उनके योग का एक नया अध्याय प्रारंभ होगा।

३ अप्रैल, १६१४ ई० को माँ ने अपनी डायरी में लिखा—''लगता है, मैं एक नये जीवन के लिए पुनर्जन्म लेने जा रही हूँ। अतीत का कोई भी नियम, कोई भी अभ्यास मेरे काम नहीं आयेगा। मैं जिसे परिणाम समझती थी, वह तो आयोजन मात्र

है। अब मैं अनुभव कर रही हूँ कि अब तक मैंने कुछ भी नहीं किया है। आध्यात्मिक जीवन यापन तो किया ही नहीं, केवल उस मार्ग की ओर बढ़ रही हूँ। शायद मैं कुछ भी नहीं जानती। लगता है, पुनः नये सिरे से सब कुछ अर्जित करना पड़ेगा।''

+ \+ \+ \+

१५ अगस्त, १६१४ के दिन श्री अरविन्द का जन्म दिवस था। उसी दिन से 'आर्य' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ। उसे अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी भाषा में छापने का निश्चय किया गया। श्रीमाँ तथा उनके पति श्री पल रिशा ने सारा मैटर फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद करने की जिम्मेदारी ली। पत्रिका के लिए सामग्री एकत्रित करना, प्रूफ पढ़ना, संपादन, ग्राहकों के पते लिखना, डाकखाने भिजवाना, सारा हिसाब-किताब रखना आदि कार्यों की जिम्मेदारी माँ को सौंपी गयी। एक प्रकार से माँ का कर्म-यज्ञ प्रारंभ हो गया।

इसी बीच विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया था। माँ को फ्रांस वापस लौटना पड़ा। अगर श्री अरविन्द उन्हें रोक लेते तो शायद माँ यहाँ रुक जातीं, पर ऐसा नहीं हुआ। माँ उदास भाव से युद्ध में भाग लेने के लिए वापस चली गयीं। युद्ध समाप्त होने के बाद २४ अप्रैल, सन् १६२० को महर्षि के आश्रम में पुनः वापस आ गयीं।

इस बार माँ का आगमन अरविन्द आश्रम के लिए वरदान प्रमाणित हुआ। योगिराज अरविन्द क्रमशः सभी ओर से अपना हाथ समेटने लगे। फलस्वरूप माँ पर नाना प्रकार के कार्यों का बोझ बढ़ता गया। आश्रम का संचालन, भक्त और शिष्यों के आध्यात्मिक उन्नयन की जिम्मेदारियाँ सम्हालने लगीं।

इन दिनों की स्थिति के बारे में श्री नलिनी कान्त गुप्त लिखते हैं—''माँ के आने के बाद से हम लोगों की जीवन-धारा पूर्ण रूप से बदल गयी। श्री अरविन्द को माँ ने महायोगेश्वर की वेदी पर स्थापित किया। यह कार्य करके उन्होंने हमें यह सिखाया कि गुरु-शिष्य का वास्तविक अर्थ क्या है। इसे जबानी न कहकर करके दिखाया। माँ कभी श्री अरविन्द के सामने, बगल में या बराबर के आसन पर नहीं बैठती थीं। अपने इस आचरण से वे हमें यह दिखाती थीं कि गुरु के प्रति किस प्रकार श्रद्धा-शिष्टाचार करना चाहिए।''

''मुझे यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि माँ फ्रांस में रहते समय गीता, उपनिषद, योगसूत्र, नारदसूत्र का अध्ययन ही नहीं करती थीं, बल्कि फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद कर चुकी हैं।''

श्री के०डी० शेठना साहब लिखते हैं—''आश्रम में माँ अत्यन्त सादगी से रहती थीं। उनके पास दो या तीन साड़ियों के अलावा अन्य कोई वस्त्र नहीं था। उसे स्वयं अपने हाथ से साफ करती थीं। आश्रम में ऐसा कोई काम नहीं था जिसे करने में उन्हें हिचक हुई हो।''

२४ नवम्बर, सन् १९२६ ई० को सिद्धि दिवस के बाद श्री अरविन्द गम्भीरतम साधना के लिए अन्तराल में चले गये। अब आश्रम का सम्पूर्ण भार माँ के कंधों पर आ गया। पहले तो कुछ लोगों को नागवार लगा— एक विदेशी महिला पर इतना विश्वास क्यों? लेकिन चन्द दिनों बाद लोगों ने अनुभव किया कि माँ के अलावा इतने सुचारु रूप से सारी व्यवस्था अन्य कोई नहीं कर सकता था।

इन्हीं दिनों एक दिन जब माँ ध्यान कर रही थीं, तब एक विराट्-शक्ति आकर उनमें समाहित हो गयी। माँ उस क्षमता को प्राप्त करने के बाद श्री अरविन्द के कक्ष में आकर बोलीं— मैं सृष्टि की नाद-ध्वनि की अधिकारिणी हो गयी हूँ।''

श्री अरविन्द ने उत्तर दिया—''यह ध्वनि आयी है— अधिमानस से। इसे हम नहीं चाहते। हम इस संसार में अतिमानस का निर्माण करना चाहते हैं।''

बिना कोई प्रतिवाद किये माँ अपने कमरे में आ गयीं। दो घण्टे तक ध्यान में निमग्र रहीं। उन्होंने इस अधिकार को स्वेच्छा से त्याग दिया। यौगिक-इतिहास में इतना बड़ा त्याग आज तक किसी ने नहीं किया है।

माँ की दिव्य-शक्ति कैसी थी, इसका उल्लेख उनके कुछ शिष्यों ने किया है। एक ने लिखा है—''आज जब मैं माँ का काम कर रहा था तब अपने अंतर में मैंने एक शान्त तेज अनुभव किया। लगा जैसे मस्तक में हिमस्पर्श हुआ। हृदय में ज्ञान उतर आने पर देखा कि माँ यद्यपि सशरीर उपस्थित नहीं हैं, पर वे हमारे चारों ओर सर्वत्र हैं। वे अपना स्नेहहस्त हम पर फेरती हुई सारे कष्टों को दूर कर दे रही हैं।''

दूसरे व्यक्ति ने लिखा है—''विगत एक पखवाड़े से जब कभी मैंने माँ को प्रणाम किया तभी उनके स्पर्श से शक्ति और आनन्द प्राप्त किया। लगता था जैसे कोई नयी चीज मेरे भीतर उड़ेली जा रही है।''

+ + + +

श्री गणपति शास्त्री सम्पूर्ण दक्षिण भारत में गणपति मुनि के नाम से प्रसिद्ध थे। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। सन् १९२८ में आप पाण्डिचेरी में श्री अरविन्द और श्रीमाँ का दर्शन करने आये। १७ अगस्त को आप माँ के साथ ध्यान पर बैठे। अपनी अभिज्ञता के बारे में आपने कहा है—''साधारण तौर पर जब मैं ध्यान पर बैठता हूँ तब सिर पर प्रवाह का अनुभव करता हूँ, किन्तु माँ के साथ जब ध्यान पर बैठा तब सभी ओर से विद्युत-प्रवाह का अनुभव करने लगा।''

इस बात के उत्तर में माँ ने कहा—''गणपति का ध्यान सार्थक हुआ है। लगातार बिना किसी व्यतिक्रम के आधे घण्टे तक चलता रहा। दूसरों के लिए इतनी देर तक ध्यान लगाना सम्भव नहीं होता।''

इस घटना के दो दिन बाद यानी १९ अगस्त को शास्त्रीजी माँ के साथ ४५ मिनट

तक ध्यान करते रहे। इस दिन के अनुभव के बारे में आपने कहा—"बोधि में मुझे शाकम्बरी और योगेश्वरी के दर्शन हुए। ज्योंही मेरी दृष्टि माँ पर पड़ी त्योंही उन्हें मैंने शाकम्बरी देवी के रूप में देखा।"

जिस समय शास्त्रीजी अपने इस अनुभव के बारे में चर्चा कर रहे थे, ठीक उसी समय माँ की आँखें बन्द हो गयीं और उन्हें भाव-समाधि लग गयी। शास्त्रीजी ने विस्मय से देखा— माँ के शरीर से उज्ज्वल प्रकाश निकलकर उनके चारों ओर फैलकर बलाकार रूप ले रहा है। उन्हें प्रतीत हुआ कि इस वैद्युतिक प्रभा और शक्ति से सम्पूर्ण कक्ष संजीवित हो उठा है।

ध्यान और प्रार्थना के पश्चात् माँ प्रत्येक को आशीर्वाद देकर एक-एक फूल देती थीं। फूल देने का एक विशेष महत्त्व था। प्रत्येक फूल साधक की चेतना में एक प्रकार का स्पन्दन उत्पन्न करता था। जिसे जैसी जरूरत होती, उसे उसी प्रकार का देकर वे आगे बढ़ जाती थीं।

इस प्रक्रिया के बारे में एक सज्जन ने श्री अरविन्द से पूछा कि माँ के इस तरह फूल वितरण करने का क्या अर्थ है? उत्तर में उन्होंने कहा था—"माँ जब उक्त फूल में अपनी शक्ति का प्रयोग करती हैं तब वह प्रतीक से कुछ अधिक हो जाता है। उस वक्त जो फूल ग्रहण करता है, अगर उसमें ग्रहिष्णुता रहती है तो वह खूब कार्यकारी हो सकती है।"

इसी प्रकार किसी योग-शिक्षार्थी के प्रश्न के उत्तर में माँ ने कहा था—"किस उद्देश्य से तुम योग चाहते हो? शक्ति-संचय के लिए? अविकम्प शान्ति प्राप्त करने के लिए? इन दोनों में से किसी एक से यह नहीं समझा जा सकता कि तुम योग के अधिकारी हो। जिस प्रश्न का तुम्हें जवाब देना है, वह यह है कि क्या तुम भगवान् के लिए योग चाहते हो? क्या भगवान् तुम्हारे जीवन की चरम वस्तु है? यहाँ तक कि वे ही तुम्हारी सत्ता के कारण हैं, उन्हें अलग कर देने पर तुम्हारे जीवित रहने का कोई अर्थ नहीं रहता? अगर ऐसी भावना है तो तुमने योग के मार्ग में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त किया है। इसके लिए सबसे पहले चाहिए तुम्हारे हृदय में भगवान् के प्रति अस्पृहा आकुति। इसके बाद तुम्हारा काम होगा— इस आकुति का पोषण करना, इसे सदा जाग्रत और जीवन्त रखना। इसके लिए आवश्यक है— एकाग्र अभिनिवेश की। तुम्हारे भीतर अभिनिवेश के अनेक केन्द्र हैं। जैसे एक शीर्ष स्थान में, एक भौंहों के मध्य। इनमें प्रत्येक की उपयोगिता है। प्रत्येक से विशिष्ट फल प्राप्त होता है। यहाँ स्मरण रखना होगा कि हृदय में तुम्हारी सत्ता का केन्द्र है। इस केन्द्र से निकलते हैं— सभी मूल वृत्तियाँ, सभी गतियाँ, सभी प्रेरणाओं की उपलब्धि।"

भारतीय साधना के बारे में माँ ने कहा है—"भारत ही एक मात्र देश है जो संसार

को सत्य का मार्ग दिखा सकता है। पश्चिम का अनुसरण किये बिना भारत भगवत्-शक्ति और एषणा का प्रकाश उत्पन्न कर संसार को अपना उपदेश दे सकता है।''

+ + + +

श्री अरविन्द और श्रीमाँ के शरीर में अधिमानस-शक्ति उतरने के बारह वर्ष बाद माँ को लगा जैसे अतिमानस सिद्ध होनेवाला है। माँ ने कहा था—''सन् १९३८ में मैं श्री अरविन्द के भीतर अतिमानस-शक्ति का अवतरण होते देख चुकी हूँ। उस समय तक उस शक्ति को पृथ्वी में स्थायी नहीं किया जा सका था।''

+ + + +

५ दिसम्बर के दिन सबेरे आश्रम के सभी दरवाजे खोल दिये गये ताकि सभी वर्ग के लोग अपने परमगुरु का अन्तिम दर्शन कर सकें। उन्हें प्रणाम कर सकें। समस्त आश्रमवासियों ने उस दिन विस्मय से स्तब्ध होकर महामानव के महाप्रयाण का संवाद सुना। केवल सम्पूर्ण भारत ही नहीं, समस्त संसार में यह समाचार प्रसारित हो गया।

माँ ने कहा—''संसार को यह नहीं मालूम कि इस जगत् के लिए उन्होंने कितना बड़ा त्याग किया। आज से एक वर्ष पूर्व बातचीत के सिलसिले में मैंने उनसे कहा था कि मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मुझे शरीर-त्याग करना पड़ेगा। तब उन्होंने कहा था—''नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। आवश्यक होने पर मैं जा सकता हूँ। तुम्हें अभी अतिमानस योग के आरोहण और रूपान्तर के कार्य करना पड़ेगा।''

गुरुदेव की इस आज्ञा को माँ ने शिरोधार्य कर लिया था। इसके बाद उनकी अभिनव-साधना चलने लगी। अतिमानस-शक्ति को पृथ्वी पर स्थायी करना है। श्री अरविन्द के ईप्सित कार्य को पूरा करना है।

१५ फरवरी, सन् १९५६ के दिन श्री अरविन्द की ईप्सित ज्योति और शक्ति को माँ इस पृथ्वी की चेतना में ले आयीं। ३ फरवरी, सन् १९५८ के दिन माँ ने इस सम्बन्ध में कहा था—''अतिमानस जगत् में स्थायी रूप से है और मैं स्वयं भी अतिमानस शरीर में स्थायी रूप से वर्तमान हूँ। इसका प्रमाण आज ही अपराह्न काल में प्राप्त हुआ।''

+ + + +

श्रीमाँ की सबसे विस्मयकारी सृष्टि है— अरोविल। सन् १९१२ में इसका सपना माँ ने देखा था। श्री अरविन्द के नाम पर इस नगर का नामकरण किया गया है— अरोविल। इसका एक अर्थ है— भोर की नगरी— नवजीवन की नगरी— भविष्य की नगरी। इस नगरी को कोई भी पाण्डिचेरी जाकर देख सकता है। माँ की यह सबसे बड़ी देन है। सन् १९६६, १९६८ और १९७० में आयोजित युनेस्को की मीटिंग में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया था और इस कार्य के लिए सहायता दी गयी थी।

अरोविल का एक मात्र उद्देश्य है— सभी प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक और

धार्मिक विश्वास से ऊपर उठकर यह एक मात्र मानव की सेवा करेगा। अरोविल होगा विश्वस्तता, सत्य और शान्ति का प्रतीक।

अरविन्द आश्रम का यह नगर दर्शकों के लिए सबसे प्रिय है यह नगरी जो प्रत्येक वय: के लोगों को आकर्षित करती है।

+ + + +

महर्षि अरविन्द के प्रभाव के कारण भारत ही नहीं, बल्कि अनेक विदेशी भी यहाँ शिक्षार्थी के रूप में आते हैं। अनेक लोग आश्रम में निवास करते हुए अपनी सेवाएँ देते हैं। डा० नीरदवरण आश्रम के चिकित्सक थे। श्री अरविन्द का भक्त होने के कारण माँ के प्रति उनकी भक्ति असाधारण थी।

एक दिन की बात है। श्रीमाँ अपने गुरु के कमरे में उनका केश-विन्यास करने के लिए आयीं। उस समय कमरे में डा० नीरदवरण के अलावा एक अन्य सज्जन बैठे थे। इन लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि श्री अरविन्द का केश सँवारते-सँवारते माँ को भाव-समाधि हो गयी। उनकी दोनों आँखें अधखुली थीं। सारा शरीर सख्त हो गया था, पर दोनों हाथ बराबर कार्य कर रहे थे।

इस दृश्य को देखकर दोनों विस्मृत हो गये। दूसरे ही क्षण वे इस प्रकरण पर आपस में परिहास करने लगे। इशारे से। उनके निकट यह दृश्य परिहास का विषय बन गया था। चूँकि माँ की पीठ इन लोगों की ओर थी, इसलिए वे यह समझ रहे थे कि उनके इस विनोदी इशारे को माँ देख नहीं रही हैं।

माँ समाधि-अवस्था में ही केश-विन्यास कर चल पड़ीं। दरवाजे के पास आकर पीछे की ओर मुखातिब होकर बोलीं—"तुम लोग यह मत समझना कि तुम लोग जो कुछ कर रहे थे, उसे मैंने नहीं देखा । मैंने सब कुछ देखा। याद रखना, मेरे सिर के पीछे भी दो आँखें हैं। मेरे अगोचर में कुछ नहीं होता और न कुछ रह सकता है।"

इतना कहकर माँ बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये चल दीं। यद्यपि दोनों मित्र अपने कुकृत्य के लिए सन्न रह गये, तद्यपि उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि माँ की अजानकारी में कुछ भी छिपा नहीं रह सकता। सब कुछ जान लेती हैं, समझ लेती हैं।

श्रीमाँ के भक्त उन पर कितनी आस्था और विश्वास करते हैं, इसका उदाहरण यतीन्द्रनाथ सेनगुप्त के जीवन की एक घटना से प्राप्त होता है। विश्वास, भक्ति और श्रद्धा से ही फल प्राप्त होता है। अगर गुरु के प्रति आस्था और विश्वास नहीं है तो साधना व्यर्थ है।

यतीन्द्रनाथ कलकत्ता के श्याम बाजार मुहल्ले में रहते थे। आप श्रीमाँ के एकनिष्ठ भक्त थे। माँ द्वारा निर्देशित क्रियाएँ करते और अक्सर उनका दर्शन करने के लिए पाण्डिचेरी जाते थे।

यतीन्द्र बाबू का एक भतीजा था जिसे वे बचपन से ही लाड़-प्यार में पालते आये हैं। एक तरह से यह बालक उनकी आँखों का तारा था । भतीजे के पेट में अल्सर था। अल्सर पीड़ा से उसे भयानक कष्ट होता था। इलाज जारी था, पर लाभ नहीं हो रहा था।

एक दिन की बात है। उनका भतीजा किसी दूसरे शहर में गया और वहाँ बुरी तरह पीड़ित हो गया। वहाँ के लोग उसे बेहोशी की हालत में कलकत्ता ले आये। तुरत अस्पताल पहुँचाया गया। जाँच के बाद डाक्टरों ने कहा— ''पेट का अल्सर फट गया है। बचना मुश्किल है। आपरेशन के बाद अगर आँतों को जोड़ने में सफलता मिली तो बच सकता है।''

लोगों ने डाक्टर की राय को स्वीकार कर लिया । आपरेशन के बाद जब डाक्टर थियेटर से बाहर निकले तब उनका चेहरा गंभीर था। उनकी बातों से ज्ञात हुआ कि आँत बिलकुल सड़ गया है। कोई आशा नहीं है।

डाक्टर की इस राय को सुनकर उपस्थित सभी लोग चिन्तित हो उठे। उन्हें इस बात की चिन्ता सताने लगी कि इस आघात को यतीन्द्र बाबू कैसे बर्दाश्त करेंगे? सभी इस बात से परिचित थे कि यतीन्द्र बाबू अपने प्राण से अधिक भतीजे को चाहते हैं।

लेकिन जब लोग घर पर आये तब यतीन्द्र बाबू ने अपने भतीजे के बारे में किसी से कोई प्रश्न नहीं किया। उनके चेहरे पर चिन्ता की लकीर नहीं थी। वे शान्त और निस्पृह रूप में घर का कामकाज कर रहे थे। लोग यह समझ नहीं पा रहे थे कि इतने बड़े हादसे के बाद वे पत्थर की तरह बुत क्यों हैं?

पता लगाने पर लोगों को ज्ञात हुआ कि आपने श्रीमाँ के नाम तार भेजा है— 'मेरे भतीजे को स्वस्थ कर दीजिये।' यतीन्द्र बाबू को दृढ़ विश्वास था कि माँ का आशीर्वाद प्राप्त होने के बाद संकट टल जायगा। उनका भतीजा स्वस्थ हो जायगा। श्रीमाँ में अपूर्व शक्ति है।

आगन्तुक लोगों ने इस बारे में उनसे कोई बात नहीं की। सभी उद्विग्न भाव से चले गये। दूसरे दिन समाचार मिला कि रोगी की हालत बिगड़ गयी है। नाड़ी का पता नहीं चल रहा है। मौत की साया धीरे-धीरे उतर रही है। जो लोग नर्सिंग होम में थे, सभी दौड़-धूप में व्यस्त हो गये। इधर घर पर यतीन्द्र बाबू बेफिक्र थे। यहाँ तक कि पहले की अपेक्षा अधिक प्रसन्न थे।

पाण्डिचेरी से तार का जवाब आ गया था। वहाँ से माँ ने केवल एक शब्द भेजा था—'आशीर्वाद' (ब्लेसिंग)। इस एक शब्द से यतीन्द्र बाबू इतने आश्वस्त हो गये, मानो उन्हें सब कुछ मिल गया। उनका विश्वास था कि अगर माँ किसी को 'ब्लेसिंग' देती हैं तो उसकी कोई हानि नहीं होती। यही वज़ह है कि यतीन्द्रनाथ प्रसन्न मुद्रा में थे।

परिवार के अधिकांश लोग भतीजे का अन्तिम दर्शन करने नर्सिंग होम में आने लगे। आनेवालों में अधिकतर लोग यतीन्द्रनाथ की आलोचना करते रहे। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि जब यतीन्द्र बाबू बेफिक्र हैं तब मंगल ही होगा। वे इतने हृदय-हीन नहीं हैं। अपने भतीजे को वे कितना चाहते हैं, इसे हम जानते हैं। जरूर कोई बात है।

मरीज को लगातार देखनेवाले आते रहे। कुछ देर बाद उस कमरे से निकलने वालों ने कहा—''मरीज को होश आ गया है। अब तो वह पहचानकर लोगों से बातें कर रहा है।''

यह बात सुनकर पुनः नये सिरे से भीड़ कमरे के भीतर जाने लगी। आलोचना करनेवालों के मुँह से निकला—''आश्चर्य! मिराकेल!!''

यहाँ तक कि डाक्टरों ने भी कहा—''यह मरीज हमारी चिकित्सा से अच्छा नहीं हुआ है। कैसे यह चमत्कार हुआ, इसे हम समझ नहीं पा रहे हैं।''

जब लोग घर वापस आये तब यतीन्द्रनाथ ने कहा—''माँ का आशीर्वाद पाने के बाद मैं यह समझ गया था कि खोका (मुन्ना) पर अब यमराज भी हाथ नहीं लगा सकते।''

दूसरे दिन सम्पूर्ण विवरण लिखकर उन्होंने माँ के नाम पत्र भेज दिया।

+ + + +

श्री दिलीप कुमार राय, प्रसिद्ध नाट्यकार द्विजेन्द्रलाल राय के सुपुत्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा नेहरूजी के स्नेहपात्र ही नहीं, सुभाष बाबू के घनिष्ठ मित्र थे।

योगिराज अरविन्द ने इन्हें एक पत्र में लिखा कि योग की दीक्षा तुम्हें माँ से लेनी पड़ेगी। दिलीप बाबू की इच्छा थी कि वे श्री अरविन्द से दीक्षा लेंगे। मन ही मन उन्हें गुरु के रूप में मान लिया था। अरविन्द के बुलावे पर उन्हें पाण्डिचेरी आना पड़ा। आते समय मार्ग में उन्होंने सोचा—जब मुझे माँ से दीक्षा लेनी है तब उन्हें परख लूँगा। मुझे दीक्षा देने की शक्ति उनमें है या नहीं; यह जाने बिना उनसे दीक्षा कदापि नहीं लूँगा।

यह अगस्त, सन् १९२८ की बात है। वे सीधे माँ के निकट आये और आते ही उन्होंने प्रश्न किया—''आपकी योग-शक्ति के बारे में श्री अरविन्द अनेक बातें कह चुके हैं। क्या आप अपना वास्तविक परिचय देंगी?''

यह एक प्रकार से चैलेंज था। माँ मुस्कराकर बोलीं—''मेरा वास्तविक परिचय जानना चाहते हो? वास्तविक परिचय से तुम्हारा क्या मतलब है?''

माँ के मुस्कराहट की बिना परवाह किये दिलीप कुमार एकटक उनकी ओर देखते रहे। मन ही मन सोचते रहे कि बिना योग-शक्ति का परिचय पाये कैसे वे माँ को अपना गुरु बनायेंगे? चाहे कुछ भी हो, पहले इन्हें आजमाना होगा।

अचानक दिलीप कुमार ने कहा—''देखिये माँ, बचपन में श्री रामकृष्ण परमहंस के चित्र के सामने बैठकर मैं ध्यान लगाता था। इससे मेरे मन में भक्ति का उद्रेक होने पर भी कभी कुछ अलौकिक अनुभव नहीं हुआ। न कोई प्रकाश देखा और न कोई ज्योति मूर्ति। दरअसल योग-शक्ति के बारे में मेरी कोई धारणा नहीं बनी। मैं यहाँ आया हूँ योग-शक्ति अर्जन करने। श्री अरविन्द ने कहा कि मैं आपसे दीक्षा लूँ। यही वजह है कि मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि मेरे मन में विश्वास उत्पन्न कर सकती हैं या नहीं?''

हँसकर माँ ने कहा—''प्रयत्न करूँगी। अच्छा, तुम तो होटल में ठहरे हो न?''

''जी, हाँ।''

''कब सोने जाते हो?''

''नौ बजे।''

''नौ बजे सोने जाते हो। सोने के पहले एक काम करना।''

दिलीप कुमार राय ने आग्रह के साथ पूछा—''उस वक्त क्या करना होगा?''

माँ ने हँसकर कहा—''कोई खास काम नहीं है। उस वक्त ध्यान लगाकर बैठ जाना। ध्यान में बैठकर अपने को मेरी ओर उन्मोचित करना। मैं यहाँ से तुम्हारी एकाग्रता बनाये रखूँगी। शायद कुछ महसूस कर सकते हो जिसकी जानकारी विज्ञान या तर्क के द्वारा प्राप्त नहीं कर सकोगे?''

माँ की बातें सुनकर दिलीप बाबू प्रसन्न हो उठे। उन्होंने अनुमान लगाया कि ध्यान के समय माँ अपनी शक्ति का प्रदर्शन करेंगी। आखिर मेरे चैलेंज को इन्होंने स्वीकार कर ही लिया। माँ से विदा लेकर वे होटल में चले आये। भोजनादि से निवृत्त होकर फर्श पर बैठ गये।

यद्यपि सर्दी का मौसम था, फिर भी पंखा चालू कर दिया। इसके बाद चारों ओर सतर्क भाव से देखने के बाद वे ध्यान पर बैठ गये। अपने मन को केन्द्रीभूत करने लगे। धीरे-धीरे उनकी अनुभूति उन्हें घेरने लगी। सारा शरीर लकड़ी की तरह सख्त हो गया। तमाम बदन पसीने से तर होता गया। दिल की धड़कन तेज हो गयी। एक अज्ञात भय से उनका शरीर काँपने लगा। उन्हें यह महसूस होने लगा कि अगर कुछ देर तक यही स्थिति रही तो मृत्यु अनिवार्य है। प्रयत्न करने पर भी वे इस कष्ट से मुक्ति नहीं पा रहेथे।

कब तक यह स्थिति रही, पता नहीं चला। ठीक इसी समय उन्हें एक साधक की सलाह याद आयी। उस साधक ने कहा—''अगर साधना या ध्यान में डर लगे तो माँ का स्मरण करना। तब देखोगे कि तुम्हारा सारा भय, सारी परेशानी दूर होती जाएगी।''

उस समय साधक की इस सलाह पर दिलीप बाबू को हँसी आयी थी। लेकिन इस वक्त न जाने क्यों उनका मन माँ को स्मरण करने के लिए उतावला हो उठा।

आश्चर्य! माँ का नाम लेते ही हृदय की धड़कन स्वाभाविक गति पर आ गयी। मस्तिष्क शांत होने लगा। गोकि शरीर पसीने से तर था, पर वह पहले की अपेक्षा और कड़ा हो गया था। उन्हें लगा कि अब और कड़ा होने पर सारा बदन टूट जायगा। इस कष्ट में भी वे यह अनुभव कर रहे थे कि अब मन से भय गायब होता जा रहा है। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि बाहर से कोई उन पर क्रिया कर रहा है। आज के पहले इस तरह का अनुभव उन्हें कभी नहीं हुआ था।

सिर के ऊपर पंखा तेजी से घूम रहा है, फिर भी पसीना बहता चला जा रहा है। शरीर की प्रत्येक माँसपेशी को कोई अज्ञात शक्ति जैसे मरोड़ रही है। वस्तुतः वे जाग्रत अवस्था में बैठे हैं। नींद में कोई सपना नहीं देख रहे हैं।

दूसरे दिन जब वे आश्रम में आये तब माँ ने पूछा—"मजे में हो?"

दिलीप बाबू इस प्रश्न का क्या जवाब देते? उन्हें लगा जैसे माँ कह रही हैं—"कल रात को मेरी योग-शक्ति का परिचय तुम्हें मिल गया था न?"

नहीं, माँ ने मौखिक रूप से कुछ नहीं कहा। दिलीप बाबू से रहा नहीं गया। बोले—"माँ।"

"बोलो।"

"कल मुझे आपकी योग-शक्ति का परिचय मिला था।"

"सच? किस तरह?" माँ हँस पड़ीं।

दिलीप कुमार ने कल रात की घटना का जिक्र करते हुए सारी राम कहानी सुनायी। उनकी बातें सुनकर माँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

बाद में माँ गंभीर होकर बोलीं—"मैं तुम्हें कष्ट देना नहीं चाहती थी। मगर तुमने जबरन मुझे बाध्य किया, अन्यथा मेरी शक्ति तुम्हें शांति और आनन्द देती। तुम अपने मन में अविश्वास लेकर जबर्दस्ती अड़ गये। भगवान् के ऊपर विश्वास रखना सीखो।"

दिलीप बाबू अपलक दृष्टि से माँ को देखने लगे। माँ ने आगे कहा—"अब नित्य ध्यान करते रहना। भविष्य में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा।"

इस घटना के बाद से दिलीप कुमार आजीवन माँ की कृपा प्राप्त करते रहे।

इसी प्रकार की एक घटना श्री चारुचन्द्र दत्त के साथ हुई थी। दत्त महाशय जवानी के आलम में श्री अरविन्द के सहयोगी और क्रान्तिकारी थे। अपने अनुभव के बारे में उन्होंने लिखा है—

"मैं आश्रम में माँ के निकट अपरिचित था। उनके भक्तों तथा अन्य लोगों की जबानी अनेक बातें सुनता रहा। परन्तु कभी इन सब बातों पर ध्यान नहीं दिया। यह सत्य है कि मैं उन्हें शक्ति-सम्पन्न महिला समझता रहा। इसके पहले मैं श्रीमती एनी वेसेण्ट और भगिनी निवेदिता के सम्पर्क में था। किन्तु उन्हें साष्टांग प्रणाम करने का प्रश्न ही नहीं था। पाण्डिचेरी की माँ के सामने जाने तक यह समस्या मेरे मन में उत्पन्न नहीं हुई। जब अचानक यह समस्या मेरे सामने आयी तब स्वयं प्रभु ने अपने आप हल कर दिया, अन्यथा प्रारंभ में ही योग-शिक्षा की समाप्ति हो जाती।

उन दिनों दर्शन के समय माँ सभी को आशीर्वाद देती थीं। एक दिन मैं दर्शक-मण्डली के मध्य खड़ा था। खड़े-खड़े मैंने सोचा— अगर मैं इस यूरोपीय महिला का चरण-स्पर्श न करूँ तो मेरा क्या होगा? तुरंत मैंने निश्चय किया कि कपट आचरण नहीं करूँगा। अगर चरण-स्पर्श करने की मेरी इच्छा नहीं होगी तो केवल दोनों हाथ उठाकर नमस्कार करूँगा। इसके बाद आश्रम से वापस जाकर माँ को पत्र लिखूँगा— 'श्रद्धास्पद माँ, आश्रम के नियमों का पालन करने में अपने को असमर्थ पाकर मैं पाण्डिचेरी से चला जा रहा हूँ।' लेकिन मेरे प्रभु ने मेरी रक्षा की। जिस क्षण मेरी निगाहें माँ के चरण-कमलों पर पड़ीं त्योंही मेरे अन्तर ने कहा—'अरे निर्बोध, इन चरणों को तू मानव का समझ रहा है?' तभी मैं उनके ज्योतिर्मय चरणों पर गिर पड़ा। तुरंत मेरे शरीर में तड़ित वेग से शक्तिशाली स्पन्दन दौड़ गयी और माँ का देवत्व प्रकट हो गया।"

+ \+ \+ \+

सन् १९७३ के प्रारंभ से माँ धीरे-धीरे अन्तराल में अधिक रहने लगी थीं। २१ मई, सन् १९७३ के दिन से उन्होंने बाहरी कामकाज करना बिलकुल बंद कर दिया। इस वर्ष महर्षि के जन्मदिन के अवसर पर यानी १५ अगस्त के सिलसिले में भक्तों की काफी भीड़ आने लगी। लोगों को यह कहते सुनकर कष्ट हुआ कि माँ तो अन्तराल में चली गयी हैं।

इस समस्या को सुनकर लोगों को इस बात की उत्सुकता होने लगी कि क्या हमें माँ का दर्शन प्राप्त होगा? माँ समाधि पर बैठी हैं। आश्रम के सेक्रेटरी तथा कर्मचारी इस बारे में ठीक से कुछ बता नहीं पा रहे हैं।

१४ अगस्त के दिन समाधि भंग करने के पश्चात् माँ ने पूछा—"आज कौन-सी तारीख है?"

माँ को बताया गया। तब माँ ने कहा—"१५ अगस्त को सायंकाल ६-१५ पर सभी को दर्शन प्राप्त होगा।"

उस दिन अपार जनसमूह ने माँ का दर्शन किया।

इसके बाद ६ नवम्बर तक पुनः समाधि में नहीं गयीं। १० नवम्बर को सहसा वे अस्वस्थ हो गयीं। १७ नवम्बर को ७ बजकर २५ मिनट पर अन्तिम श्वास लेने के बाद वे परमब्रह्म में लीन हो गयीं।

१८ नवम्बर सन् १६७३ के दिन आकाशवाणी के जरिये यह समाचार प्रसारित हुआ कि श्री अरविन्द आश्रम की श्रीमाँ ने महासमाधि ले ली है।

माँ के बारे में श्री अरविन्द ने कहा था—"मेरी सारी उपलब्धियाँ, निर्वाण और सब कुछ—केवल कहानी बनकर रह जाती— माँ ने उसे सही मार्ग दिखाया। उसे कार्य-रूप में परिणत किया। अगर वे न आतीं तो पूर्ण प्रकाश न होता। वे इस तरह की साधना और क्रिया तो बचपन से ही करती आ रही हैं।"

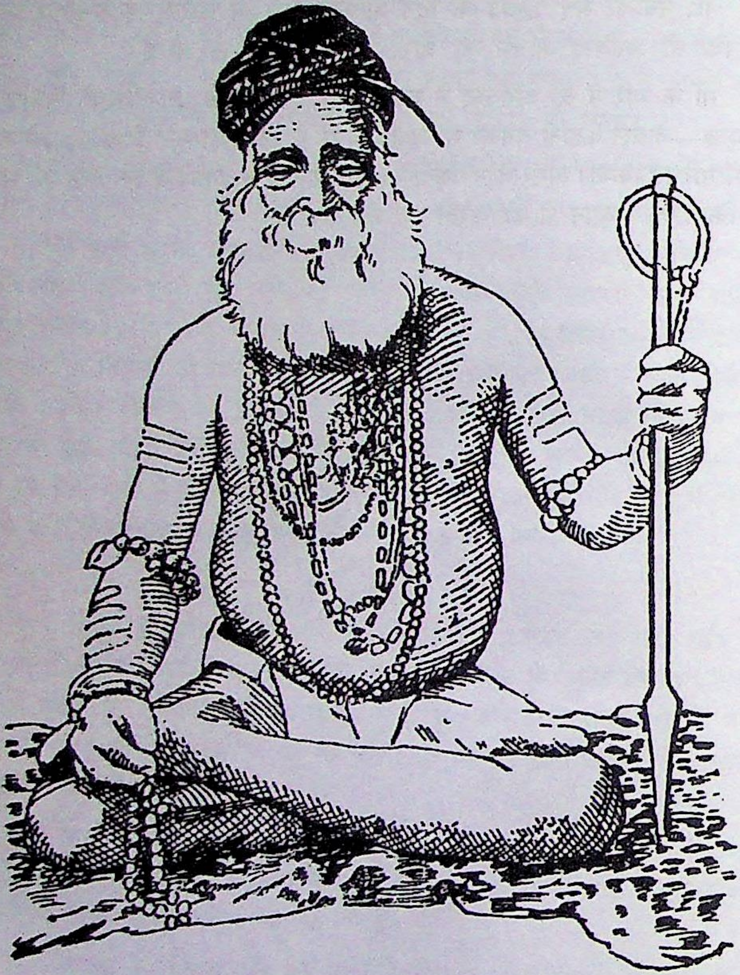

महानन्द गिरि

महानन्द गिरि

सर्वेयर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को चुपचाप बैठा देखकर उनके सहयोगी अमियदास ने पूछा— "बनर्जी बाबू, आज बड़े उदास दिखाई दे रहे हैं, क्या बात है?"

सुरेन्द्रनाथ ने एक बार अमिय बाबू की ओर देखा, फिर कहा—"आजकल मेरे ग्रह ठीक नहीं हैं। बड़ी परेशानी झेल रहा हूँ।"

"कैसी परेशानी?" अमिय बाबू ने पूछा।

सुरेन्द्रनाथ ने कहा—"पत्नी एक अर्से से बीमार चल रही थी। परसों से लड़की भी बीमार हो गयी है। पानी की तरह पैसा बह रहा है। दीदी और जीजा भी परेशान हैं।"

अमिय बाबू ने सुझाव दिया—"कुछ दिनों की छुट्टी ले लीजिए।"

एक गहरी श्वास लेकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—"पत्नी की बीमारी में ही सारी छुट्टियाँ समाप्त हो गयी हैं। अब लेने पर वेतन कट जायगा। फिर पता नहीं साहब देंगे या नहीं।"

शाम को सुरेन्द्रनाथ घर आये तो दीदी ने कहा—"बेबी को लेकर डाक्टर के पास चले जाओ। तीसरे पहर से वह बिलकुल शांत है।"

डाक्टर ने जाँच के बाद कहा—"दवा तो दे रहा हूँ, पर आश्वासन नहीं दे सकता। अगर रात कट गयी तो लड़की खतरे से बाहर हो जायेगी।"

सुरेन्द्रनाथ सारी बात समझ गये। राह चलते-चलते उन्हें याद आया कि विवाह के बाद जब वे प्रथम पुत्री के पिता बने तब दीदी ने कहा था—"पहली संतान बेटी होने पर पिता की लम्बी आयु होती है। इसका कन्यादान मैं करूँगी।"

दो परिवारों के बीच लड़की पलती रही। बुआ से अधिक प्यार पिता से मिला। बहुत खूबसूरत होने के कारण उसका नाम रखा गया— आभा। माँ केवल दूध पिलाती थी। शेष समय वह बुआ या पिता की गोद में रहती थी।

दूसरे दिन मुहल्लेवालों को मालूम हो गया कि सुरेन्द्रनाथ की इकलौती बेटी चल

बसी। अभी यह घाव सूखा भी नहीं था कि दो सप्ताह बाद पत्नी भी साथ छोड़ गयी। इन दो मौतों के कारण सुरेन्द्रनाथ की मानसिक दशा खराब हो गयी। लोग सांत्वना देते रहे, पर इसका कोई असर नहीं पड़ रहा था।

बचपन में माँ-बाप को खोने के बाद बड़ी दीदी ने उन्हें पाल पोसकर बड़ा किया। पढ़ाया-लिखाया और गरीब घराने की खूबसूरत लड़की से विवाह कराया। बी०ए० पास करने के बाद जीजाजी के प्रयत्नों से सप्लाई विभाग में काम करने लगे। सब कुछ ठीक चल रहा था और आज सहसा वज्रपात हो गया।

दीदी को बिना सूचना दिये एक दिन सुरेन्द्रनाथ घर से गायब हो गये। काशी, अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार, ऋषिकेश आदि तीर्थस्थानों का भ्रमण करते हुए गोदावरी तट के किनारे चले आये। इन सभी स्थानों में उन्हें ऐसा कोई नहीं मिला जिसके प्रति उनके मन में आस्था उत्पन्न हो। उद्भ्रांत की भाँति वे घूमते रहे। गोदावरी तट पर एक संन्यासी को देखते ही सुरेन्द्रनाथ आकर्षित हुए। हृदय की वेदना में कमी होने लगी। मन ही मन उन्होंने निश्चय किया कि इस संत से निवेदन करेंगे ताकि वे अपना शिष्य बना लें।

इस उद्देश्य से एक दिन जब उक्त संन्यासी अपनी कुटिया में ध्यानस्थ थे तब उनके चरणों पर अपना मस्तक रखते हुए सुरेन्द्रनाथ ने कहा—"महाराज, मुझे अपना सेवक बना लीजिए।"

संन्यासी ने कहा—"आज तक तुमने कोई सत्कर्म किया है जो चेला बनने चले आये? अगर चेला बनना है तो जाओ, पहले सत्कर्म करो।"

"आज्ञा कीजिए महाराज।"

संन्यासी ने कहा—"इस संसार में पीड़ित मनुष्यों की संख्या कम नहीं है। उन पीड़ितों की सेवा करो।"

"जो आज्ञा।" कहकर सुरेन्द्रनाथ कलकत्ता चले आये। अभावग्रस्त, लाचार, दुःखी मनुष्यों की सेवा करने लगे। उन्हें अस्पताल ले जाकर भर्ती करने लगे। निराश्रितों के सिरहाने बैठकर उनकी सेवा करते हुए वे गरीबों के मसीहा बन गये। धीरे-धीरे पास की सारी रकम समाप्त हो जाने पर वे कुली का काम करने लगे। उससे जो आमदनी होती, उससे अपाहिजों की सहायता करने लगे।

आहेरी टोला स्थित भगवान् लेन नामक गली सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के पिता भगवान् बनर्जी से प्रसिद्ध हुआ था। उसी वंश का संतान अब जूट मिल में कुली का काम कर रहा है, क्योंकि भावी गुरु का यही आदेश है।

सन् १८७० ई० की बात है, उन दिनों सुरेन्द्रनाथ बनर्जी २९ वर्ष के जवान थे।

एक जूट मिल में गुरु की आज्ञा से काम कर रहे थे। एक दिन जब वे मिल से बाहर निकले तो देखा— उनके सामने गुरुदेव खड़े हैं।

प्रणाम करते ही उन्होंने कहा—''सुरेन्द्र, तुम्हारी परीक्षा समाप्त हो गयी है। अब मेरे साथ चलो।''

इस आदेश को शिरोधार्य कर वे चुपचाप गुरु के पीछे-पीछे चल पड़े। एक अर्से बाद बंगाल, आसाम को पारकर दोनों व्यक्ति ब्रह्मा के घने जंगलों में प्रवेश कर गये। चारों ओर घने वृक्षों के कारण सूर्य का प्रकाश सामान्य रूप से छनकर आ रहा था। आसपास से हिंस्र पशुओं की आवाजें आ रही थीं। राह चलते अचानक रास्ते से साँप सरसराते गुजर जा रहे थे। यह सब देखकर सुरेन्द्रनाथ का हृदय काँपने लगा। भरोसा इतना था कि आगे-आगे गुरुदेव चल रहे थे।

ऊबड़-खाबड़ रास्ते से चलने में कष्ट हो रहा था। बगल की नदी में गिरने का भी डर था। दूसरी ओर ऊँची कगार थी। इस रास्ते से गुरुदेव आगे-आगे चल रहे थे। सुरेन्द्रनाथ पिछड़ जाने के भय से तेज कदमों से चलकर गुरु के समीप आ जाते रहे। काफी दूर आने के बाद एक घाटी के पास गुरुदेव ठहर गये। यहाँ जरा चारों ओर खुला क्षेत्र था। पास ही एक शिला पर बैठकर गुरुदेव ने कहा—''आज हम लोग काफी पैदल चले हैं। यहाँ थोड़ी देर विश्राम करेंगे।''

सुरेन्द्र स्वयं ही बुरी तरह थक गया था, पर इस भय से कुछ कह नहीं पा रहा था कि वृद्ध गुरुदेव बिना विश्राम किये चल रहे थे। उनके साहस को देखकर वह स्वयं चकित था। शायद अन्तर्यामी गुरुदेव उसके मन के भावों को समझ गये थे।

थोड़ी देर बाद सूर्यानन्द गिरि ने कहा—''भूख लग रही है, कुछ खा लिया जाय।''

सुरेन्द्र को भी भूख लगी थी, पर मुँह खोलकर कुछ कह नहीं पा रहे थे। अब सवाल यह है कि इस बियावान जंगल में खायेंगे क्या? आसपास फलों का कोई वृक्ष भी नहीं है। धीरे से सुरेन्द्र ने कहा—''इस जंगल में खाना कहाँ मिलेगा? किसी पेड़ में कोई फल भी नहीं है जो तोड़ लाऊँ।''

गुरु ने कहा—''बात तो ठीक कह रहे हो। यहाँ कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। एक काम करो। तुम जिस पत्थर पर बैठे हो, उसे हटाकर देखो। उसके नीचे कुछ है या नहीं?''

पत्थर हटाकर देखने के बाद सुरेन्द्र ने कहा—''हाँ, है। कन्दे की तरह कोई जड़ है।''

''लाओ देखूँ।''

शिष्य ने उस जड़ को उखाड़कर गुरु को दिखाया। उसे अच्छी तरह देखने के बाद सूर्यानन्द स्वामी ने कहा—''बहुत बढ़िया चीज है। तुम एक काम करो। इसे भून डालो।''

गुरु के आदेश पर सुरेन्द्र ने उस जड़ को भूनकर साफ किया। इसके बाद चोखा की तरह मीज दिया। अब उसे एक पत्ते पर रखकर गुरुदेव को देते हुए सुरेन्द्र ने कहा—"लीजिए गुरुदेव, सेवन कीजिये।"

गुरुदेव एक बार उस पदार्थ को, फिर शिष्य की ओर देखने के बाद 'शिवोहम-शिवोहम' कहते हुए थोड़ा-सा लेकर खा गये। शेष भाग सुरेन्द्र की ओर बढ़ाते हुए बोले—"लो, अब इसे तुम खा जाओ।"

सुरेन्द्र को खाने में हिचक होने लगी। पता नहीं, किस चीज की जड़ है। स्वयं गुरुदेव ने थोड़ा-सा खाया और बाकी अधिक भाग उसे दे दिया। डरते-डरते उसने थोड़ा-सा खाया।

खाने के साथ ही स्वाद से ज्ञात हुआ— यह तो अमृत है। जीवन में ऐसी स्वाददार चीज इसके पूर्व कभी चखा नहीं था। वे अपने लोभ को सम्हाल नहीं सके। शेष भाग को तुरंत मुँह में डाल लिया। लेकिन तुरंत उगलना पड़ा। उतना खा नहीं पाये। शिष्य की यह हालत देखकर गुरुदेव मुस्करा उठे।

गुरु ने कहा—"हम भोजन कर चुके। अब थोड़ी देर यहाँ विश्राम करेंगे ताकि थकान मिट जाय। क्या विचार है तुम्हारा?"

जड़ का चोखा खाने से सुरेन्द्र की भूख तथा थकान दोनों दूर हो गयी थी। वह गुरु की राय पर सहमत होते हुए एक पत्थर पर लेट गया। गुरु पास ही एक बड़े चट्टान पर सो गये।

अभी थोड़ी देर हुए झपकी लगी थी कि शिष्य की आँखें सहसा खुल गयीं। उसने देखा— सूर्य पेड़ की शिखा से उतरकर जड़ के समीप आ गये हैं। चारों ओर अंधकार बढ़ता जा रहा है। क्या आज की रात इस खुले चट्टानों पर गुजारनी होगी? भयभीत दृष्टि से उसने गुरु की ओर देखा। गुरु ध्यानमग्न हो चुपचाप पड़े रहे।

धीरे-धीरे तरोई की बीज की तरह अंधकार और घना हो गया। आसपास से जंगली जानवरों की आवाजें आने लगीं। भय से शिष्य की आँखें बड़ी-बड़ी हो गयीं। वह अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए भगवान् का नाम जपने लगा। जब भय की मात्रा और बढ़ गयी तब धीरे से गुरु के चरणों के समीप आकर बैठ गया।

ठीक इसी समय न जाने साँप या अन्य कोई जानवर पैरों के समीप से गुजर गया। उसके चलने की सरसराहट आवाज से सुरेन्द्रनाथ के मुँह से चीख निकलते बची। भय से जबान सूख गयी। वे पत्थर के ऊपर चढ़ गये। इधर गुरुदेव बेफिक्र होकर सोते रहे। भय-आतंक के चिह्न उनके चेहरे से प्रकट नहीं हो रहे थे। यह देखकर सुरेन्द्रनाथ मन ही मन इष्ट नाम जपने लगे।

धीरे-धीरे अंधकार काफी घना हो गया। हवा के झोंके खा बड़े-बड़े वृक्ष

वातावरण को और भी डरावना बना रहे थे। अचानक न जाने कौन-सा जानवर सुरेन्द्र के शरीर को स्पर्श करता हुआ उछलकर भाग गया। डर के कारण सुरेन्द्र की घिग्घी बँध गयी। तभी जंगली सियार एक स्वर से चिल्लाने लगे। अब सुरेन्द्र गुरु से सटकर बैठा।

ठीक इसी समय गुरुदेव ने कहा—"सुरेन्द्र, इस जंगल में बाघ हैं। यहाँ तुम्हारा रहना ठीक नहीं होगा।"

गुरु की बातें सुनकर सुरेन्द्रनाथ की परेशानी बढ़ गयी। दिन रहते अगर यह बात कहते तो कहीं आश्रय खोजा जाता। अब इस घनघोर अंधियारे में जहाँ अपना हाथ-पैर दिखाई नहीं दे रहा है, कहाँ जायगा? गुरुदेव कहना क्या चाहते हैं, यह भी समझना कठिन हो रहा था। इस जंगल में आश्रय मिलेगा कहाँ? कहीं गुरुदेव उसे डरपोक समझकर भयभीत तो नहीं कर रहे हैं?

तभी गुरुदेव ने कहा—"तुम यहाँ बहुत डर गये हो। रात भर के लिए तुम्हें सुरक्षित स्थान में जाकर रहना होगा। पुनः हम गन्तव्य स्थल की ओर चलेंगे। तुम एक काम करो। सामनेवाले जंगल की ओर बढ़ जाओ। कुछ दूर आगे जाने पर तुम्हें सुरक्षित आश्रयस्थल मिल जायेगा।"

सुरेन्द्र ने प्रश्न किया—"और आप कहाँ रहेंगे?"

गुरुदेव ने कहा—"मैं तो माँ की छत्रच्छाया में हूँ। मुझे कोई डर नहीं है। तुम बुरी तरह डर गये हो। तुम्हारे लिए यह जरूरी है कि तुम सुरक्षित स्थान में जाकर आराम की नींद ले सको।"

गुरु का आदेश मानकर भयभीत अवस्था में सुरेन्द्र सावधानी के साथ आगे बढ़ता गया। रह-रहकर पीछे दूर बैठे गुरुजी को देख लेता रहा। कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक जगह से हल्की रोशनी आती दिखाई दी। अब वे तेज कदमों से चलने लगे। धीरे-धीरे प्रकाश स्पष्ट हो उठा। दूर से लगा जैसे किसी झोपड़ी के बरामदे से यह रोशनी जंगल को आलोकित कर रही है।

मिट्टी की एक छोटी झोपड़ी। बाहर बरामदे में एक प्रदीप जल रहा था। प्रदीप की हल्की रोशनी में सुरेन्द्रनाथ ने देखा कि बरामदे में एक भैरवी खड़ी है। सिर पर जटा। श्यामवर्ण और पूर्ण युवती। सुरेन्द्रनाथ सहमकर खड़े हो गये। गौर से उन्होंने भैरवी की ओर देखा। उनके शांत चेहरे पर वात्सल्य का भाव था। इस आकृति को देखते ही सुरेन्द्रनाथ को अपनी माँ की याद आ गयी। उनकी माँ की शक्ल ऐसी थी। उन्होंने आगे बढ़कर कहा—"माँ।"

"कहो बेटा?"

"क्या रात भर के लिए आप मुझे अपनी कुटिया में आश्रय देंगी?"

"अवश्य दूँगी। आओ, भीतर आ जाओ।"

भैरवी से आश्वासन पाकर सुरेन्द्रनाथ का भय दूर हो गया। वे भैरवी के साथ कुटिया के भीतर आये। प्रदीप के प्रकाश में उन्होंने देखा— छोटी कुटिया जरूर है, पर काफी साफ सुथरा है। जमीन पर बिस्तर लगा था। उस ओर इशारा करते हुए भैरवी ने कहा—"बैठो, बेटा।"

संकोच के साथ सुरेन्द्रनाथ बिस्तर पर बैठे। इस कमरे के अलावा अन्य कोई कमरा दिखाई नहीं दे रहा था। उनके मन में प्रश्न उठा कि क्या इसी कमरे में मुझे इस जवान भैरवी के साथ सोना पड़ेगा? नीतिबोध का संस्कार उन्हें पीड़ा देने लगी।

इधर तब तक भैरवी कुटिया का दरवाजा बंद कर सुरेन्द्र के पास बिछौने पर आकर बैठ गयी। कुटिया के बाहर बाघ गरज रहे थे और दूर कहीं से हाथी के चिग्घाड़ने की आवाजें आ रही थीं। सुरेन्द्र का हृदय भय से काँपने लगा।

भैरवी ने कहा—"रात हो गयी है, अब तुम सो जाओ, बेटा।"

पैदल चलने के कारण सुरेन्द्रनाथ बुरी तरह थक गये थे। इस वक्त नींद के कारण आँखें बोझिल हो रही थीं। मगर एक समस्या उनके दिल को कुरेद रही थी। निर्जन कमरे में इस युवती के साथ एक ही बिस्तर पर कैसे रात गुजारेंगे? कहीं पतन हो गया तब साधना की क्या गति होगी?

"सो जाओ बेटा।" भैरवी ने पुनः कहा।

इधर सुरेन्द्रनाथ के मस्तिष्क में नाना प्रकार की बातें दौड़ रही थीं। अगर इस वक्त कुटिया के बाहर जाकर रात गुजारता हूँ तो निस्सन्देह बाघ का शिकार होना पड़ेगा।

सुरेन्द्रनाथ के मन का ऊहापोह भैरवी से छिपा नहीं रहा। वह बोली—"ऊहापोह करने की आवश्यकता नहीं है। जितना सोचोगे, उतना बढ़ता ही जायेगा। इस वक्त तुम थक गये हो, चुपचाप सो जाओ।"

अब सुरेन्द्रनाथ ने प्रश्न किया—"आप कहाँ सोयेंगी?"

"तुम्हारे पास। इधर सो जाऊँगी।"

"मेरे पास?"

"हाँ, माँ-बेटे का जो रिश्ता है। लड़के के पास सोने में माँ को हिचक कैसी?"

"यह संभव नहीं होगा माँ।"

"तब तो मुझे बाहर बरामदे में सोना पड़ेगा?" कहने के साथ ही भैरवी उठी और दरवाजे की ओर बढ़ गयी।

यह देखकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—"माँ।"

"कहो, बेटा?"

''आप बाहर मत जाइये। इस कमरे में ही रहिये।''

''ठीक है। जब तुम कह रहे हो तब कमरे में रह जाऊँगी।'' कहने के पश्चात् वे वापस लौटकर बिस्तर के एक ओर सो गयीं।

चिड़ियों के कोलाहल से सुरेन्द्रनाथ की आँखें खुलीं। वे चौंककर उठ बैठे। चकित दृष्टि से चारों ओर देखा— न भैरवी दिखाई दी और न बिस्तर। कुटिया भी न जाने कहाँ गायब है। वे तो जंगल के भीतर पड़े हुए हैं। चारों ओर बाघ के पदचिह्न साफ दिखाई दे रहे हैं। रात भर शायद बाघों का दल उनके चारों ओर घूमता रहा। क्या यह भी गुरुदेव की कोई लीला थी। एक भी रहस्य उनकी समझ में नहीं आ रहा था। धीरे-धीरे वे गुरुदेव के पास चले आये।

यहाँ आते ही गुरु सूर्यानन्द ने पूछा—''क्यों सुरेन्द्र, कल तुम्हें आश्रम मिल गया था न?''

यह बात सुनते ही सुरेन्द्रनाथ फफककर रो पड़ा। उसे समझते देर नहीं लगी कि यह घटना गुरु-कृपा के कारण हुई है।

उसकी यह दशा देखकर गुरु ने उसे पास खींचकर गले से लगाते हुए कहा—''तू बड़ा बेवकूफ है। इतने पास पाकर भी तू माँ को पहचान नहीं सका। बहरहाल दुःखी होने की जरूरत नहीं है। यह सब साधना करते समय देख लेगा।''

उसी जंगल में एक दिन स्वामी सूर्यानन्द गिरि ने सुरेन्द्रनाथ को संन्यास की दीक्षा दी और उनका नाम रखा— महानन्द गिरि।

गुरु के आदेश से वे कठोर-साधना में निमग्न हो गये। एक अर्से तक बटुक से साधना कराने के पश्चात् सन् १८८१ में गुरुदेव उन्हें साथ लेकर तारापीठ आये। यहाँ वामाखेपा के सिद्धासन में तपस्या करने का आदेश हुआ। अन्त में एक दिन वे सिद्ध योगी पुरुष बन गये। उस दिन उन्हें पुनः माँ का दर्शन हुआ। आनन्द से उनका मन तृप्त हो गया।

इस सिद्धि के पश्चात् वे कामाख्या में आये। यहाँ से केदारनाथ-बदरीनाथ गये। इसके आगे मानससरोवर जाने की तैयारी करने लगे। ठीक उसी समय गुरु का आदेश हुआ कि अब आगे जाने की जरूरत नहीं है। लोकालय चले जाओ। पीड़ित-मानव की सेवा करो। जनसाधारण का कल्याण करो।

गुरु का आदेश मानकर महानन्द गिरि महाराज हरिद्वार के आगे कनखल में आये। यहाँ १९०६ ई० में उन्होंने आश्रम बनवाया। आश्रम के निर्माण के बाद उन्होंने बारह वर्ष के लिए मौन धारण कर लिया। यहाँ उनकी अनेक योग विभूतियाँ प्रकट हुईं। गुरु के आदेशानुसार दुःखी और पीड़ित मानव की सेवा करने लगे। लोगों को यही उपदेश देते— नाम जपो। नाम के प्रभाव से सारा क्लेश दूर हो जायगा और अन्तकाल में मुक्ति

प्राप्त करोगे। भगवान् के नाम में अपार-शक्ति है। किसी को ताराशंकर, किसी को सीताराम या राधेश्याम मंत्र देते थे।

+ + + +

सन् १६०८ की घटना है। लुधियाना निवासी द्वारिकानाथ बोहरा की पत्नी का सहसा निधन हो गया। प्रौढ़ावस्था में पत्नी का न रहना बहुत खल जाता है। यहाँ तक कि मानसिक संतुलन खराब हो जाता है। द्वारिकानाथ अपनी पत्नी को बहुत चाहते थे। पत्नी भक्तिमती और सेवापरायण थी।

द्वारिकानाथ ने सोचा कि मृतात्मा की मुक्ति के लिए उसका चिता-भस्म हरिद्वार में विसर्जित करेंगे। सौभाग्य से इस वर्ष हरिद्वार में पूर्ण कुंभ का मेला लगा है। अपने इस निश्चय की सूचना उन्होंने अपने छोटे भाई को दी।

इस समाचार को सुनकर छोटे भाई की पत्नी कुलदीप ने निश्चय किया कि वह भी जेठजी के साथ कुंभ में जायगी। वहाँ देश के कोने-कोने से न जाने कितने साधु-संत आयेंगे। शायद उनके आशीर्वाद से मेरा भला हो जाय।

कुलदीप को इस बात का कष्ट था कि एक के बाद एक करके उसके आठ बच्चे हुए और सभी शिशु-अवस्था में मरते गये। किसी बच्चे के मुँह से 'माँ' शब्द सुनने का अवसर नहीं मिला। डाक्टरों के इलाज से भी कोई लाभ नजर नहीं आ रहा है। पति दीनानाथ इस गम को कड़वे घूँट की तरह पी जाते थे, पर कुलदीप की मानसिक अवस्था बिगड़ती जा रही थी।

जेठजी के साथ हरिद्वार जाने के बारे में जब उसने दीनानाथ से कहा तो पति ने इनकार नहीं किया। कम-से-कम इसके मन को शान्ति तो मिलेगी। यात्रा से मन भी बहल जायगा। उन्होंने अनुमति दे दी।

छोटी बहू भी हरिद्वार जायगी, सुनकर द्वारिकानाथ ने विरोध नहीं किया। वे कुलदीप की मानसिक स्थिति से अच्छी तरह परिचित थे। उन्होंने भी सोचा—भले ही कोई लाभ न हो, इस यात्रा से उसे मानसिक शान्ति मिल जायगी।

हरिद्वार आकर द्वारिकानाथ ने अपनी पत्नी का चिता-भस्म गंगा में प्रवाहित किया। इसके बाद भातृ-वधू को साथ लेकर वे कनखल, स्वर्गाश्रम और ऋषिकेश का दर्शन करने के पश्चात् पुनः हरिद्वार आये।

दोनों ही की आँखें उच्चकोटि के उस संत की तलाश में लगी रहीं जो इन्हें सांत्वना दे सके। कुंभ का अंतिम स्नान समाप्त हो गया। यात्री और संन्यासियों का दल अपने-अपने स्थान की ओर रवाना हो गये। चहल-पहल में कमी आ गयी। लेकिन इनकी इच्छा की पूर्ति नहीं हुई।

सहसा एक दिन काला चश्मा पहने एक संन्यासी की ओर कुलदीप आकर्षित हुई। उनके चरणों को स्पर्श करते ही वह फफककर रो पड़ी।

संत ने आशीर्वाद देते हुए कहा—''बेटी, तुम्हारे कष्ट का ज्ञान मुझे हो गया, पर इस दिशा में मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता। मेरा अनुमान है कि तुम्हें अपने वर्तमान कष्ट से मुक्ति पाने के लिए स्वामी महानन्द गिरि का आश्रय लेना पड़ेगा। वे इस कष्ट को अवश्य दूर कर देंगे।''

कुलदीप को आशा की किरण दिखाई दी। उसने उत्सुकता के साथ पूछा—''महाराज, वे कहाँ मिलेंगे?''

संत ने कहा—''वे नित्य भोर के समय यहाँ स्नान करने आते हैं। अपने को छिपाकर रखते हैं। बिलकुल सामान्य नागरिकों की तरह आते हैं।''

कुलदीप जरा चिन्तित हो उठी। बोली—''तब मैं उन्हें कैसे पहचान पाऊँगी? अगर आप उनका पता दे दें तो मैं उनकी सेवा में पहुँच जाऊँगी।''

संत ने कहा—''उनके आश्रम में जाने की जरूरत नहीं है। वे यहीं मिल जायेंगे। बस प्रयत्न करते रहना।''

कहने के साथ संतजी ऊपर सड़क पर जाकर न जाने कहाँ खो गये। उनके प्रबोध वचन से कुलदीप के मन में आशा का संचार हुआ। एक अपूर्व आनन्द उसके हृदय में हिलोरें लेने लगीं। अपने भसुर के साथ नित्य ब्राह्म मुहूर्त में गंगा तट पर आती और उस अपरिचित संत की तलाश में कस्तूरी मृग की तरह चारों ओर खोजती रही। इस प्रकार दिन गुजर रहे थे। निराशा के बादल हृदयाकाश में मँड़राने लगे।

कहा जाता है कि तीव्र इच्छा होने पर भक्तों की कामना ईश्वर पूरी करते हैं। एक दिन भोर के समय एक संत को सन्नाटे में स्नान करते देख कुलदीप ने अनुमान लगाया कि यह वही संत हैं जिनकी तलाश में वह परेशान है। वह हल्के कदमों से संत के पास गयी और उनके चरण-स्पर्श किये।

क्षण भर बाद संत ने कहा—''उठो बेटी। आज तुम्हारे जीवन के सभी अमंगल दूर हो गये। ईश्वर तुम्हारा मंगल करेंगे।''

इसके बाद संत महाशय पुनः गंगा में उतरे और नदी से एक पिंडुकी निकालकर कुलदीप को देते हुए बोले—''यही है तुम्हारा पुत्र। इसे पुत्र की भाँति मानकर नित्य इसकी पूजा और सेवा करना तब तुम गर्भवती हो जाओगी। इसके बाद सन्तान का जब जन्म होगा तब इस पिंडुकी को सोने से मढ़वाकर यहाँ गंगा में विसर्जित कर देना। ऐसा करने पर ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।''

इस आदेश को सुनकर कुलदीप ने आगे बढ़कर उस पिंडुकी को ले लिया। महानन्द गिरि ने पुनः कहा—''देखो बेटी, इस पिंडुकी को सोने से मढ़वाकर यहाँ की गंगा में विसर्जित करना होगा यानी हरिद्वार में।''

महानन्द गिरि के आदेश को कुलदीप बड़े ध्यान से सुन रही थी। इसके बाद अत्यन्त श्रद्धा के साथ उसने नमस्कार किया। द्वारिकानाथ ने भी चरण-स्पर्श किया। दोनों

हाथ उठाकर इन दोनों पुरुष-नारी को आशीर्वाद देकर महानन्द गिरि तेजी से कनखल की ओर रवाना हो गये। द्वारिकानाथ के साथ कुलदीप लुधियाना वापस आ गयी।

पत्नी की जबानी सारी घटना सुनकर दीनानाथ अविश्वास के साथ हँस पड़े। दरअसल पिछले १२-१४ वर्ष के भीतर वे आठ-आठ बच्चों को खोकर अविश्वासी बन गये थे। उन्हें ऐसे चमत्कारों के प्रति श्रद्धा नहीं थी।

पति के मजाक करने पर भी कुलदीप का विश्वास डगमगाया नहीं। वह अत्यन्त श्रद्धा के साथ पिंडुकी की पूजा करती रही। उसका फल उसे मिला। कुछ दिनों बाद वह गर्भवती हुई और दसवें माह के प्रारंभ में एक पुत्र की जननी बनी। इस घटना के कारण दीनानाथ के अविश्वासी मन में परिवर्तन हुआ। वे इधर बड़े भाई तथा पत्नी की भक्ति देखकर उपेक्षा पूर्वक मुस्कराते रहे, पर आज वे उसी सन्त की कृपा से पुत्र के पिता बन गये थे।

उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—''स्वामीजी ने पिंडुकी को सोने से मढ़ाने की आज्ञा दी है। कल ही मढ़वा दूँगा। इस हालत में तुम्हारा हरिद्वार जाना संभव नहीं है। मैं स्वयं जाकर इस पिंडुकी को प्रवाहित कर दूँगा।''

पति की आस्था देखकर कुलदीप को आत्मसंतोष हो गया। उसने स्वीकृति दे दी। दूसरे दिन स्वर्ण मंडित पिंडुकी लेकर दीनानाथ हरिद्वार रवाना हो गये।

दैवयोग से जिस समय वे पिंडुकी को गंगा में प्रवाह करने जा रहे थे, ठीक उसी समय उनके सामने एक संत दिखाई दिये जिनके रंग-रूप और आकृति के बारे में बड़े भाई तथा पत्नी ने उल्लेख किया था। दीनानाथ ने सोचा— यह महात्मा वही हैं जिनकी कृपा से वे पिता बने हैं। एक अज्ञात प्रेरणा से दीनानाथ उक्त महात्मा के चरणों पर लोट गये।

महात्मा ने उन्हें आशीर्वाद दिया। तभी दीनानाथ ने कहा—''महाराज, जब आपकी इतनी कृपा हुई है तब आपको मेरे घर चलकर बच्चे को आशीर्वाद देना पड़ेगा।''

महानन्द गिरि ने हँसकर कहा—''तुम्हारे यहाँ अवश्य जाऊँगा। बच्चे को आशीर्वाद भी दूँगा। लेकिन इस समय जाना संभव नहीं।''

दीनानाथ ने कहा—''आप अपनी सुविधा के अनुसार आइये महाराज। लेकिन आइये जरूर।''

''ठीक है बेटा। समय होते ही मैं आ जाऊँगा।''

महानन्द गिरि के इस आश्वासन को पाकर दीनानाथ घर की ओर रवाना हो गये।

इधर जिस दिन दीनानाथ रवाना हो रहे थे, उसी दिन उनके लुधियानावाले मकान में एक अद्‌भुत घटना हो गयी। दोतल्ले में स्थित अपने कमरे में दीनानाथ की पत्नी कुलदीप बच्चे को गोद में लेकर उसे थपकी दे रही थी। अचानक उसने देखा— सामने

महाराज महानन्द गिरि खड़े हैं। वह अवाक् होकर उन्हें देखने लगी। महाराज मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। उन्होंने आगे बढ़कर बच्चे को गोद में उठा लिया। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया। इसके बाद बच्चे को माँ की गोद में डाल दिया।

अब तक कुलदीप बेसुध रही। फिर झटपट बिस्तर से उतरकर महाराज के चरण-स्पर्श किये। इसके बाद अपने जेठ को बुलाने के लिए नीचे चली गयी। स्वामीजी आये हैं सुनकर द्वारिकानाथ तेजी से ऊपर आये और उन्होंने भी प्रणाम किया। आशीर्वाद देने के बाद महाराज ने कुशल-मंगल पूछा।

कुछ देर रुकने के बाद द्वारिकानाथ अपने भाई की तलाश में नीचे आये। दीनानाथ ही महाराज को यहाँ ले आया होगा। नीचे कहीं भी दीनानाथ का पता नहीं था। यहाँ तक कि सदर दरवाजा भी बन्द था। द्वारिकानाथ अजीब द्वन्द्व में फँस गये। दीनानाथ गया कहाँ और यहाँ महाराज आये कैसे। तब तक कुलदीप नीचे आ गयी थी। उससे द्वारिकानाथ ने पूछा—''दीनानाथ कहाँ है?''

कुलदीप ने कहा—''मुझे नहीं मालूम।''

''तुमसे दीनानाथ की भेंट नहीं हुई?''

''नहीं।''

''फिर महाराज किसके साथ आये?''

''मैं क्या बताऊँ?''

अब दोनों ही विस्मय के सागर में गोता खाने लगे। दोनों को रहस्य समझ में नहीं आ रहा था। दीनानाथ के अलावा यहाँ महाराज किसके साथ आये हैं? दरवाजा भी बन्द है,.आखिर वे किधर से भीतर आये। उन्होंने सोचा कि इस शंका का समाधान महाराज से किया जाय। यह सोचकर दोनों ऊपर आये तो देखा— स्वामीजी गायब हैं। अगर यह दृश्य एक आदमी देखता तो आँखों का भ्रम मान लिया जाता, पर यहाँ दो आदमियों ने एक साथ इस घटना को देखा। द्वारिकानाथ ने समझ लिया कि बच्चे को आशीर्वाद देने के लिए महाराज आये और चमत्कार दिखाकर चले गये। महाराज जहाँ खड़े थे, उस भूमि को स्पर्श कर दोनों ने प्रणाम किया।

दूसरे दिन दीनानाथ वापस लौटे और बड़े भाई से कहा—''हरिद्वार में महाराज से मुलाकात हुई थी। वे शीघ्र ही हमारे घर आयेंगे।''

द्वारिकानाथ ने मुस्कराकर कहा—''वे आये थे और मुन्ना को आशीर्वाद दे गये हैं।''

इतना कहकर उन्होंने सारी घटना का विवरण सुनाया। बड़े भाई की जबानी सारी बातें सुनकर दीनानाथ ने महाराज के नाम पर प्रणाम किया। इस घटना के कुछ दिनों बाद इस परिवार के लोगों ने महाराज से दीक्षा ले ली।

इसी तरह की एक घटना महानन्द गिरि के शिष्य प्रफुल्ल कुमार मित्र के साथ हुई थी। प्रफुल्ल बाबू की माँ काफी दिनों से अस्वस्थ थीं। मित्र महोदय का घर कलकत्ता से ३०-३२ किलोमीटर दूर चन्दननगर में है। प्रफुल्ल बाबू की माँ ने अनुभव किया कि उनके जाने के दिन आ गये हैं। उनका बचना अब मुश्किल है। उन्होंने अपने पुत्र से कहा कि एक बार महाराज का दर्शन करना चाहती हैं।

प्रफुल्ल बाबू इसके पूर्व माँ को महाराज के निकट ले जाना चाहते थे, परन्तु पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि महाराज इन दिनों तीर्थयात्रा के सिलसिले में भारत भ्रमण कर रहे हैं। सौभाग्य की बात है कि वे शीघ्र कलकत्ता आ रहे हैं।

निर्दिष्ट दिन को प्रफुल्ल बाबू हबड़ा स्टेशन पर हाजिर हुए और अपनी माँ की हालत का वर्णन करते हुए अपने यहाँ चलने की विनती की। महाराज ने कोई ध्यान नहीं दिया, बल्कि अन्य जितने लोग अभ्यर्थना के लिए आये थे, उन लोगों में व्यस्त रहे।

यह देखकर प्रफुल्ल बाबू का हृदय रो पड़ा। उन्होंने पुनः एक बार कहा—"माँ, आपके दर्शन के लिए व्याकुल हैं। उनका अंतिम समय उपस्थित है। गुरुदेव, केवल पाँच मिनट के लिए चलिये।"

महाराज ने कहा—"इस वक्त चन्दननगर जाना मेरे लिए असंभव है।"

इतना कहने के पश्चात् महाराज स्वागत के लिए आये भक्तों के साथ स्टेशन से बाहर चले गये।

प्रफुल्ल बाबू की आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी। गुरुदेव इतनी उपेक्षा करेंगे, ऐसा विश्वास उन्हें नहीं था। महानन्द गिरि पर सख्त नाराज होकर वे चन्दननगर वापस आये। जब महाराज नहीं आये तब माँ भी नहीं बचेगी। उनके दर्शन की आशा लेकर वह इस धराधाम से अब तक चली गयी होगी। इस तरह की जलपना-कल्पना करते हुए घर आये।

यहाँ आकर देखा— सभी निश्चिन्त हैं। तुरंत माँ के कमरे में गये तो देखा—जो माँ करवट नहीं ले पाती थी, वह खाट पर आराम से पैर फैलाये बैठी न जाने क्या खा रही है।

प्रफुल्ल को देखते ही माँ बिगड़ती हुई बोलीं—"अब तक कहाँ था? गया था महाराजजी को ले आने के लिए और अब आ रहा है? महाराजजी आये, मुझे आशीर्वाद दिया। उस समय सभी को पुकारती रही, पर कोई नहीं आया। किसी ने महाराज को प्रणाम तक नहीं किया।"

प्रफुल्ल बाबू चौंककर बोल उठे—"क्या सचमुच महाराजजी आये थे?"

"तो क्या मैं झूठ बोल रही हूँ?"

''नहीं माँ, तुम पहले की अपेक्षा इस वक्त ठीक दिखाई दे रही हो, इसीलिए पूछा।''

माँ ने कहा—''महाराजजी ने इस सिर पर हाथ रखकर जब आशीर्वाद दिया तभी से मेरी बीमारी दूर हो गयी। अब कोई कष्ट नहीं है।''

''कोई कष्ट नहीं है?''

''नहीं रे। केवल कुछ कमजोरी है। महाराज ने कहा कि डरने की कोई बात नहीं है। जल्द ठीक हो जाओगी।''

महाराज की इस कृपा को देखकर प्रफुल्ल की आँखें पुनः भर आयीं। महाराज की अयाचित कृपा इसके पूर्व भी वे प्राप्त कर चुके हैं। उन दिनों इन्हें दीक्षा नहीं दी गयी थी। दीक्षा लेने के लिए वे कनखल जा रहे थे। महाराज का बुलावा आया था। फीरोजपुर से लुधियाना तक आराम से आ गये। लुधियाना से दूसरी गाड़ी से हरिद्वार जाना है। उस समय शाम के पाँच बजे थे। दुर्भाग्य की बात यह हुई कि वे जिस गाड़ी पर सवार होने का प्रयत्न करते, उस पर चढ़ नहीं पाते थे। एक तो पहले से भीड़ भरी रहती है, दूसरे प्लेटफार्म पर अनेक मुसाफिर भरे हैं।

एक के बाद एक करके तीन गाड़ियाँ निकल गयीं, पर किसी में तिल रखने की जगह नहीं थी। अपनी असफलता से प्रफुल्ल बाबू बेचैन हो उठे। क्या उन्हें दीक्षा प्राप्त नहीं होगी? मन ही मन वे गुरुदेव को स्मरण करने लगे। पुनः एक गाड़ी आयी। उस समय रात के साढ़े ग्यारह बज चुके थे। इस गाड़ी में वे प्रत्येक डिब्बा देखने लगे। कुछ देर बाद गाड़ी ने सीटी बजायी और गार्ड ने हरी झण्डी हिलाना शुरू किया। तभी उनके सामने सर्वेण्ट वाला डिब्बा आया और वे अपनी छोटी पोटली लेकर सवार हो गये। इस डिब्बे में ५-६ रेलवे कर्मचारी एक बेंच पर बैठे हुए थे। इन्हें देखकर दो व्यक्ति उतरकर नीचे बैठ गये और वे उस पर जा बैठे। मन ही मन गुरुदेव को स्मरण करने लगे जिनकी कृपा से बैठने की जगह मिल गयी।

कुछ देर बाद बाकी चारों व्यक्ति बेंच से नीचे उतर गये और इन्हें आराम से सोने का आग्रह किया। दूसरे दिन सुबह नींद ख़ुलने पर उन्होंने देखा कि कमरे में ठसाठस लोग भर गये हैं, पर किसी ने उन्हें छेड़ा नहीं।

सुबह नौ बजे हरिद्वार स्टेशन पर गाड़ी रुकी। वहाँ से कनखल आये। तलाश करते हुए जब वे आश्रम के दरवाजे की समीप पहुँचे तब एक सज्जन ने पूछा—''क्या आप फीरोजपुर से आ रहे हैं?''

प्रफुल्ल बाबू ने सिर हिलाकर स्वीकार किया। उस व्यक्ति ने कहा—''तब देरी मत करिये। जल्द आइये। महाराज बुला रहे हैं।''

प्रफुल्ल बाबू अवाक् रह गये। वे आ गये हैं, यह बात गुरुदेव कैसे जान गये? पास जाकर उन्हें प्रणाम करने के बाद प्रफुल्ल बाबू ने कहा—"आज गाड़ी में बड़ी भीड़ रही। मैं तो चढ़ नहीं पा रहा था। किसी सूरत से सर्वेण्ट रूम में आया।"

महाराज ने कहा—"इससे क्या हुआ? तुम तो रात भर आराम से सोते हुए आये हो।"

यह बात सुनकर प्रफुल्ल बाबू चौंक उठे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि सामने बैठे महाराज सर्वज्ञ हैं। तुरंत उनके चरणों पर लोट गये।

+ + + +

दिसम्बर माह में हिमाचल-प्रदेश के गृह सचिव पुरुषोत्तम सिंह की पत्नी श्रीमती लावण्यप्रभा सिंह अपने तीन बच्चों को लेकर गुरुजी के आश्रम में निवास कर रही थीं। आश्रम के सामने स्थित तीन कमरोंवाले फ्लैट में वे ठहरी थीं जिस पर फूस का छाजन था। दिन के एक बजे न जाने कैसे फूस में आग लग गयी। हवा के कारण आग फैलती गयी। लावण्यप्रभा दौड़ी हुई आयी। इन्हीं कमरों में उसके बच्चे हैं।

माँ के चीखने पर दो बच्चे तो बाहर दौड़कर आ गये। छोटा बच्चा कमरे में रह गया। लावण्यप्रभा के चीखने पर भी कोई जलते हुए मकान में जाने का साहस नहीं कर पा रहा था। वह बाहर खड़ी जोर-जोर से रो रही थीं।

ठीक उसी समय महानन्द गिरि जलते हुए कमरे में गये और बच्चे को गोद में उठाकर बाहर लाये। आग की लपटों ने उन्हें स्पर्श तक नहीं किया।

महानन्दजी की भोजन-सामग्री अजीब थी। दोपहर को वे चरणामृत पीने के बाद एक गिलास बेलपत्तियों का रस पीते थे। रात को उबले आलू और भुनी हुई मूँगफलियाँ खाते थे। अन्न नहीं खाते थे। दरअसल मूँगफली का सेवन वे अधिक करते थे।

महानन्द गिरि के सभी शिष्यों को यह बात मालूम थी। लोग उनके लिए मूँगफलियों का बराबर प्रबंध करते रहे। एक दिन एक भक्त ने देखा— भण्डार में जितनी मूँगफली है, वह आज समाप्त हो जायगी। लेकिन कल के लिए इन्तजाम कैसे होगा?

भक्त महाशय तुरंत बाजार गये। सभी दुकानदारों के यहाँ तलाश करने पर भी मूँगफली नहीं मिली। वहाँ से लौटकर वह महाराज के कमरे में आया।

महाराज ने पूछा—"क्या बात है, परेशान क्यों हो?"

भक्त ने अपनी समस्या बतायी। महाराज ने कहा—"अब क्या होगा?"

बेचारा भक्त इस प्रश्न का क्या जवाब देता? तभी महाराज ने पूजाघर में ठक-ठक आवाज होते सुनकर उधर उत्सुकतावश देखने लगे। थोड़ी देर बाद भक्त की ओर

देखते हुए उन्होंने कहा—"तुम एक काम करो। अभी तुरंत हरिद्वार स्टेशन चले जाओ। पार्सलघर में पता लगाना कि मूँगफली का कोई पार्सल मेरे नाम से आया है या नहीं। अगर आया हो तो लेते आना।"

हरिद्वार स्टेशन आकर भक्त ने पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि आज ही महाराजजी के नाम एक पार्सल आया है। पार्सल लेकर वे सीधे आश्रम आये। पार्सल खोलने पर देखा गया— वह मूँगफलियों से भरा हुआ है।

इस प्रकार की अनेक कहानियाँ महानन्द गिरिजी के बारे में प्रचारित हैं। आपके यौगिक ऐश्वर्य को देखकर भक्त प्रभावित हो जाते थे। सन् १६२८ के १ अप्रैल को आप ब्रह्मलीन हुए थे। कनखल स्थित उनके आश्रम में आपके शिष्य और प्रशिष्य आज भी उनकी स्मृति की पूजा करते आ रहे हैं।

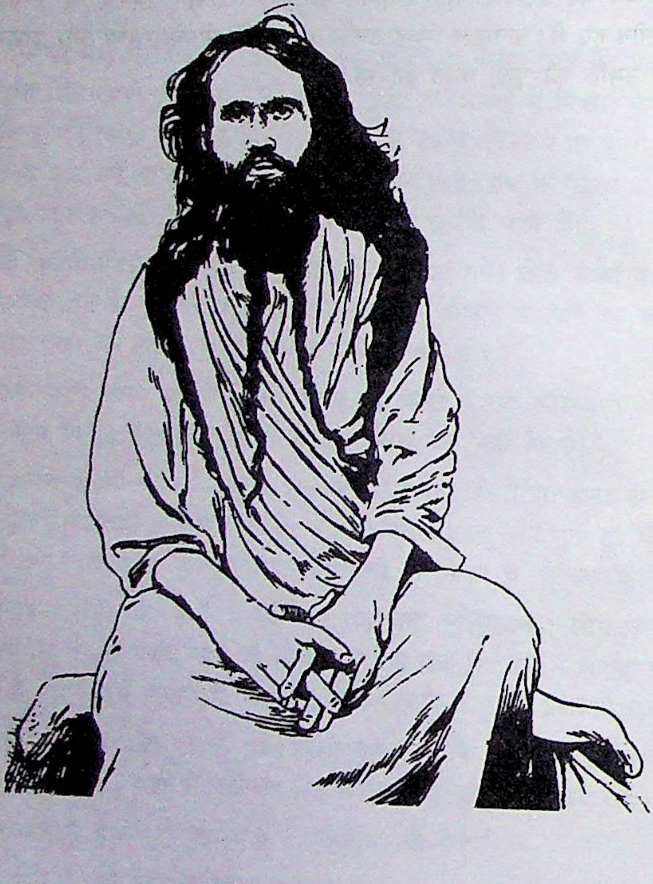

अन्नदा ठाकुर

अन्नदा ठाकुर

चटगाँव से भट्टाचार्य परिवार का एक बालक संस्कृत का अध्ययन करने के लिए काशी नगरी में आया। उसका उद्देश्य था कि संस्कृत भाषा में कृतित्व प्राप्त कर लेने पर वह अपनी जीविका का निर्वाह कर सकेगा। यहाँ उसकी बुआ की ससुराल थी। बुआ की स्नेह साया में रहते हुए वह अध्ययन करने लगा।

एक दिन फूफाजी ने कहा–''संस्कृत का अध्ययन कर रहे हो, ठीक है। लेकिन इससे तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। केवल मान–सम्मान अवश्य प्राप्त होगा। गाँव में जाकर चटशाला में छात्रों को शिक्षा दे सकते हो। बहुत होगा, कुल पुरोहित बन जाओगे। अगर तुम्हारा यही उद्देश्य है तो तुम यहाँ संस्कृत का अध्ययन कर सकते हो। काशी संस्कृत के पंडितों की नगरी है। नगर में वे सम्मानित माने जाते हैं, पर आर्थिक दृष्टि से वे बहुत पिछड़े हुए हैं। ले–देकर यहाँ एक ही कालेज है। अधिकतर पंडित अपने घरों में चटशाला खोलकर छात्रों को पढ़ाते हैं। इससे अच्छा है कि तुम वैद्यगी की शिक्षा लो।''

फूफाजी की बातें सुनकर अन्नदा का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। गरीब परिवार के बालक बहुत सचेतन होते हैं। वह यह समझ गया कि पुरोहित या अध्यापक बनने से कोई लाभ नहीं है। जिस शहर में अधिकांश मुसलमान रहते हैं, वहाँ संस्कृत–भाषा का क्या महत्त्व है। पुरोहितगिरी से जीविका चलाना कठिन होगा। वैद्यगी से जरूर आमदनी हो सकती है। यह सब सोचकर वह कलकत्ता चला आया। यहाँ उसके गाँव के कई भारत प्रसिद्ध कविराज प्रैक्टिस कर रहे थे। वह अपने परिचित दुर्गादास भट्टाचार्य के यहाँ आया और अपना उद्देश्य बताया।

सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने कहा–''बेटा, मेरे पास समय का बड़ा अभाव है, वर्ना तुम्हें शिक्षा देने में प्रसन्नता होती। तुम्हारे पिता मेरे घनिष्ठ मित्र हैं, पर आजकल रोगियों की इतनी भीड़ होती है कि मैं सभी का ठीक से निदान नहीं कर पाता। ऐसी हालत में तुम्हें क्या बता सकूँगा। मेरी राय मानो, विजयरत्न के पास चले जाओ। उनसे मेरा नाम बताते हुए सारी बातें कहना। वे तुम्हारी अवश्य मदद करेंगे।''

दुर्गादास के यहाँ से निराश होकर वह कविराज विजयरत्न के पास आया। उन्होंने कहा—''मैं भी भट्टाचार्य की तरह व्यस्त रहता हूँ, पर मैं तुम्हारी मदद अवश्य करूँगा।

एक नया आयुर्वेदिक कालेज खुला है। मैं पत्र लिख देता हूँ। वे तुम्हें ले लेंगें। कुछ दिनों बाद तुम्हें छात्रवृत्ति दिला दूँगा।''

इस आश्वासन से अन्नदा को प्रसन्नता हुई। कुछ दिनों बाद उसे कालेज में प्रवेश मिल गया और अगले माह से छात्रवृत्ति मिलने लगी। मन ही मन उसने भगवान् को धन्यवाद दिया। इस कालेज में उसके गाँव के कई छात्र अध्ययन कर रहे थे। इनमें गिरीशचन्द्र भट्टाचार्य से गहरी मित्रता हो गयी।

एक दिन गिरीशचन्द्र के अनुरोध पर वह उसके मित्र के घर १०० नं० आमाहर्स्ट स्ट्रीट में आया। सामने बैठक में एक युवक बैठा था। उस युवक को अन्नदा का परिचय देते हुए गिरीश ने कहा—''यतीन, आप मेरे मित्र अन्नदा हैं। मेरे सहपाठी और ब्राह्मण हैं। इन्हें प्रणाम करो।''

यतीन ने चरण-स्पर्श किया। इसके बाद गिरीश ने पुनः कहा—''आप हैं, यतीन्द्रनाथ बसु। काम्बेल में पढ़ते हैं। आपका छोटा भाई शचीन परमहंस रामकृष्णजी का शिष्य है। इन दिनों वह बदरीनाथ की यात्रा कर रहा है। पता नहीं, घर वापस आयेगा या नहीं। सुना है कि वह संन्यास-व्रत लेगा।''

इस सामान्य परिचय के बाद अन्नदा का इस घर में आना-जाना प्रारंभ हो गया। कुछ दिनों बाद पता चला कि शचीन बदरीनाथ की यात्रा से वापस आ गया है। गिरीश ने आकर कहा—''चलो, उससे मिल आया जाय। वह विचित्र लड़का है।''

शचीन के घर आने पर अन्नदा ने देखा— एक किशोर युवक मुण्डित-मस्तक, गेरुआ वस्त्र और गले में रुद्राक्ष की माला पहने सामने खड़ा है। गिरीश ने इन दोनों का आपस में परिचय कराने के बाद कहा—''शचीन, मेरे मित्र अन्नदा बाबू हस्तरेखा के विशेषज्ञ हैं। इन्हें अपना हाथ दिखाओ। इन्हें आज इसीलिए साथ ले आया हूँ ताकि तुम लोगों को अपने बारे में कुछ जानकारी हो जाय।''

शचीन का हाथ देखने के बाद अन्नदा ने कहा—''आपको विवाह करना पड़ेगा। आपका विवाहित जीवन सुखमय होगा।''

शचीन ने उपेक्षा की हँसी हँसते हुए कहा—''दीक्षा लेते समय मैंने श्री माँ (शारदा माता) के सामने प्रतिज्ञा की है कि मैं विवाह नहीं करूँगा।''

अन्नदा ने पुनः कहा—''आपको विवाह करना ही पड़ेगा। केवल यही नहीं, आप एक सफल चिकित्सक होंगे।''

शचीन ने कहा—''मेडिकल कालेज में भर्ती होने के लिए ही वापस आया हूँ। बाबूराम महाराज, महिम बाबू आदि लोगों ने यही आज्ञा दी है।''

''तुम डाक्टर बनोगे और विवाह भी करोगे।''

''बकवास है।'' कहता हुआ शचीन घर के भीतर चला गया। उपस्थित लोग मुस्कराकर चुप रहे।

यतीन के बाद शचीन से मित्रता होने के कारण अब अन्नदा अक्सर इस घर में अकेला आने लगा था। एक दिन जब वह शचीन के यहाँ से अपने घर जा रहा था तब एक विचित्र घटना हो गयी। राह चलते उसने देखा– चार महिलाएँ अपने सिर पर काली देवी की एक मूर्ति लेकर गंगा तट की ओर जा रही हैं। शायद विसर्जन देने जा रही हैं। देवी मूर्ति देखकर उसने दोनों हाथ उठाकर प्रणाम किया।

अन्नदा के पीछे-पीछे एक सज्जन आ रहे थे। बराबर में आकर उन्होंने अन्नदा को गौर से देखते हुए पूछा–''आप कहाँ से आ रहे हैं?''

''आमाहर्स्ट से। क्यों, क्या बात है?''

उक्त सज्जन ने पूछा–''क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ?''

''मेरा नाम अन्नदा भट्टाचार्य है। मैं आमाहर्स्ट स्थित सिद्धेश्वर बाबू के यहाँ कल से रहने लगा हूँ। मूल निवास चटगाँव में है। और कुछ?''

''अच्छा, यह बताइये कि अभी-अभी राह चलते आपने किसे देखकर प्रणाम किया?''

अन्नदा ने विस्मय के साथ कहा–''क्या आपने नहीं देखा? चार महिलाएँ श्यामा माँ की मूर्ति सिर पर उठाये विसर्जन के लिए जा रही थीं।''

''मुझे तो नहीं दिखाई दिया। चलिये, आगे बढ़कर यह भी देख लेते हैं।''

''यह आप क्या कह रहे हैं? इतने उजाले में आपको मूर्ति दिखाई नहीं दी?''

''संभव है, मैंने नहीं देखा, पर इस सड़क से कितने लोग आ-जा रहे हैं, इनमें से किसी से पूछ कर देखिये।''

अन्नदा ने आने-जानेवाले कई लोगों से इस बारे में पूछा, पर किसी ने यह नहीं बताया कि उन्होंने महिलाओं को मूर्ति ले जाते देखा है। एक ने तो यहाँ तक कह दिया कि आपका दिमाग खराब हो गया है। भला इस मौसम में कहीं काली-पूजा होती है? बौखलाकर अन्नदा तेजी से गंगा तट की ओर बढ़ गया। काफी दूर जाने पर भी कुछ नजर नहीं आया।

थका-माँदा डेरे पर आकर बैठ गया। कुछ देर बाद गिरीश ने आकर कहा–''जाओ, संध्या कर लो।''

इस आदेश को सुनकर वह चुपचाप पूजावाले कमरे में आकर संध्या (धार्मिक क्रिया) करने लगा। कमरे में गिरीश ने आकर धूप-दीप जलाया, फिर चला गया। इसी बीच अन्नदा का बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। उसकी आँखों के सामने माँ की अनेक लीलाएँ होने लगीं।

पता नहीं, यह सब दृश्य वह कब तक देखता रहा। होश आने पर पता चला कि वह पिछले आठ दिनों तक पागल-सा रहा। उसके सारे उपद्रवों को सहन करते हुए गिरीश उसकी सेवा करता रहा। अपने बारे में इस तरह की बातें सुनकर उसे आश्चर्य हुआ। आखिर ऐसा क्यों हुआ? मगर इस प्रश्न का जवाब उसे कौन देता?

गिरीश ने कहा—"अब तुम स्वस्थ हो गये हो। मेरी राय है कि कुछ दिनों के लिए गाँव चले जाओ। परिवार के बीच रहने से मन बहल जायगा। वहाँ माँ का स्नेह, पत्नी का प्यार मिलेगा।"

इस सलाह को मानकर अन्नदा चटगाँव चला आया। एक अर्से बाद उसे अपने निकट पाकर घर के लोग ही नहीं, पड़ोसी भी प्रसन्नता प्रकट करने लगे। कुछ दिनों बाद एक दिन उसके स्वप्न में एक संन्यासी आये और बोले—"तुम जल्द कलकत्ता रवाना हो जाओ। तुम्हें यह सामग्री दूँगा।" यह कहकर उन्होंने काली देवी की प्रतिमा दिखाई।

दूसरे दिन माँ से कलकत्ता जाने की चर्चा करने पर माँ ने विरोध करते हुए कहा—"अब कलकत्ता जाने की जरूरत नहीं। वैद्यगी पास कर चुके हो, गाँव में वैद्यगी करो।"

प्रतिवाद में अन्नदा कुछ कह नहीं सका। स्वप्न की बात कहने पर वे विश्वास नहीं करेंगी। उसे ज्ञात है कि शचीन के पिता सिद्धेश्वर बाबू उसके लिए कलकत्ता में वृहद रूप से दवा कम्पनी खोलने का प्रबंध कर चुके हैं। अखबारों में विज्ञापन दिया गया है। शहर में पोस्टर लगाये गये हैं और हैण्डबिल बाँटे गये हैं। ऐसी हालत में गाँव में रहकर क्या करेगा?

दूसरे दिन रात को स्वप्न में संन्यासी पुनः आया और बोला—"कल ही कलकत्ता चले जाओ वर्ना भयंकर दुर्घटना का सामना करना पड़ेगा।"

उसी रात को पड़ोसी के मकान में आग लगी। इस आग ने अन्नदा के बैठक और गोशाले को भस्म कर दिया। दूसरे दिन बिना किसी को कुछ कहे अन्नदा कलकत्ता चला आया। उसे अपने स्वप्न पर विश्वास हो गया था।

सिद्धेश्वर बाबू की पत्नी ने अन्नदा के थके चेहरे को देखकर कहा—"चलो ठाकुर, खा-पीकर आराम करो। काफी थके हुए मालूम पड़ते हो।"

भोजन के पश्चात् अन्नदा गहरी नींद में सो गया था। ठीक इसी समय वही पूर्व-परिचित संन्यासी स्वप्न में आकर बोला—"कल सबेरे गंगा तट पर जाकर अपना मुण्डन कराने के बाद स्नान करना।"

अन्नदा ने पूछा—"किस अपराध के कारण मुझे मुण्डन कराना पड़ेगा?"

''अपराध नहीं, आदेश है।''

''किसका आदेश है?''

''गुरुजी का।''

अन्नदा ने झल्लाकर कहा-''तेरी गुरुजी की ऐसी की तैसी। जाओ, अपने गुरुजी से कह दो कि वह अपना मुण्डन करवा लें। मैं किसी का आदेश मानने को तैयार नहीं।''

संन्यासी ने मृदु स्वर में काफी समझाया, पर अन्नदा ने जिद्द पकड़ ली कि वह कोई राय नहीं मानेगा। यहाँ तक कि दूसरे दिन मुण्डन कराने को कौन कहे, गंगा-स्नान करने भी नहीं गया। अनमने भाव से दिन भर घूमता रहा। रात को पुनः वही संन्यासी सपने में आया, उसे देखकर अन्नदा भयंकर रूप से क्रोधित हो उठा। उसका रौद्र-रूप देखकर संन्यासी नौ-दो ग्यारह हो गया।

थोड़ी देर बाद एक नये संन्यासी का आविर्भाव हुआ। इनकी शक्ल देखते ही अन्नदा चौंक उठा। ये संन्यासी थे- रानी रासमणि के आराध्य, स्वामी विवेकानन्द के देवता, ब्रह्मानन्द के पिता- परमहंस रामकृष्णजी। इन्हें देखते ही वह उठकर बैठ गया और प्रणाम किया। परमहंसजी ने हँसकर पूछा-''मुझे पहचान लिया?''

''जी हाँ।''

''मैंने उस संन्यासी को भेजा था। तुमने उसकी सलाह क्यों नहीं मानी?''

अन्नदा ने कहा-''उन्होंने स्पष्ट रूप से कोई कारण नहीं बताया।''

परमहंसजी ने कहा-''अब मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे ध्यान से सुनो। कल सबेरे मुण्डन करवाने के बाद गंगा-स्नान करना। दिन को शुद्ध आहार करके शुद्ध बिस्तर पर सोना। इसके बाद क्या करना होगा आकर बताऊँगा।''

इतना कहकर परमहंसजी चले गये। परमहंसजी के आदेशानुसार सबेरे अन्नदा ने मुण्डन कराया। स्नान-भोजन के बाद सो गया। रात को परमहंसजी स्वप्न में आये और कहा-''कल भोर के वक्त अपने भक्त मित्रों को लेकर इडेन गार्डेन जाना। वहाँ जिस स्थान पर पाकुड़ और नारियल का पेड़ एक साथ दिखाई दे, वहीं एक मूर्ति है। उसे ले आना। आते समय मौन रहना। जहाँ तक हो सके मूर्ति छिपाकर लाना। अब समय नहीं है। जल्द काम शुरू करो।''

परमहंसजी के जाते ही उसकी नींद खुल गयी। तुरंत शचीन के कमरे में आकर उसने सारी बातें कहने के पश्चात् चलने की तैयारी की। शचीन तुरंत घर से बाहर जाकर अपने दो मित्रों को बुला लाया। राह चलते शचीन ने कहा-''ठाकुर, अपने स्वप्नों के बारे में तुमने अब तक अनेक चण्डूखाने की गप सुनाई है। आज तुम्हारी परीक्षा होगी। अगर मूर्ति मिल गयी तो विश्वास हो जायगा, वर्ना हमेशा के लिए गप बंद।''

गवर्नर भवन पार करने के बाद लोग इडेन गार्डेन आये। चारों ओर नारियल के वृक्ष थे, पाकुड़ के साथ कहीं कोई नारियल का वृक्ष दिखाई नहीं दिया। लोग इसी असमंजस में थे कि अचानक शचीन ने कहा—"ठाकुर, वह देखो। तालाब के किनारे पाकुड़ और नारियल के पेड़ हैं। नारियल का पेड़ तो पाकुड़ के भीतर से निकला है।"

सभी उस स्थान पर आये और तेजी से चारों ओर सूखी पत्तियों को उलटने लगे, पर कहीं भी मूर्ति नहीं मिली। बाद में शचीन के एक मित्र के दिमाग में यह बात आयी कि कहीं जड़ के पास पानी में मूर्ति न हो। वह तुरंत पानी में उतर गया। लकड़ी से कोंचते हुए तलाश करने पर पानी के भीतर मूर्ति मिल गयी। काले पत्थर की एक कालीजी की मूर्ति थी। लगभग एक फुट से कुछ अधिक ऊँची थी। एक ही पत्थर से सम्पूर्ण मूर्ति निर्मित थी। सिर पर मुकुट, गले में मुण्डमाल, चतुर्भुज, चरणों के नीचे शिव मूर्ति थी। आँखों में न जाने कौन-सा रत्न था जो चमक रहा था।

स्वप्न में दिये गये आदेशानुसार मूर्ति को छिपाकर मौन रूप में सभी घर ले आये। शचीन की माँ ने कहा—"तुम लोग मूर्ति की सफाई कर डालो। मैं पूजा की सामग्री लेकर आती हूँ। इस घर में कालीमाता का पदार्पण हुआ है, यह खुशी की बात है।"

धूमधाम से पूजा हुई। आसपास के लोगों की भीड़ दर्शन करने आयी। रात को भोजन करने के बाद अन्नदा सो गया। आधी रात के बाद उसके स्वप्न में कालीमाता ने आकर पूछा—"तुम मुझे यहाँ क्यों ले आये?"

अन्नदा ने कहा—"परमहंस रामकृष्णदेव की आज्ञा से।"

कालीमाता ने कहा—"मुझे इस घर में मत रखो। कल गंगा में ले जाकर विसर्जन कर देना।"

"ऐसी आज्ञा न दें। मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

"अगर तुमने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया तो अमंगल होगा। निर्वंश हो जाओगे?"

"ऐसी आज्ञा क्यों दे रही हैं, माँ? मैं आपकी पूजा श्रद्धा-भक्ति से करूँगा।"

"मैं एक जगह रहकर पूजा नहीं चाहती। सभी भक्तों के पास रहना चाहती हूँ। मुझे कल विसर्जन कर देना। यही मेरा अंतिम आदेश है।" इतना कहकर कालीमाता चली गयीं। तभी अन्नदा की नींद उचट गयी। देवी के इस आदेश से उसका मन खिन्न हो गया।

सबेरे जब उसने घर के लोगों को अपने स्वप्न का समाचार सुनाया तो सभी सन्न रह गये। इतने उत्साह से देवी को घर ले आया गया और अब विसर्जित करना पड़ेगा? अच्छा तमाशा है। विसर्जन के विरुद्ध जनमत हो गया।

अन्नदा ने कहा— "कृपया आप लोग बाधा न दें। माँ जब नहीं रहना चाहतीं तब कोई उपाय नहीं है। मुमकिन है कि इस घर में कोई आफत आये या मैं निर्वंश हो जाऊँ। देवी ने स्वप्नादेश में जो आज्ञा दे गयीं, मैं उसका पालन करने के लिए विवश हूँ।"

यह बात घर के बाहर फैल गयी। दर्शन करनेवालों का ताँता लग गया। धूप, दीप, माला से मूर्ति का अभिषेक होने लगा। यतीन ने कहा—"मेरा एक विचार है। मूर्ति को विसर्जित करने के पहले एक फोटो ले लिया जाय। जो लोग देवी के उपासक हैं, उन्हें पूजा करने के लिए एक-एक प्रिण्ट दे दिया जायगा।"

यह सुझाव पसन्द आया और तुरंत मूर्ति की फोटो ली गयी। इसके बाद अन्नदा सिर पर मूर्ति रखकर गंगा की ओर चल पड़ा। मार्ग में 'जय कालीमाता की जय' ध्वनि के साथ लोग गंगा तट पर आये और एक नाव पर मूर्ति रखकर बीच गंगा में उसे विसर्जित कर दिया।

मूर्ति को प्रवाह करने के साथ ही अन्नदा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसकी यह हालत देखकर साथ के लोग चिन्तित हो उठे। किसी प्रकार उसे घर तक ले आये।

इस घटना के कुछ दिनों बाद शचीन के पिता सिद्धेश्वर बाबू ने कहा—"तुम कविराजी करोगे जानकर मैंने हजारों रुपये विज्ञापन, पोस्टर आदि में खर्च किया। अब काम पर लग जाओ ताकि दो पैसा घर में आये।"

अन्नदा ने कहा—"बाबूजी, आपका कहना ठीक है, पर मैं जब दुकान पर जाकर बैठता हूँ तब वहाँ मन नहीं लगता। दिल धड़कने लगता है और घबराहट सी महसूस होती है।"

अब सिद्धेश्वर बाबू नाराज होकर बोले—"वास्तव में तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। व्यर्थ में तुम्हारे पीछे इतने रुपये बर्बाद करना पड़ा। पता नहीं, तुम्हारे भाग्य में क्या लिखा है।" इतना कहकर वे तेजी से भीतर चले गये।

सिद्धेश्वर बाबू बराबर उसे अपने पुत्र की तरह प्यार करते आये हैं। उन्हें इस तरह नाराज होते देख अन्नदा ने सोचा— अब यहाँ रहना उचित नहीं है। पता नहीं, कब चले जाने की आज्ञा दें। इससे अच्छा है कि समय रहते स्वयं ही हट जाय।

यह अवसर भी उसे शीघ्र मिल गया। उसका पूर्वपरिचित मित्र भूपेन एक दिन आया और कहा—"ठाकुर, तुमसे जो गीत कुछ दिन पहले माँगकर ले गया था, उसकी स्वरलिपि बनाकर हरिभूषण इस ढंग से गाता है, उसे सुनकर स्वयं झूम उठोगे।"

भूपेन की बातों से अन्नदा को कौतूहल हुआ। दोनों मित्र तुरंत वृन्दावन मल्लिक लेन की ओर रवाना हो गये। भूपेन ने बातचीत के सिलसिले में कहा—"तीन भाई हैं।

मेरे गाँव के निवासी हैं। बड़ा भाई गाँव पर रहता है बाकी दोनों यहाँ कहीं नौकरी करते हैं। बड़े खुशदिल हैं। हरिभूषण का कण्ठ बहुत ही मीठा है।''

इसी तरह बातचीत करते हुए दोनों हरिभूषण के घर आये। उसका गाना सुनकर अन्नदा मुग्ध हो उठा। उनकी सरलता से वह इतना प्रभावित हुआ कि कुछ दिनों बाद यहाँ आकर रहने लगा। भूपेन ने बातचीत के सिलसिले में कहा था—''उनकी एक बहन है। लगभग १५-१६ वर्ष की। इन लोगों के पास इतनी रकम नहीं है कि उसका विवाह कर सकें। तुम तो अब तक २०-२२ लड़कियों का विवाह करा चुके हो। अगर इनकी सहायता कर दो तो सभी भाई आजीवन कृतज्ञ रहेंगे।''

हरिभूषण की बहन की चर्चा अन्नदा ने शचीन से भी की। शचीन ने कहा—''ठाकुर, एक बार इनके गाँव जाकर इनकी बहन को देख आओ। अगर लड़की कायदे की होगी तो अपने मित्रों से चर्चा करूँगा।''

अन्नदा को यह सुझाव पसन्द आया। दूसरे दिन वह मजिलपुर चला गया। कलकत्ता वापस आने पर अन्नदा की जबानी हरिभूषण की बहन की प्रशंसा सुनकर शचीन की माँ ने उसे यहाँ ले आने का आदेश दिया। कलकत्ते में रहने पर वर पक्ष के लोगों को देखने तथा बात करने की सुविधा होगी।

कुछ ही दिनों बाद सरला को लोग कलकत्ता ले आये। उसे शचीन के घर ठहराया गया। उसकी चाल-चलन और कर्मठता देखकर घर के सभी लोग प्रसन्न हो गये। अब सरला को देखने के लिए यदा-कदा लोग आने लगे। इस प्रकार कुछ दिन गुजर जाने के बाद एक दिन अन्नदा ने सपना देखा। उसके स्वप्न में परमहंसजी ने आकर कहा—''सरला पूर्वजन्म में शचीन की पत्नी थी। यह बात तुम किसी से मत कहना।''

अन्नदा को ज्ञात था कि शचीन विवाह नहीं करेगा। अब इस समाचार को सुनकर उसे कौतूहल हुआ कि उसकी पूर्वजन्म की पत्नी इस जन्म में किसकी पत्नी बनती है। सरला को कुछ लोग देखने आये, पर किसी से बात पक्की नहीं हो सकी।

एक दिन मजाक में अन्नदा ने शचीन का मन टटोलने के लिए कहा—''शचीन, तुम न हो तो सरला से विवाह कर लो। अगर अविवाहित रूप में गाँव वापस जायगी तो संभव है कि वह आत्महत्या कर ले। बंगाल की कितनी लड़कियाँ इस प्रकार आत्महत्या कर रही हैं। तुम्हारे माध्यम से अगर एक लड़की का उद्धार हो जाय तो बड़ा पुण्य कार्य होगा।''

शचीन को यह सुझाव पसन्द आ गया। उसने शारदा माता को पत्र लिखा। वहाँ से उत्तर आया—''बेटा, अपना जीवन देकर अगर किसी का जीवन सँवारा जा सके तो यह जीवन सफल हो जाता है। यह तो शुभ कार्य है। मैं आज्ञा दे रही हूँ, तुम विवाह करो। तुम्हारा विवाहित जीवन आनन्दमय होगा।''

इस आशीर्वाद को पाने के बाद २१ वर्षीय शचीन का विवाह १५ वर्षीय सरला के साथ हो गया। शचीन के विवाह के १० माह बाद तक अन्नदा हरिभूषण के मकान में था। यहाँ स्वप्न में अक्सर परमहंसजी आते थे। उनके आदेशानुसार अन्नदा पैदल ही दक्षिणेश्वर जाकर कालीमाता का दर्शन करता था। अन्नदा अक्सर दक्षिणेश्वर जाता है, इस बात की जानकारी किसी को नहीं थी।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन शचीन ने कहा—"ठाकुर, मेरा विचार है कि तुम कम्पाउण्डरी पास कर लो। कुछ ही दिनों में मैं अपनी शिक्षा पूरी कर लूँगा। दवाखाना खोलकर हम दोनों एक साथ काम करेंगे। तुम्हारी कविराजीवाली दवाओं का भी हम उपयोग करेंगे। अब हमें अर्थोपार्जन की ओर ध्यान देना पड़ेगा।"

अन्नदा को यह प्रस्ताव पसन्द आया। लेकिन भवितव्य की जानकारी उसे नहीं थी। उसी रात को स्वप्न में आकर रामकृष्णजी ने कहा—"कम्पाउण्डरी का पचड़ा छोड़ दो। तुम्हें शीघ्र ही लक्ष्मणझूला तपस्या के लिए जाना पड़ेगा।"

इस आज्ञा को सुनकर वह चौंक पड़ा। लक्ष्मणझूला है कहाँ, इसकी जानकारी उसे नहीं थी। फिर वहाँ तक जाने के लिए राह खर्च की समस्या थी। उसने कहा—"मेरे पास इतनी रकम कहाँ है? फिर वहाँ कहाँ रहूँगा, क्या खाऊँगा?"

रामकृष्णजी ने कहा—"इन सब बातों की चिन्ता छोड़ो। सारा इन्तजाम हो जायगा। जल्द ही तुम्हें यहाँ से जाना है।"

परमहंसजी के इस आदेश को सुनकर वह सन्न रह गया। यात्रा का व्यय कौन देगा ही समस्या नहीं थी, उस अपरिचित स्थान में कैसे तपस्या करेगा? रहने का स्थान और भोजन की समस्या कैसे हल होगी, समझ में नहीं आ रहा था।

दूसरे दिन यही समाचार देने के लिए वह शचीन के यहाँ आया तो उसे देखते ही शचीन की माँ ने कहा—"ठाकुर, चरका की हालत बहुत खराब है। पता नहीं, वह बचेगा या नहीं।"

यह समाचार सुनकर वह घबड़ा गया। शचीन के छोटे भाई का नाम चरका है। दौड़कर ऊपर आया तो देखा— उसकी टट्टी में खून, पीप के साथ माँस के टुकड़े निकल रहे हैं। डॉक्टर इसे रोकने में असमर्थ हो गये हैं। यतीन बाबू की पत्नी विमला देवी ने कहा—"ठाकुर, चरका को बचाने के लिए कुछ करो वर्ना लोग कहेंगे कि काली माता का पदार्पण इस घर के लिए अपशकुन हुआ है। सभी तुम्हारी आलोचना करेंगे।"

यह एक ऐसा आक्षेप था जिसका जवाब अन्नदा को देते नहीं बना। वह एकटक मृतप्राय चरका की ओर देखता रहा। फिर न जाने क्या सोचकर ध्यान लगाकर आद्या देवी का स्तोत्र पाठ करने लगा।

डेरे पर जब लौटा तब मन खिन्न था। कहीं सिद्धेश्वर बाबू और उनके लड़कों के मन में यह बात बैठ गयी तो कलकत्ता में उसका रहना कठिन हो जायगा। रात को सपने में उसके सामने एक वृद्धा महिला आयीं। उनके केश चारों ओर बिखरे हुए थे। अन्नदा की ओर तीव्र दृष्टि से देखती हुई बोलीं—''मुझे जिस तरह रख छोड़ा है, उसी तरह की सजा मैंने दी है। कहती थी कि मेरी पूजा करेगी और इतना अनादर? कूड़ेदानी में रख दिया है। इसका फल कौन भोगेगा?'' इतना कहती हुई वह रमणी कमरे के बाहर चली गयी।

रमणी के बाहर जाते ही अन्नदा की नींद उचट गयी। उस समय भोर के चार बजे थे। उसने सोचा— यह स्वप्न अमूलक नहीं है। जरूर इसके पीछे कोई रहस्य है। उजाला होते ही वह शचीन के घर आया और अपने स्वप्न की चर्चा की।

माँ ने कहा—''अपनी जानकारी में मैंने कालीमाता की अवज्ञा नहीं की है। मैंने उनके दो फोटो लिये थे। इनमें से एक को मढ़वाकर यतीन ने अपने कमरे में रखा है। दूसरा कहाँ, पता नहीं चल रहा है।''

अन्नदा ने कहा—''शायद वही फोटो किसी ऐस स्थान में होगा जहाँ नहीं रखना चाहिए। जल्द तलाश कीजिए।''

घर के सभी लोग उस फोटो की तलाश में लग गये। काफी देर बाद चरका के कमरे में, कपड़ों के ढेर के नीचे मिला। फोटो के चारों ओर दीमक लग गये थे। यह देखकर अन्नदा ने कहा—''इसे बाजार ले जाकर तुरंत फ्रेम में मढ़वा लीजिए। इसके बाद नित्य धूप-दीप दिखाकर पूजा कीजियेगा।''

जिस दिन से अन्नदा के आदेश का पालन होने लगा, उसी दिन से चरका स्वस्थ होने लगा। परमहंसजी के आदेश को अन्नदा भूल गया था। इसी बीच शचीन के मझले भाई धीरेन्द्र बसु अम्बाला से आ गये। बातचीत के सिलसिले में उनसे लक्ष्मणझूला की चर्चा हुई। उनसे काफी जानकारियाँ मिलीं।

कई दिनों बाद परमहंसजी पुनः स्वप्न में आकर बोले—''यह याद रखना कि झूलन पूर्णिमा के दिन तुम्हें लक्ष्मणझूला में रहना है। उस दिन जो आदेश दिया जायगा, उसका पालन करना होगा तभी तुम्हारा जीवन सार्थक होगा। इस वर्ष तुम्हें काफी संघर्ष करना होगा।''

कुछ दिनों बाद अन्नदा को ज्ञात हुआ कि धीरेन्द्र बाबू की छुट्टियाँ समाप्त होनेवाली हैं। वे शीघ्र ही वापस जानेवाले हैं। यह बात सुनकर वह चिन्तित हो उठा। शचीन के जरिये माताजी को यह बात मालूम हुई तो वे कह उठी—''ठाकुर का सारा खर्च मैं दे दूँगी। वे धीरेन्द्र के साथ चले जायँ।''

तीसरे दिन अन्नदा ने धीरेन्द्र से कहा—"मैं सीधे लक्ष्मणझूला न जाकर मथुरा-वृन्दावन दर्शन करते हुए जाना चाहता हूँ।"

धीरेन्द्र ने कहा—"ठीक है।"

यात्रा के दिन विदा देते समय परिवार के सभी लोग रो पड़े। उन्हें लगा जैसे अब अन्नदा कभी वापस नहीं आयेगा। स्टेशन पहुँचानेवालों की अपार भीड़ थी। लोगों का प्रेम देखकर अन्नदा की आँखें छलछला आयीं।

हाथरस स्टेशन पर गाड़ी बदलकर अन्नदा मथुरा आ गया। यमुना में स्नान करते वक्त भिखारियों की आपस में हो रही बातों से उसे पता चला कि इनमें से कई लोगों को दो दिनों से मथुरानाथ का प्रसाद नहीं मिला है। बेचारे भूखे हैं। स्नान करने के पश्चात् अन्नदा घाट पर उन भिखारियों को आठ आनेवाले सिक्के बाँट दिये। भिखमंगों के दल ने चकित दृष्टि से उसकी ओर देखा। इस तरह कोई भक्त कभी भिखमंगों को पैसे नहीं दिया था। ठीक इसी समय एक वैष्णव करताल बजाते हुए पास आया। अन्नदा ने उसकी ओर एक चौवन्नी बढ़ाया तो उसने लेने से इंकार करते हुए कहा—"बाबाजी, मैं गरीब जरूर हूँ, पर मेरे भोजन का प्रबंध है। मैं भीख नहीं माँगता। यहाँ अपने के बाद से आपने मथुरानाथ का प्रसाद ग्रहण किया है या नहीं? यहाँ आनेवाले यात्रियों को मंदिर का प्रसाद खाना पड़ता है। यही यहाँ की परम्परा है। चलिये मेरे साथ।"

अन्नदा ने कहा—"मुझे इसकी जरूरत नहीं है। मेरे बदले दूसरे को मिल जाने पर मुझे प्रसन्नता होगी। मेरे पास पैसे हैं, खरीदकर खा लूँगा।"

वैष्णव ने कहा—"इस तरह पैसा लुटाने की अपेक्षा संचय करिये। कोई बात नहीं। आप इंतजार कीजिए। मैं आपके लिए मथुरानाथ का प्रसाद ले आ रहा हूँ।"

यह कहकर वैष्णव तेजी से एक ओर चला गया। अन्नदा को आश्चर्य हुआ कि यहाँ के लोग पैसे को अधिक महत्त्व देते हैं। कुछ देर बाद वैष्णव प्रसाद ले आया। भरपेट खाने के बाद बातचीत के सिलसिले में अन्नदा ने कहा—"तीन दिन यहाँ रहने के बाद मैं वृन्दावन जाऊँगा।"

तीसरे दिन वैष्णव ने कहा—"महाराज, आज आपको मैं दुर्वासा आश्रम ले चलूँगा। ऐसा दिव्य स्थान भारत में अन्यत्र कहीं नहीं है।" इसके बाद वह दुर्वासा आश्रम की इतनी प्रशंसा करने लगा कि अन्नदा को उक्त स्थान देखने की इच्छा हो गयी।

तीसरे पहर नाव के द्वारा दोनों व्यक्ति दुर्वासा आश्रम की ओर रवाना हुए। उस पार नाव लगने के बाद वैष्णव ने कहा— "अब यहाँ से एक क्रोश पैदल चलना पड़ेगा।"

दोनों व्यक्ति बातचीत करते हुए चलते रहे। काफी दूर चलने के बाद अन्नदा ने

कहा—"भगतजी, आपने कहा था कि एक क्रोश चलना पड़ेगा। मुझे लगता है जैसे दो क्रोश आ गया हूँ। इधर जंगल भी देख रहा हूँ। आगे और भी घना होगा। शायद रास्ता भूल गये हैं?"

यह बात सुनते ही वैष्णव चलते-चलते रुक गया और कहा—"आप यहीं ठहरिये। मैं आगे बढ़कर पता लगा लूँ।" यह कहकर वह गायब हो गया।

अंधकार बढ़ता जा रहा था। बड़े-बड़े वृक्षों से चाँदनी छनकर आ रही थी। अन्नदा मन ही मन जय मथुरानाथ जपने लगा। अगर उसे यह ज्ञात होता कि ऐसे दुर्गम मार्ग से सफर करना पड़ेगा तो वह न आता। सहसा घने जंगल के भीतर से दो लट्ठधारी व्यक्ति सामने आकर खड़े हो गये और कड़ककर पूछा—"कौन हो तुम?"

अन्नदा ने कहा—"साधु।"

इतना सुनते ही दूसरे व्यक्ति ने कसकर उसके हाथ को पकड़ लिया। क्षणभर में अन्नदा सारा रहस्य समझ गया। उसने पूछा—"क्या चाहते हो तुम लोग?"

"जो कुछ तुम्हारे पास है, सब दे दो, वर्ना जान से मार डालेंगे।"

अन्नदा ने सात रुपये चौदह आने पैसे देते हुए कहा—"मुझे एक वैष्णव ले आया था। वह कहाँ है?"

"वह वैष्णव नहीं, डाकू था। इस गठरी में क्या है? इसे भी दे दो।"

अन्नदा ने कहा—"नहीं, यह गठरी नहीं दूँगा।"

तभी एक डाकू ने उसे धक्का देकर कहा—"अभी पेड़ से बाँधकर पिटाई करता हूँ तब……"

ठीक इसी समय "पकड़ो-पकड़ो" की आवाज आयी। इस आवाज को सुनते ही दोनों डाकू भाग गये। क्रमशः वह आवाज पास आने लगी। सामने से एक गधा दौड़ता हुआ आ रहा था। उसके पीछे धोबी और उसकी पत्नी आ रहे थे। पास आकर धोबी ने पूछा—"लगता है, आपको डाकुओं ने पकड़ा था?"

अन्नदा के 'हाँ' कहने पर धोबी ने कहा—"यह जगह बहुत ही खतरनाक है। यहाँ चार आने पैसे के लिए हत्या होती है। आप बच गये, यह बहुत है। आइये, आपको जंगल के बाहर छोड़ दूँ।"

कुछ देर बाद यमुना नदी दिखाई देने लगी। धोबी ने एक ओर इशारा करते हुए कहा—"उधर जो सफेद मकान दिखाई दे रहा है उस मकान के पास चले जाइये। बाहर दो लठैतों से घिरे एक बाबू दिखाई देंगे। उनसे आप अपनी रामकहानी सुनाइयेगा। वे बंगाली हैं, आपकी मदद कर देंगे। मैं उनके कपड़े धोता हूँ। बड़े सज्जन पुरुष हैं।"

इतना कहकर दोनों पति-पत्नी नमस्कार करने के पश्चात् चले गये। अन्नदा सफेद मकान की ओर बढ़ गया। थोड़ी दूर जाने पर उसने चाँदनी में देखा- एक वृद्ध सज्जन टहल रहे हैं। उनके पीछे दो व्यक्ति लाठी लेकर घूम रहे हैं। उनके पास जाते ही वे बोले-''कहिये।''

अन्नदा ने चकित भाव से पूछा-''क्या आप मुझे पहचान रहे हैं?''

सज्जन ने उनका हाथ पकड़कर कहा- ''पहचान तो नहीं रहा हूँ, पर तुम भी उन भगोड़ों में हो जो अपने माँ-बाप को सताने के लिए ऐसा भेष धारण करते हैं।''

बातचीत के सिलसिले में सारी बातें सुनने के बाद सज्जन ने कहा-''ऐसा कभी हो नहीं सकता। एक विवाहित लड़के को माँ-बाप संन्यासी बनने के लिए अनुमति देंगे। यह पट्टी किसी और को पढ़ाना। बहरहाल, इस वक्त तुम आ कहाँ से रहे हो?''

अन्नदा ने मथुरा से वैष्णव के साथ चलने से लेकर धोबी के सहयोग देने तक का विवरण सुनाया। सारी बातें सुनने के बाद सज्जन ने कहा-''ठीक हुआ है। माँ-बाप को कष्ट देकर जो लड़के घर से भागते हैं, उनकी ऐसी दुर्दशा होती है। मगर मैं एक बात समझ नहीं सका। तुमने जिस धोबी की चर्चा की। उसे मैं ज़ानता तक नहीं। मेरे यहाँ से किसी धोबी को कपड़े नहीं दिये जाते।''

अन्नदा को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। क्या उसने गलती से यहाँ का परिचय दिया? आखिर वह कौन था जिसने मुसीबत से बचाया।

अन्नदा को ऊहापोह करते देख जमींदार ने कहा-''खैर, जो हुआ, उसे जाने दो। चलो, मेरे साथ।''

रात दस बजे उनके घर में तीसरी मंजिल के एक कमरे के सामने लाकर जमींदार ने अपने दरवानों से कहा-''इन्हें इस कमरे में ठहराओ। देखो, ये यहाँ से भागने न पायें वर्ना तुम लोगों का छः माह का वेतन काट लूँगा।''

दरवानों के साथ-साथ अन्नदा भी चकित रह गया। उसने कहा-''मुझे पहरा क्यों देना पड़ेगा? मैं कहीं नहीं जाऊँगा।''

''दरअसल तुम्हें यहाँ से कलकत्ता ले जाकर तुम्हारे माता-पिता के हाथ सौंपना है। शायद इस पुण्य कार्य से मुझे मेरा खोया बेटा मिल जाय। मेरा दृढ़ विश्वास है कि तुम घर से भागकर संन्यासी बन गये हो। मैं स्वयं इसका भुक्तभोगी हूँ। मेरा लड़का आज छः साल से बी०ए० पास करने के बाद घर से भाग गया है। हम लोग उसे पागलों की तरह तलाश कर रहे हैं। ऐसा कोई तीर्थ नहीं है जहाँ हमने उसकी खोज न की हो। प्रत्येक वर्ष झूलन-पूर्णिमा को यहाँ आता हूँ ताकि वह कहीं दिखाई दे जाय। लेकिन आज तक वह नहीं मिला, इसलिए तुम्हें यहाँ कैद में रखूँगा और बाद में कलकत्ता ले जाऊँगा।''

जमींदार साहब की सारी बातें सुनकर अन्नदा ने मर्माहत होकर कहा—"आपका लड़का गायब हो गया है जानकर मुझे अपार कष्ट हो रहा है। यकीन मानिये, मैं घर से भागा नहीं हूँ। सभी लोगों से अनुमति लेकर रवाना हुआ हूँ।"

जमींदार साहब ने इस सत्य को स्वीकार नहीं किया। बहस करते रहे। ठीक इसी समय भोजन आ गया। जमींदार ने कहा—"इस कमरे में मेरी विधवा ब्रह्मचारिणी कन्या रहती है। अब तुम खा-पीकर आराम करो। कल सबेरे जो होगा, किया जायगा।"

दूसरे दिन पहरेदारों से घिरे अन्नदा ने यमुना में स्नान किया और मथुरानाथ का दर्शन करके वापस आया। यहाँ आने पर देखा कि उसके कमरे के सामने जमींदार की कन्या एक अंग्रेजी पत्र लेकर पढ़ रही है।

अन्नदा को वापस आया देखकर बेटी के पास माँ भी चली आयी। नाना प्रकार की बातों के बीच जमींदार गृहिणी ने पूछा—"जब तुम संन्यासी नहीं हो तो गेरुआ वस्त्र पहनकर क्यों तीर्थयात्रा कर रहे हो?"

"माँ, इन कपड़ों को एक अन्य माँ ने दिया तो पहन लिया। रहा तीर्थयात्रा का प्रश्न। वास्तव में मैं स्वप्न में दिये गये आदेशानुसार यात्रा कर रहा हूँ।"

यह बात सुनते लड़की ने चौंककर माँ से कहा—"यह वही तो नहीं हैं, माँ?"

अन्नदा चौंक उठा। तभी जमींदार कन्या ने पूछा—"आप कलकत्ता में कहाँ रहते हैं?"

"आमहर्स्ट स्ट्रीट में। मगर आजकल उस रोड का नाम २० नं० बलाई सिंह लेन हो गया है।"

"१०० नं० आमहर्स्ट स्ट्रीट में रहते थे?"

"मेरी बगल के मकान का यही नम्बर है।"

इसके बाद लड़की ने माँ से कहा—"मेरा विश्वास है कि आप वही व्यक्ति हैं जिन्हें स्वप्न में आद्या माँ प्राप्त हुआ था।"

गृहिणी ने पूछा—"क्या यह बात सच है, बेटा? तुम वही हो?"

अन्नदा ने संकोच से सिर झुका लिया। यह देखकर कन्या ने कहा—"माँ, पिताजी किसे पकड़ लाये हैं। इन्हें चुपके से विदा कर दो वर्ना पिताजी के आने पर झंझट होगा।"

जमींदार गृहिणी ने आगे बढ़कर पदधूलि लेते हुए कहा—"बेटा, अब तुम तुरंत यहाँ से रवाना हो जाओ। स्टेशन की ओर मत जाना। पैदलवाले रास्ते से चले जाओ। डेढ़-दो घण्टे में वृन्दावन पहुँच जाओगे।"

इतना कहने के बाद वे कुछ रुपये देने लगीं तो अन्नदा ने अस्वीकार कर दिया।

यह देखकर गृहिणी ने कहा—"इसे रख लो। अभी तुम्हें वृन्दावन से लक्ष्मणझूला तक जाना है। रास्ते में तुम्हें कौन देगा? फिर भोजन का खर्च है। एक माँ अपने बेटे को राह खर्च दे रही है, समझकर रख लो।"

रुपये लेकर अन्नदा निर्देशानुसार मार्ग से वृन्दावन की ओर रवाना हो गया। प्रचण्ड गर्मी के कारण प्यास महसूस होने लगी। काफी दूर आने के बाद एक कुएँ पर एक व्यक्ति को स्नान करते देख उससे अन्नदा ने अनुरोध किया कि मुझे प्यास लगी है, कृपया पानी पिला दीजिए।

उस व्यक्ति ने कहा—"इस कुएँ का पानी खारा है। आप पी नहीं सकते।"

"खारा हो या मीठा। आप मुझे पिला दीजिए। प्यास के कारण मेरा गला सूख गया है।"

"नहीं महाराज, मैं यह पाप नहीं कर सकता।" यह कहकर वह व्यक्ति चला गया।

इधर अत्यधिक प्यास के कारण अन्नदा की आँखों के सामने तारे नाचने लगे। उसे चक्कर आ गया। होश आने पर उसने देखा— सामने से एक बालक और एक बालिका आपस में चुहल करते हुए कुएँ की ओर आ रहे हैं। उनके हाथ में डोरी और लोटा है। जब वे दोनों पास आ गये तब अन्नदा ने उनसे अनुरोध किया—"बेटा, मुझे बहुत प्यास लगी है। जरा पानी पिला दो।"

"अभी लीजिए महाराज।" कहकर बालक ने कुएँ से पानी निकालकर पिलाया।

कितना मीठा जल है और वह कमबख्त कह रहा था कि बहुत खारा है। निष्ठुर कहीं का। पानी पीने के बाद उसका मन प्रसन्न हो गया। अन्नदा ने बालक से पूछा–"तुम लोग कहाँ रहते हो?"

"वृन्दावन के रंगनाथ मंदिर में।"

"मैं भी वहीं जा रहा हूँ। क्या वहाँ तुम लोगों से मुलाकात हो सकेगी?"

"जरूर। तलाश करने पर हम मिल जायेंगे।"

बहुत देर तक अन्नदा इन दोनों भोले-भाले बालक-बालिका को देखता रहा। इसके बाद वह वृन्दावन की ओर बढ़ गया।

उन दिनों वृन्दावन में झूलन का मेला प्रारंभ हो गया था। चारों ओर चहल-पहल थी। रंगनाथ मंदिर में जाकर उसने दर्शन किया। इसके बाद वह उक्त बालक-बालिका को खोजने लगा। यहाँ जितने बालक-बालिका राधाकृष्ण का शृंगार करके नाच रहे थे, वे उतने सुन्दर नहीं थे। कुछ देर बाद नाट मंदिर में गया। वहाँ भी रासलीला करनेवाली युगल जोड़ी में वे दोनों दिखाई नहीं दिये। पता लगाने पर मालूम हुआ कि यहाँ अन्यत्र

दो-तीन स्थानों में रासलीला हो रही है। उन सभी स्थानों को अतृप्त नयनों से देखने पर भी कुएँ वाली जोड़ी कहीं दिखाई नहीं दी। अन्त में थककर वह यमुना किनारे रेती पर चादर बिछाकर सो गया। चाँदनी में उसने देखा— आसपास अनेक संत और वैष्णव धूनी जलाकर ध्यान-मग्न हैं।

इसी समय एक वैष्णव की जोड़ी आयी। वैष्णव की उम्र १८ या २० के लगभग थी और वैष्णवी २४-२५ वर्ष की लग रही थी। दोनों मधुर कंठ से भजन गा रहे थे। थोड़ी देर बाद वैष्णवी ने कहा—''खाली बकवाद ही करेगा या पेट-पूजा का कोई इंतजाम करेगा। वह कहावत सुनी है, भूखे भजन नहिं होहिं गोपाला।''

वैष्णव ने कहा—''बात तो ठीक कह रही है, पर कितना ले आऊँ, यह तो बता।''

वैष्णवी बोली—''जितना खा सकता है, उतना ले आ।''

यह बात सुनकर वैष्णव चला गया। कुछ देर बाद वैष्णव वापस आया। अन्नदा ने देखा— काफी भोजन की सामग्री ले आया है। उसे जोरों की भूख लगी हुई थी। अपरिचित से माँगने में शर्म लग रही थी। तभी वैष्णवी बोली—''क्यों रे, इतना कौन खायेगा?''

वैष्णव ने कहा—''यहाँ हम अकेले थोड़ी ही खायेंगे। देख नहीं रही हो, यहाँ कितने साधु-संन्यासी बैठे हैं। उन्हें भी देना पड़ेगा।''

वैष्णवी बोली—''ठीक है। जा, इन लोगों में बाँट दे। शेष जो रहेगा, उसे हम खायेंगे।''

वैष्णव आसपास बैठे और लेटे हुए संन्यासियों के पास जाकर भोजन करने का अनुरोध करने लगा। सभी संतों ने कहा कि वे अभुक्त नहीं हैं। उन्हें नहीं चाहिए। अन्त में जब अन्नदा के पास वैष्णव आया तब उसने इस तरह प्रश्न किया जैसे वह कुछ जानता नहीं।

अन्नदा के स्वीकार करने पर वैष्णव-दम्पति उसके पास आकर परोसा दे गये। थोड़ी देर बाद पुनः वैष्णवी कुछ और सामान लेकर आयी और बोली—''स्वामीजी, दो कचौड़ी और लीजिए।''

''पत्तल पर डाल दीजिए माताजी।'' कहने के पश्चात् अन्नदा भोजन करने लगा। वैष्णवी को खिलाते देख वैष्णव भी एक पुरवे में रबड़ी लाकर उसके पत्तल पर रख दिया।

भोजन करने के पश्चात् अन्नदा मुँह धोने गया। वापस आकर देखा कि वैष्णव-दम्पति भोजन कर रहे हैं। वह सिर से पैर तक चादर तानकर सो गया। नींद में उसने एक अद्भुत दृश्य देखा— मथुरा से आते समय जिस बालक और बालिका ने उसे पानी

पिलाया था, वही यहाँ वैष्णव-दम्पति के रूप में भोजन करा गये। वह चौंक उठा। उस वक्त भोर होने में एक घंटा बाकी था। वह तेजी से उस स्थान पर आया जहाँ वैष्णव-वैष्णवी थे। वहाँ केवल एक चद्दर बिछा था। उन दोनों का दूर-दूर तक कहीं पता नहीं था। यह सब देखकर अन्नदा उदास हो गया। वहाँ से चलकर वह बाजार आया और वहाँ से रस्सी का एक बण्डल खरीदकर पैदल मथुरा के रास्ते चल पड़ा। कुएँ के पास आकर उसने लोटे से पानी निकालकर एक चुल्लू मुँह में देते ही थू-थू कर उगल दिया। यह पानी न केवल खारा था, बल्कि न जाने कितना दुर्गन्ध से भरा था। इस पानी को तो जानवर तक नहीं पी सकते।

अन्नदा को समझते देर नहीं लगी कि मथुरापति, वृन्दावनविहारी ने दो-दो बार दर्शन दिये, पर वह ऐसा अभागा है कि उन्हें पहचान नहीं सका। उनका चरण-स्पर्श नहीं कर सका। कुएँ की जगत् पर बैठा वह आकुल स्वर में रोने लगा। लेकिन उस सुनसान स्थान में कौन उसे सांत्वना देता।

+ \+ \+ \+

वृन्दावन से वह यथा समय हरिद्वार होते हुए ऋषिकेश आ गया। यहाँ काली कमली वाले धर्मशाले में ठहरा। यहाँ यात्रियों को ठहरने के अलावा भोजन भी दिया जाता है। दूसरे दिन वह धर्मशाला में ठहरे यात्रियों में बंगाली यात्री खोजने लगा ताकि उनकी सहायता से स्वर्गाश्रम जा सके। तभी दरवाजे के पास खड़े एक संन्यासी ने आवाज दी—"यहाँ स्वर्गाश्रम के कौन-कौन यात्री हैं। जिन्हें वहाँ जाना है, वे बाहर चले आयें।"

इस संदेश को सुनते ही अन्नदा उनके निकट जाकर कहा—"स्वामीजी, मैं स्वर्गाश्रम जाना चाहता हूँ।"

उक्त स्वामी ने अन्नदा को गौर से देखने के बाद पूछा—"क्या आप वहाँ कुछ दिन ठहरना चाहते हैं?"

"जी हाँ।"

"लेकिन वहाँ एक भी कुटिया खाली नहीं है। आप कुछ देर इन्तजार कीजिए। जब तक आपकें लिए कोई कुटिया न मिले तब तक आप मेरी कुटिया में रह सकते हैं।" यह कहकर उक्त स्वामीजी चले गये।

तीसरे पहले अन्नदा को लेकर वे स्वर्गाश्रम आये। सौभाग्य से उसी दिन एक कुटिया खाली हो गयी थी। उस कुटिया में आकर अन्नदा ने उसे रहने लायक बनाया। गंगा किनारे, छायादार वृक्षों के पास साधना करने लायक उपयुक्त कुटिया थी। उस दिन रात को बहुत दिनों के बाद स्वप्न में परमहंसजी आये और कहा—"अब यहाँ आनन्दपूर्वक साधना करते रहो।"

दो-तीन स्थानों में रासलीला हो रही है। उन सभी स्थानों को अतृप्त नयनों से देखने पर भी कुएँ वाली जोड़ी कहीं दिखाई नहीं दी। अन्त में थककर वह यमुना किनारे रेती पर चादर बिछाकर सो गया। चाँदनी में उसने देखा— आसपास अनेक संत और वैष्णव धूनी जलाकर ध्यान-मग्न हैं।

इसी समय एक वैष्णव की जोड़ी आयी। वैष्णव की उम्र १८ या २० के लगभग थी और वैष्णवी २४-२५ वर्ष की लग रही थी। दोनों मधुर कंठ से भजन गा रहे थे। थोड़ी देर बाद वैष्णवी ने कहा—''खाली बकवाद ही करेगा या पेट-पूजा का कोई इंतजाम करेगा। वह कहावत सुनी है, भूखे भजन नहिं होहिं गोपाला।''

वैष्णव ने कहा—''बात तो ठीक कह रही है, पर कितना ले आऊँ, यह तो बता।''

वैष्णवी बोली—''जितना खा सकता है, उतना ले आ।''

यह बात सुनकर वैष्णव चला गया। कुछ देर बाद वैष्णव वापस आया। अन्नदा ने देखा— काफी भोजन की सामग्री ले आया है। उसे जोरों की भूख लगी हुई थी। अपरिचित से माँगने में शर्म लग रही थी। तभी वैष्णवी बोली—''क्यों रे, इतना कौन खायेगा?''

वैष्णव ने कहा—''यहाँ हम अकेले थोड़ी ही खायेंगे। देख नहीं रही हो, यहाँ कितने साधु-संन्यासी बैठे हैं। उन्हें भी देना पड़ेगा।''

वैष्णवी बोली—''ठीक है। जा, इन लोगों में बाँट दे। शेष जो रहेगा, उसे हम खायेंगे।''

वैष्णव आसपास बैठे और लेटे हुए संन्यासियों के पास जाकर भोजन करने का अनुरोध करने लगा। सभी संतों ने कहा कि वे अभुक्त नहीं हैं। उन्हें नहीं चाहिए। अन्त में जब अन्नदा के पास वैष्णव आया तब उसने इस तरह प्रश्न किया जैसे वह कुछ जानता नहीं।

अन्नदा के स्वीकार करने पर वैष्णव-दम्पति उसके पास आकर परोसा दे गये। थोड़ी देर बाद पुनः वैष्णवी कुछ और सामान लेकर आयी और बोली—''स्वामीजी, दो कचौड़ी और लीजिए।''

''पत्तल पर डाल दीजिए माताजी।'' कहने के पश्चात् अन्नदा भोजन करने लगा। वैष्णवी को खिलाते देख वैष्णव भी एक पुरवे में रबड़ी लाकर उसके पत्तल पर रख दिया।

भोजन करने के पश्चात् अन्नदा मुँह धोने गया। वापस आकर देखा कि वैष्णव-दम्पति भोजन कर रहे हैं। वह सिर से पैर तक चादर तानकर सो गया। नींद में उसने एक अद्भुत दृश्य देखा— मथुरा से आते समय जिस बालक और बालिका ने उसे पानी

पिलाया था, वही यहाँ वैष्णव-दम्पति के रूप में भोजन करा गये। वह चौंक उठा। उस वक्त भोर होने में एक घंटा बाकी था। वह तेजी से उस स्थान पर आया जहाँ वैष्णव-वैष्णवी थे। वहाँ केवल एक चद्दर बिछा था। उन दोनों का दूर-दूर तक कहीं पता नहीं था। यह सब देखकर अन्नदा उदास हो गया। वहाँ से चलकर वह बाजार आया और वहाँ से रस्सी का एक बण्डल खरीदकर पैदल मथुरा के रास्ते चल पड़ा। कुएँ के पास आकर उसने लोटे से पानी निकालकर एक चुल्लू मुँह में देते ही थू-थू कर उगल दिया। यह पानी न केवल खारा था, बल्कि न जाने कितना दुर्गन्ध से भरा था। इस पानी को तो जानवर तक नहीं पी सकते।

अन्नदा को समझते देर नहीं लगी कि मथुरापति, वृन्दावनविहारी ने दो-दो बार दर्शन दिये, पर वह ऐसा अभागा है कि उन्हें पहचान नहीं सका। उनका चरण-स्पर्श नहीं कर सका। कुएँ की जगत् पर बैठा वह आकुल स्वर में रोने लगा। लेकिन उस सुनसान स्थान में कौन उसे सांत्वना देता।

+ \+ \+ \+

वृन्दावन से वह यथा समय हरिद्वार होते हुए ऋषिकेश आ गया। यहाँ काली कमली वाले धर्मशाले में ठहरा। यहाँ यात्रियों को ठहरने के अलावा भोजन भी दिया जाता है। दूसरे दिन वह धर्मशाला में ठहरे यात्रियों में बंगाली यात्री खोजने लगा ताकि उनकी सहायता से स्वर्गाश्रम जा सके। तभी दरवाजे के पास खड़े एक संन्यासी ने आवाज दी—"यहाँ स्वर्गाश्रम के कौन-कौन यात्री हैं। जिन्हें वहाँ जाना है, वे बाहर चले आयें।"

इस संदेश को सुनते ही अन्नदा उनके निकट जाकर कहा—"स्वामीजी, मैं स्वर्गाश्रम जाना चाहता हूँ।"

उक्त स्वामी ने अन्नदा को गौर से देखने के बाद पूछा—"क्या आप वहाँ कुछ दिन ठहरना चाहते हैं?"

"जी हाँ।"

"लेकिन वहाँ एक भी कुटिया खाली नहीं है। आप कुछ देर इन्तजार कीजिए। जब तक आपके लिए कोई कुटिया न मिले तब तक आप मेरी कुटिया में रह सकते हैं।" यह कहकर उक्त स्वामीजी चले गये।

तीसरे पहले अन्नदा को लेकर वे स्वर्गाश्रम आये। सौभाग्य से उसी दिन एक कुटिया खाली हो गयी थी। उस कुटिया में आकर अन्नदा ने उसे रहने लायक बनाया। गंगा किनारे, छायादार वृक्षों के पास साधना करने लायक उपयुक्त कुटिया थी। उस दिन रात को बहुत दिनों के बाद स्वप्न में परमहंसजी आये और कहा—"अब यहाँ आनन्दपूर्वक साधना करते रहो।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अब जो आज्ञा देंगे, उसका पालन करता चलूँगा। अगर मेरी साधना से मानव-जीवन का कल्याण हो सके तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा।"

परमहंसजी ने कहा–"इस कल्पना को त्याग दो। इसके लिए तुम्हें सौ वर्ष तक तपस्या करनी पड़ेगी जो तुम्हारे लिए संभव नहीं है। इससे अच्छा है कि घर वापस जाकर दस साल तक माँ-बाप की सेवा करो और इसके बाद गंगा तट पर सपत्नीक दस साल तक साधना करो।"

"मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। बीस वर्ष के बाद फिर क्या करना पड़ेगा?"

परमहंसजी ने कहा–"एक भव्य मंदिर की स्थापना। आद्यापीठ का। दक्षिणेश्वर में जहाँ जगन्माता काली देवी हैं, उसी गंगा तट के किनारे एक मंदिर का निर्माण।"

इतना कहने के पश्चात् परमहंसजी ने अन्नदा को एक पहाड़ के किनारे स्थित मंदिर को दिखाया। मंदिर की प्रथम वेदी पर परमहंस की मूर्ति थी जिसके नीचे लिखा था– गुरु। दूसरी वेदी पर आद्या माँ की मूर्ति थी जिसे इडेन गार्डेन से वह ले आया था और तीसरी वेदी पर राधाकृष्ण की युगल मूर्ति थी। मूर्ति के नीचे लिखा था– प्रेम। मंदिर का निर्माण इस ढंग से किया गया था कि बाहर से तीनों मूर्तियों का दर्शन एक साथ हो रहा था।

अब परमहंसजी ने कहा–"इस तरह की मूर्ति बना सकोगे। मंदिर भी इसी ढंग का हो।"

अन्नदा ने कहा–"अगर आप शक्ति प्रदान करें तो मैं अपने कार्य में अवश्य सफलता प्राप्त करूँगा।"

इसके बाद अन्य कुछ बातें कहने के पश्चात् परमहंसजी चले गये।

स्वर्गाश्रम का वातावरण बहुत सुन्दर था। इस प्रकार दिन गुजर रहे थे। अचानक एक दिन पुनः स्वप्न में परमहंसजी आये और कहा–"अभी तक तुम रवाना नहीं हुए? समय कम है। शीघ्र अपने गाँव चले जाओ। अब तुम्हें दस वर्ष नहीं, केवल एक वर्ष माता-पिता की सेवा करनी पड़ेगी। इसके बाद पत्नी को लेकर दक्षिणेश्वर चले जाना। वहाँ मंदिर निर्माण के साथ-साथ साधना करते रहना।"

अन्नदा ने संकोच के साथ पूछा–"प्रभो, इतना विशाल मंदिर बनवाने के लिए प्रचुर धन कहाँ से प्राप्त करूँगा।"

परमहंसजी ने हँसकर कहा—"चन्दा से। इसकी चिन्ता क्यों करते हो। किसी भी सत्कार्य के लिए अर्थाभाव नहीं होता। तुम स्वयं इसे अनुभव करोगे।"

इस आश्वासन को पाकर अन्नदा दूसरे दिन कलकत्ता की ओर रवाना हो गया। कलकत्ता के मित्रों से मुलाकात करने के बाद चटगाँव चला आया। यहाँ एक वर्ष तक माता-पिता की सेवा करने के पश्चात् परमहंसजी के आज्ञानुसार पत्नी को साथ लेकर दक्षिणेश्वर चला आया। सन् १९२० में अन्नदा ठाकुर ने दक्षिणेश्वर में पुरश्चरण व्रत किया। यही तिथि आद्यापीठ की प्रथम सिद्धोत्सव तिथि है। बंगाल के कोने-कोने से भक्तों का आगमन होने लगा। सन् १९२६ में मंदिर के लिए वहीं जमीन खरीदा गया और १९२७ ई० में मंदिर की नींव डाली गयी। आद्यापीठ स्थित वर्तमान मंदिर में छः शिव मंदिरों के अलावा परमहंसजी, श्रीआद्या माँ और श्रीराधाकृष्ण युगल मूर्ति की स्थापना हुई।

इस घटना के एक वर्ष बाद अर्थात् सन् १९२८ ई० में अन्नदा ठाकुर का स्वर्गवास हो गया। उनके निधन के पश्चात् उनके शिष्यों ने शेष कार्य पूरा किया।

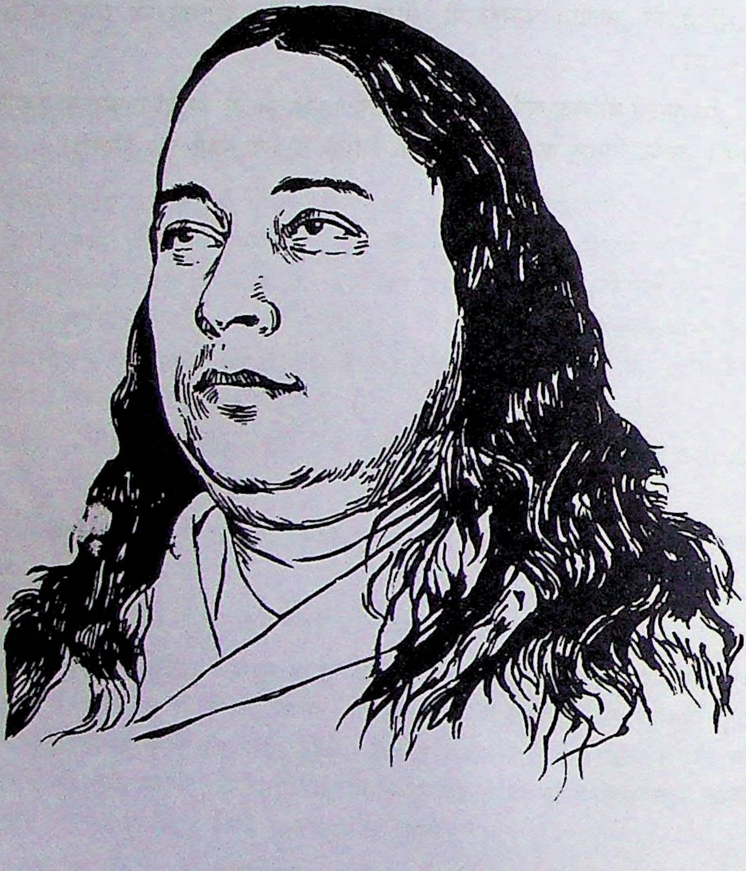

परमहंस योगानन्द गिरि

परमहंस योगानन्द गिरि

दिन-प्रतिदिन लड़के की बिगड़ती हालत देखकर घर के सभी लोग चिन्तित हो उठे। दो दिन के भीतर वह इतना कमजोर हो गया कि उठना-बैठना मुश्किल हो गया। डॉक्टर ने कहा—''यह हैजे का उग्र रूप है।''

लेकिन लड़के की माँ के चेहरे पर शिकन तक नहीं थी। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि उनके मुकुन्द को यमराज भी स्पर्श नहीं कर सकेंगे। भले ही इसे कुछ दिन कष्ट भोगना पड़े। जिस बालक को गुरुदेव का आशीर्वाद मिला है, उसकी अकाल मृत्यु नहीं हो सकती। उन्हें याद है। जब मुकुन्द गोद में था तब भगवती चरण घोष सपरिवार काशी में योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी का दर्शन करने आये थे। दरअसल वे शिष्य बनने आये थे। मुकुन्द को गोद में लेकर घोष-पत्नी काफी लोगों के पीछे बैठी थीं। एकाएक उनके मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि इस बालक पर अगर लाहिड़ी महाशय की दृष्टि पड़ जाय तो इसका जीवन मंगलमय हो जायगा।

अन्तर्यामी गुरुदेव ने इस इच्छा को जान लिया। घोष-पत्नी को पास बुलाकर बच्चे के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा था—''आयुष्मान भव।''

बस, इस आशीर्वाद को सुनकर माँ मुकुन्द के भावी जीवन के प्रति आस्थावान हो गयी थीं। पति के साथ उन्होंने भी योगिराज के निकट दीक्षा ली थी।

केवल यही नहीं, एक और संत का आशीर्वाद मुकुन्द को मिला है। लाहिड़ी महाशय से दीक्षा लेने के कुछ दिनों बाद भगवती चरण की बदली लाहौर हो गयी।

एक दिन एक अपरिचित संन्यासी आया और घोष बाबू से कहा—''मैं मुकुन्द की माँ से मिलना चाहता हूँ।''

मुकुन्द की माँ जब बाहर आयीं तब उक्त संन्यासी ने कहा—''माताजी, अब आप अधिक दिनों तक नहीं रहेंगी। अब जब कभी बीमार होंगी तब आपके जाने का समय होगा। लेकिन उसके पहले आपको एक काम करना होगा।'' जेब से एक ताबीज निकालकर दिखाते हुए संन्यासी ने कहा—''कल जब आप ध्यान करने बैठेंगी तब अचानक शून्य से आपके हाथ में एक ताबीज गिरेगा। आप उस ताबीज को हिफाजत

से रख देंगी। जब आप बीमार होंगी तब किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ में ताबीज देते हुए उसे बता देंगी कि आपके निधन के एक वर्ष बाद इसे मुकुन्द को दे दिया जाय, उसके पहले नहीं। वह ताबीज मुकुन्द का कल्याण करने के पश्चात् जिस प्रकार आयेगा, ठीक उसी प्रकार चला जायेगा।''

इतना कहने के बाद साधु चला गया। घोष पत्नी अवाक् होकर देखती रहीं। दूसरे दिन भगवती बाबू की पत्नी जब ध्यान में बैठीं तब संन्यासी के बताये हुए निर्देश के अनुसार न जाने कहाँ से एक ताबीज हाथ पर गिरा। चौंककर वे चारों ओर देखने लगीं। कमरे में कोई नहीं था। मुकुन्द की माँ को विश्वास हो गया कि यह ताबीज मेरे बच्चे की रक्षा करेगा। आज भी वह ताबीज उनके पास है।

इस घटना के बाद से वे मुकुन्द पर विशेष ध्यान देने लगीं। मुकुन्द जब अपने पलंग पर अकेला बैठता न जाने क्या सोचता रहता है तब उसके चेहरे के चारों ओर एक प्रकार की आभा प्रस्फुटित होती है। एक बार उन्होंने मुकुन्द से पूछा—''तू बैठा-बैठा क्या सोचता है?''

मुकुन्द ने कहा—''आँखों के सामने सब कुछ दिखाई देता है, पर आँखों के पीछे क्या है, पता नहीं चलता।'' फिर अचानक जैसे भूली हुई बात याद आ गयी हो, इस तरह कहने लगा—''माँ, माँ, एक दिन मेरी आँखों के सामने कई संत आकर खड़े हो गये। मैंने उन लोगों से पूछा कि आप लोग कौन हैं? उन लोगों ने बताया कि हम सब हिमालय के संत हैं। वहीं जा रहे हैं। कभी तुम्हें भी वहाँ ले जायेंगे।''

यह बात सुनकर विस्मय से माँ की आँखें बड़ी-बड़ी हो गयीं। उन्हें लाहिड़ी महाशय की बातों पर विश्वास हो गया। उन्होंने कहा था—''आगे चलकर यह बालक संत बनेगा।''

गुरुदेव की याद आते ही घोष बाबू की पत्नी ने सामने की दीवार पर टँगे चित्र को नमस्कार किया। एकाएक उनके मन में विचार आया कि अगर मुकुन्द गुरुदेव के चित्र को प्रणाम करे तो अवश्य चमत्कार होगा। उन्होंने तुरंत मुकुन्द से कहा—''बेटा, सामने गुरुदेव का चित्र टँगा है, उन्हें प्रणाम करो।''

मुकुन्द ने प्रयत्न किया, पर कमजोरी के कारण उसके हाथ नहीं उठे। उसने कहा—''माँ, मेरे हाथ उठ नहीं रहे हैं।''

''कोई हर्ज नहीं। मन ही मन उन्हें प्रणाम करो। मुझे विश्वास है कि गुरुदेव की कृपा से तुम बहुत जल्द अच्छे हो जाओगे।''

मुकुन्द ने माँ की आज्ञा का पालन किया। उसी दिन से वह स्वस्थ होने लगा।

बाबू भगवती चरण घोष बंगाल-नागपुर रेलवे के उपाध्यक्ष पद पर काम कर रहे थे। जिन दिनों वे गोरखपुर में थे, उन्हीं दिनों ५ जनवरी, सन् १८९३ के दिन मझले

पुत्र के रूप में मुकुन्द ने जन्म लिया था। स्वयं सात्त्विक विचार के थे। घर पर माँ बच्चों को रामायण तथा महाभारत की कहानियाँ सुनाया करती थीं। पिताजी के साथ अविनाश बाबू कार्य करते थे। अक्सर उनके यहाँ जाने पर अनेक संतों की कहानियाँ वह सुना करता था। खासकर वे अपने गुरुदेव श्यामाचरण लाहिड़ी की चर्चा करते थे जिनका चित्र उसके घर पर है।

स्वयं मुकुन्द को अपने ऊपर कभी-कभी आश्चर्य होता था। अगर वह कोई बात दृढ़ता से कहता है तो वह हो जाती थी। उसकी बहन उमा अपने पैर के फोड़े पर मरहम लगा रही थी। मुकुन्द ने डिबिया से थोड़ी सी दवा निकालकर अपनी बाँह पर लगाया। यह देखकर उमा ने पूछा—''तुमने दवा क्यों लगायी? तुम्हें तो कुछ नहीं हुआ है।''

''दीदी, देखना कल यहाँ फोड़ा हो जायगा।''

''चल हट। बेमतलब फोड़ा क्यों होगा?''

दूसरे दिन ठीक उसी जगह फोड़ा हो गया जहाँ मुकुन्द ने दवा लगायी थी। इस प्रकार की अनेक घटनाएँ उसके बचपन में हुई थीं।

एक अर्से के बाद बड़े भाई के विवाह की बातचीत करने के लिए माँ कलकत्ता चली गयीं। उन्हीं दिनों एक दिन मुकुन्द के स्वप्न में आकर माँ ने कहा—''मुकुन्द, तुम अपने पिताजी को लेकर शीघ्र कलकत्ता चले आओ, अन्यथा मुझे जीवित नहीं देख पाओगे।''

मुकुन्द ने सारी बातें पिताजी से कहने के पश्चात् कलकत्ता चलने का आग्रह किया। भगवती बाबू ने इस बात पर विश्वास नहीं किया। वे टाल गये। ठीक इसी समय कलकत्ते से पत्नी की अस्वस्थता का तार आया। इस तार को पाते ही वे कलकत्ता रवाना हो गये। यहाँ आने पर पता चला कि कल रात को ही पत्नी का निधन हो गया था।

माँ के निर्देशानुसार बड़े भाई अनन्त ने १४ माह बाद मुकुन्द को माँ का एक पत्र और उस ताबीज को दिया जिसका जिक्र किया जा चुका है। माँ के निधन के कारण घर के सभी लोग रिक्तता महसूस करते रहे। इन्हीं दिनों मुकुन्द को सनक सवार हुई कि वह बनारस जाकर योग की शिक्षा लेगा। उसकी जिद्द के आगे पिता को झुकना पड़ा।

बनारस आकर वह एक विद्यालय में दाखिल हुआ जहाँ योग की शिक्षा दी जाती थी। मुकुन्द के भावी गुरु बनारस में अपनी बीमार माँ की सेवा कर रहे थे। जब गुरु की अतीन्द्रिय-शक्ति ने उन्हें सूचित किया कि उनके शिष्य का आगमन नगर में हो गया है तब वे उसे अपनी ओर आकर्षित करने की क्रिया करने लगे।

एक दिन जब मुकुन्द बंगाली टोला से दशाश्वमेध की ओर आ रहा था तब उसने महसूस किया कि आगे बढ़ने से उसके पैर इंकार कर रहे हैं। पैर सुन्न पड़ गये हैं।

ऐसा क्यों हो रहा है, इसे वह समझ नहीं पा रहा था। पीछे की ओर चलने पर पैरों में स्वाभाविक गति आ गयी। पुनः जब आगे बढ़ा तो पूर्ववाली स्थिति आ गयी। मुकुन्द समझ गया कि कोई अदृश्य शक्ति उसे आकर्षित कर रही है। अब वह आगे न बढ़कर पीछे की ओर मुड़ा। एक गली की मोड़ पर आकर उसने देखा— गेरुआ वस्त्रों से आच्छादित, दाढ़ीवाला एक संन्यासी उसे तीव्र दृष्टि से देख रहा है। पास जाते ही संन्यासी ने कहा— "आ गये वत्स, मेरे पीछे-पीछे चले आओ।"

एक अद्‌भुत आकर्षण से मुकुन्द उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। जलपान कराने के बाद संन्यासी ने कहा— "तुम यहाँ क्रियायोग की शिक्षा जिस ढंग से ले रहे हो, वह अवैज्ञानिक है। मेरे आश्रम में आओ, तुम्हें वास्तविक क्रियायोग का ज्ञान दूँगा जिसकी तुम्हें जरूरत है।"

मुकुन्द ने कहा—"जब यहाँ सीख रहा हूँ तब आपके यहाँ आने की क्या आवश्यकता है। मैं नहीं आऊँगा।"

संन्यासी ने हँसकर कहा—"तुम्हें आना ही पड़ेगा। आज से २८वें दिन तुम मेरे आश्रम में अपने को पाओगे जो कि कलकत्ता से १२ मील दूर श्रीरामपुर में है।"

मुकुन्द ने कहा—"यह असंभव है।"

प्रत्युत्तर में संन्यासी केवल मौन रह गये। उनके चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान फैली हुई थी।

भवितव्य होकर ही रहता है। मुकुन्द जिस आश्रम में रहता था, वहाँ नित्य उपद्रव होने लगा। वह अपने को अछूता नहीं रख सका। फलस्वरूप एक दिन उस आश्रम को नमस्कार कर घर की ओर रवाना हो गया। उन दिनों उसका परिवार कलकत्ता में रहता था।

एक अज्ञात प्रेरणा से मुकुन्द को श्रीरामपुर आना पड़ गया। आश्रम में प्रवेश करते ही उसने सुना—"आ गये वत्स?"

मुकुन्द इस स्वागत वाणी से प्रसन्न हो उठा। भीतर आकर संन्यासी के चरणों पर मस्तक रखते हुए उसने कहा—"मैं अपने आपको पूर्ण रूप से आपके निकट समर्पित कर रहा हूँ। कृपया मुझे योग्य बनाइये।"

संन्यासी ने कहा—"आओ, तुम्हें अपना आश्रम दिखा दूँ जहाँ तुम्हें रहकर साधना करनी है।"

एक कमरे में योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी का चित्र देखकर मुकुन्द चौंक उठा। कहा—"यह चित्र तो मेरे माता-पिता के गुरुदेव का है।"

संन्यासी ने कहा—"यही मेरे पूज्य गुरुदेव हैं। मुझे तुम्हारी सारी बातें मालूम हैं। अब मेर आदेश है कि क्रियायोग सीखने का चक्कर छोड़कर तुम मन लगाकर अध्ययन

करो। आगे चलकर तुम्हें भारतीय योग-पद्धति का ज्ञान देने के लिए पश्चिमी देशों में जाना पड़ेगा। केवल यही नहीं, वहाँ आश्रम स्थापित कर लोगों को अध्यात्म का ज्ञान देना पड़ेगा। वस्तुतः वहाँ के लोग भारतीय अध्यात्म से परिचित नहीं हैं। इस सम्पदा को विस्तार से बताने के लिए तुम्हें वहाँ जाना पड़ेगा। लेकिन उसके पहले भारत में आश्रम स्थापित करके योग-विद्या की शिक्षा देनी पड़ेगी। इस कार्य के लिए शिक्षा और ज्ञान की आवश्यकता है जिसकी पूर्ति तुम्हें कालेज अांर विश्वविद्यालय से करनी होगी। मेरी इच्छा है कि तुम कालेज की शिक्षा में ढील मत दो।''

संन्यासी की आज्ञा मानकर मुकुन्द ने कालेज में दाखिला ले लिया। एक दिन संन्यासी ने कहा—''आज तुम्हें क्रियायोग की दीक्षा दूँगा।''

उस दिन के अनुभव के बारे में मुकुन्द ने लिखा है—''उनके स्पर्श मात्र से ही मेरे शरीर में एक प्रचण्ड ज्योति प्रवाहित होती प्रतीत हुई, मानो करोड़ों सूर्य एक साथ जाज्वल्यमान हो उठे हों। मेरे हृदय का अन्तर प्रदेश एक अपूर्व आनन्द की धारा से आप्लावित हो उठा। मैंने गुरुदेव में रूपान्तर करने की एक महाशक्ति का अनुभव किया।''

दरअसल सिद्ध योगी इस क्रिया के द्वारा शिष्य में ऐशी-शक्ति का समावेश करते हैं। इसके बाद शिष्य क्रिया के द्वारा उन्नति करता रहता है। ऐशी-शक्ति देने के बाद गुरु निरन्तर अपने शिष्य पर नजर रखते हैं ताकि उससे चूक न हो जाय या लापरवाही न करे।

गुरु के आश्रम से लौटने पर सर्वप्रथम पिता ने अपनी शुभकामना देते हुए कहा—''यह बड़े सौभाग्य का विषय है कि जिस आश्चर्यजनक ढंग से मैंने अपने गुरु लाहिड़ी महाशय को पाया था, उसी प्रकार तुमने पाया। जो हिमालय के संत नहीं हैं, बल्कि बिलकुल समीप रहते हैं। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अब तुम पढ़ने की ओर ध्यान लगा रहे हो।''

गुरु के आदेशानुसार मुकुन्द कालेज में शिक्षा लेने के साथ-साथ नित्य उनके आश्रम में आता रहा। उन दिनों मुकुन्द का परिवार कलकत्ता में रहता था और गुरुजी का आश्रम यहाँ से १२ मील दूर श्रीरामपुर में था। संन्यासी गुरु का नाम युक्तेश्वर गिरि था जो कि योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी के प्रिय शिष्य थे।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन गुरुदेव ने कहा—''जगत् में निरन्तर वैद्युतिक और चुम्बकीय शक्तियों का विकिरण होता रहता है। मानव-शरीर पर उनका अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता रहता है। युगोंपूर्व हमारे ऋषि-मुनियों ने सूक्ष्म जागतिक शक्ति-किरणों के प्रतिकूल प्रभावों का सामना करने की समस्या पर गहन चिन्तन किया और आविष्कार किया कि शुद्ध धातुओं में से सूक्ष्म प्रकाश-किरणें प्रस्फुटित होती रहती हैं जिनमें ग्रहों के प्रतिकूल प्रभावों को निष्फल बना देने की प्रचण्ड प्रतिशक्ति विद्यमान

है। कई वृक्ष-लताओं का संयोग भी सहायक सिद्ध हुआ है। इन सब में विशुद्ध और निर्मल रत्न, जिसका वजन दो रत्ती से कम न हो, सबसे अधिक प्रभावकारी है। इस विषय पर भारत के बाहर बहुत कम अध्ययन हुआ है। यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि समुचित रत्नों, धातुओं और औषधि सामग्री से कोई लाभ नहीं होता, यदि वे उचित मात्रा या वजन में उपलब्ध न हों और उन्हें इस तरह न पहना जाय कि उनका स्पर्श त्वचा से होता रहे।''

इन बातों को सुनकर मुकुन्द को ध्यान आया कि गुरुदेव ने इसके पूर्व चाँदी और सीसे का कड़ा पहनने की आज्ञा दी थी। उसने कहा—''गुरुदेव, आपके आदेशानुसार मैं कड़ा जरूर धारण करूँगा।''

गुरुदेव युक्तेश्वर ने कहा—''तुम्हारे ऊपर शीघ्र ही ग्रहों की कुदृष्टि पड़नेवाली है, पर भय की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी रक्षा होगी। एक माह के भीतर ही तुम्हारे यकृत में विकार उत्पन्न होनेवाला है जिसकी वजह से बहुत कष्ट भोगना पड़ेगा। ईश्वर की इच्छा से लगभग छः मास तक तुम कष्ट भोगोगे, पर अगर कड़ा धारण करोगे तो यह कष्ट घटकर चौबीस दिन की रह जायगी।''

दूसरे दिन मुकुन्द जौहरी की दुकान पर निश्चित मात्रा का कड़ा बनाने का आदेश दिया और कड़ा बनते ही पहन लिया। बाद में वह यह बात भूल गया। इसी बीच गुरुदेव आश्रम से काशी चले गये। इसके बाद मुकुन्द को अपार कष्ट होने लगा। तेईस दिन तक भयंकर कष्ट सहने के बाद साहस करके वह बनारस के लिए रवाना हो गया। वहाँ गुरुदेव अनेक लोगों से घिरे हुए थे। वह अपने कष्ट की बात कह नहीं सका। रात को जब गुरुदेव सभी कार्यों से निवृत्त हुए तब वे मुकुन्द के पास आये और कहा—''तुम अपनी पीड़ा की बात कहने आये हो न? तुम्हें मैंने पेट का व्यायाम करने को कहा था। उसे कर रहे हो या नहीं?''

मुकुन्द ने कहा—''अगर आप मेरे पेट की असह्य पीड़ा को समझ लेते तो ऐसी आज्ञा न देते।''

फिर भी गुरु की आज्ञा मानकर वह व्यायाम करने लगा। एकाएक कह उठा—''गुरुदेव, अब मुझसे व्यायाम न होगा। बहुत कष्ट हो रहा है।''

गुरुदेव ने कहा—''ऐसा हो नहीं सकता। तुम कह रहे हो कि असह्य पीड़ा हो रही है और मैं देख रहा हूँ कि पीड़ा नहीं है।''

इतना कहने के बाद गुरुदेव ने प्रश्न सूचक दृष्टि से मुकुन्द की ओर देखा। तभी मुकुन्द ने अनुभव किया कि जादू की तरह उसका सारा कष्ट दूर हो गया है। इस पीड़ा के कारण वह लगातार कई सप्ताह तक सो नहीं सका था। इस वक्त वह पीड़ा बिलकुल गायब हो गयी है। उसे अपने कष्ट से मुक्ति पाने की बेहद प्रसन्नता हुई।

युक्तेश्वर गिरि के श्रीरामपुर स्थित आश्रम में मुकुन्द के अलावा अन्य कई शिष्य गुरुदेव की सेवा में लगे रहते थे। इनमें अधिकांश क्रियायोग की शिक्षा लेने के लिए आश्रम में आते-जाते थे। मुकुन्द ने अपने सहपाठी दिजेन से कहा कि तुम मेरे गुरुदेव के पास चलो। वे तुम्हें क्रियायोग की शिक्षा देंगे। इससे ईश्वरीय आन्तरिक विश्वास द्वारा द्वैतवादी खलबली को शान्ति प्राप्त होगी।

मुकुन्द के आह्वान पर दिजेन भी आश्रम में आया। युक्तेश्वरजी की कृपा हुई। मुकुन्द क्रियायोग में साधना करते-करते उन्नत अवस्था प्राप्त कर चुका था। अक्सर उसे गुरुजी का संदेश अथवा किसी घटना की सूचना अन्तर्देश से प्राप्त हो जाती थी।

एक दिन मुकुन्द और दिजेन शाम के समय जब आश्रम में आये तब उन्हें कन्हाई नामक एक बालक ने सूचना दी—"गुरुदेव यहाँ नहीं हैं। किसी आवश्यक कार्य से कलकत्ता चले गये हैं।"

दूसरे दिन मुकुन्द को एक पोस्टकार्ड मिला। गुरुदेव ने लिखा था—"मैं बुधवार को प्रातःकाल कलकत्ता से प्रस्थान करूँगा। तुम और दिजेन प्रातःकाल ९ बजे श्रीरामपुर स्टेशन पर मिलो।"

बुधवार को ८.३० बजे मुकुन्द के मन में गुरुदेव द्वारा संचालित टेलीपैथी द्वारा समाचार मिला—"मैं रुक गया हूँ। ९ बजे की गाड़ी पर मत पहुँचो।"

यह समाचार जब मुकुन्द ने दिजेन को सुनाया तब उसने कहा—"अपनी अन्तर्ध्वनि को रखे रहो। मैं लिखित बातों पर अधिक विश्वास करता हूँ।" इतना कहकर दिजेन स्टेशन की ओर रवाना हो गया।

कमरा जरा अंधकार पूर्ण था। खिड़की से बाहर की ओर देखते समय मुकुन्द को सूर्य के प्रकाश में सहसा गुरुदेव की मूर्ति दिखाई दी। तुरंत श्रद्धा के साथ वह घुटनों के बल बैठ गया। उनका वस्त्र हवा में लहराता हुआ मुकुन्द के शरीर को स्पर्श करने लगा। गुरुदेव ने कहा—"तुमने मेरा मनः संदेश पढ़ लिया। कलकत्ते का काम पूरा हो गया। अब मैं १० बजे वाली गाड़ी से आ रहा हूँ।"

मुकुन्द अवाक् होकर गुरुदेव को एकटक देखने लगा। उसके लिए यह अद्भुत दृश्य था। उसे इस तरह देखते देख युक्तेश्वर ने कहा—"यह मेरा भूत नहीं, हाड़-माँस वाला शरीर है। ईशाज्ञा से मैं तुमको यह अनुभव प्रदान कर रहा हूँ जो पृथ्वी पर दुर्लभ है। स्टेशन पर मिलो। तुम और दिजेन मुझे इसी पोशाक में देखोगे।"

स्टेशन आने पर दिजेन ने कहा—"गुरुदेव न तो ९ बजे वाली गाड़ी से आये और न ९.३० बजे वाली से।"

मुकुन्द ने कहा—"गुरुदेव १० बजे वाली गाड़ी से आ रहे हैं।"

दिजेन को विश्वास नहीं। मुकुन्द ने कहा—"वह देखो, गाड़ी आ रही है। उनके

प्रकाश से सम्पूर्ण गाड़ी आलोकित है।'' इसके बाद उसने गुरुदेव किस पोशाक में रहेंगे, इस बात का उल्लेख किया।

दिजेन ने कहा—''तुम दिन-रात इसी तरह का सपना देखते रहो। मैं चला।''

मुकुन्द ने कहा—''केवल इस गाड़ी को देख लो। वह देखो, गुरुदेव गाड़ी से उतर रहे हैं।''

थोड़ी देर में चलकर गुरुदेव दोनों के पास आकर खड़े हो गये। दिजेन का आनन लज्जा से झुक गया।

क्रियायोग की चर्चा करते हुए युक्तेश्वर गिरि ने एक दिन मुकुन्द से कहा—''मेरे परमगुरु (गुरु के गुरु यानी योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी के गुरु महावतार बाबाजी) ने गुरुदेव को बताया था—इस १९वीं शताब्दी जो क्रियायोग तुम्हें दे रहा हूँ, वह उसी विज्ञान का पुनरुज्जीवन है जिसे भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया था। बाद में जिसे पातंजलि, ईसामसीह, सेण्ट जान तथा कबीर ने प्राप्त किया था। गीता में इसका उल्लेख है

अपान वायु में प्राणवायु के हवन के द्वारा और प्राणवायु में अपान वायु के हवन के द्वारा योगी प्राण और अपान, दोनों की गति को निरुद्ध कर देता है। इस प्रकार वह प्राण को हृदय से मुक्त कर लेता है और प्राणशक्ति पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है यानी योगी फेफड़ों और हृदय की क्रिया को शान्त कर प्राण की अतिरिक्त पूर्ति के द्वारा शरीर के अपक्षय को रोक देता है। इस प्रकार वह अपक्षय और प्रवृद्धि को प्रभावहीन बनाते हुए प्राणशक्ति पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है।''

आगे आपने कहा—''क्रियायोगी अपनी प्राणशक्ति को मेरुदण्ड के छः चक्रों (आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान और मूलाधार) जो विश्व पुरुष के प्रतीक राशिचक्र की बारह राशियों के समान है, में मानसिक शक्ति के द्वारा ऊपर या नीचे की ओर प्रवाहित करता है। मनुष्य के संवेदनशील मेरुदण्ड के चारों ओर प्राणशक्ति की आधा मिनट की परिक्रमा से मनुष्य के विकास में सूक्ष्म प्रगति होती है। साधारण गति से जो आध्यात्मिकता एक वर्ष में प्रकट होती है, वह आधे मिनट के क्रिया-अभ्यास के समान होती है। यह याद रखना चाहिए कि अनेक मार्गभ्रष्ट उत्साहोन्मत्त व्यक्तियों द्वारा सिखाये जानेवाले अवैज्ञानिक श्वास-व्यायामों से क्रियायोग का कोई सम्बन्ध नहीं है। फेफड़ों में बलपूर्वक श्वास को रोक रखने की चेष्टा अप्राकृतिक तथा निस्सन्दिग्ध रूप से कष्टकर भी है। इसके विपरीत आरंभ से ही क्रियायोग के अभ्यास के बाद शान्ति की भावना की और मेरुदण्ड में पुनरुज्जीवनी शक्ति के प्रभाव की सुखद अनुभूति होती है।''

योगसूत्र के रचनाकार महर्षि पातंजलि ने योग को दो श्रेणियों में विभक्त किया है— प्रथम समाधियोग और दूसरा क्रियायोग। जिस साधक का चित्त बहिर्मुख हो, उसे क्रियायोग करना चाहिए और जिसका चित्त अन्तर्मुख हो, वह समाधि-योग कर सकता

है। क्रियायोग के रूप में तपस्या, स्वाध्याय यानी जप, सद्ग्रंथ पाठ तथा भजन करना चाहिए। इन तीनों साधनों का समान रूप से या मुख्य रूप से अनुष्ठान होने पर क्रियायोग सिद्ध होता है। चित्त की प्रकृति के अनुसार किसी की साधना-तपस्या मुख्य रहती है। अन्य दोनों साधनों के अंग भी गौण रूप में उसमें रहते हैं। किसी की साधना में स्वाध्याय की प्रधानता रहती है अथवा भजन की, परन्तु गौण रूप में अन्य दो अंगों का सन्निवेश रहता है। दीर्घकाल तक यथाविधि अपने-अपने गुरु द्वारा निर्दिष्ट प्रक्रिया से क्रियायोग के मार्ग में अग्रसर हो सकने पर उसके प्रभाव से चित्त क्रमशः बहिर्मुखता त्यागकर शान्त भाव धारण करता है और अन्तर्मुख हो जाता है। इस समय साधक समाधि-योग का अभ्यास कर सकता है।

क्रियायोग का मुख्य फल है चित्त में स्थित अज्ञानादि सभी क्लेशों को सूक्ष्म करना। साधक के हृदय में अनन्त क्लेश संस्कार के रूप में संचित रहते हैं। क्रियायोग का समुचित ढंग से अनुष्ठान करने पर सभी क्लेश सूक्ष्म होकर निर्बल हो जाते हैं। क्रियायोग के अलावा अन्य किसी उपाय से उसे दबाया नहीं जा सकता।

क्रियायोग से कितना लाभ होता है, इसका उल्लेख करते हुए योगानन्दजी कहते हैं—''साढ़े आठ घंटे में एक हजार बार क्रिया का अभ्यास एक दिन में एक हजार वर्ष के स्वाभाविक विकास तुल्य है यानी ३ लाख ६५ हजार वर्षों का विकास एक वर्ष में। क्रियायोगी अपनी आत्मप्रचेष्टा के द्वारा तीन वर्ष में वही परिणाम प्राप्त कर लेता है जिसे प्राकृतिक रूप से प्राप्त करने में १० लाख वर्ष लगते हैं। गुरु के मार्ग-दर्शन से ऐसे योगियों ने सावधानी पूर्वक अपने शरीर और मस्तिष्क को इस प्रकार तैयार किया है कि वे उग्र अभ्यास से उत्पन्न शक्ति सहन कर सकें।''

+ + + +

मुकुन्द के पिता इधर उस पर दबाव डालने लगे कि वह रेलवे की नौकरी में लग जाय। लेकिन इस दिशा में रुचि न रहने के कारण वह टाल-मटोल करता रहता। आखिर एक दिन अपनी समस्या युक्तेश्वरजी के सामने प्रकट करते हुए उनसे आग्रह किया कि वे उसे संन्यास दें। गोकि इसके पूर्व वह अपने मन की इच्छा को निरन्तर उनके सामने प्रकट करता रहा।

उस दिन गुरुजी ने न जाने क्या सोचा और कुछ देर चुप रहने के बाद कहा—''ठीक है। कल तुम्हें संन्यास दूँगा।''

वृहस्पतिवार, जुलाई, सन् १६१४ के दिन युक्तेश्वरजी ने सिल्क के एक टुकड़े को गेरुआ रंग में रंगकर मुकुन्द को ओढ़ा दिया। फिर उन्होंने कहा—''एक दिन तुम्हें पश्चिम जाना है। वहाँ के लोगों को रेशमी वस्त्र बहुत पसन्द है। यही वजह है कि तुम्हें रेशमी वस्त्र से सजा रहा हूँ। अब तुम्हें अपनी रुचि के अनुसार नाम चुन लेने का अधिकार देता हूँ।''

मुकुन्द ने कहा—"योगानन्द।"

गुरुदेव ने कहा—"तथास्तु, अब से तुम्हारे पारिवारिक नाम मुकुन्दलाल घोष के स्थान पर तुम 'स्वामी सम्प्रदाय' की 'गिरि' शाखा के 'योगानन्द गिरि' के नाम से जाने जाओगे।"

युक्तेश्वरजी के चरणों के निकट साष्टांग प्रणाम करते हुए योगानन्द ने कहा—"आज का दिन गुरु-कृपा से मेरे जीवन का महत्त्वपूर्ण दिन है।"

युक्तेश्वर ने कहा—"अब तुम्हें कार्यक्षेत्र में उतरना है। सबसे पहले यहाँ के बालकों को योग-शिक्षा देनी है ताकि इसके माध्यम से उनमें मानवता का विकास हो। प्रचलित विषयों के अलावा योग-ध्यान पर भी नजर रखनी होगी ताकि बालकों में आध्यात्मिक विकास हो सके।"

योगानन्द ने कहा—"गुरुदेव, यह कार्य मेरी रुचि के अनुकूल है। आपका आशीर्वाद मिलता रहा तो मैं सहर्ष इस कार्य को करने का प्रयत्न करूँगा।"

योगानन्द ने बंगाल के एक नगण्य गाँव में केवल सात बालकों को लेकर कार्य प्रारंभ किया। यह सन् १९१७ ई० की बात है। इसके बाद कासिम बाजार के महाराज सर मणीन्द्रचन्द्र चौधरी के दान से रांची में 'योगदा सत्संग ब्रह्मचर्य विद्यालय' की स्थापना हुई। यहाँ सामान्य शिक्षा के अलावा योग पर अधिक ध्यान दिया जाता था। आश्चर्य की बात है कि प्रथम वर्ष में इस विद्यालय में भर्ती होने के लिए दो हजार आवेदन-पत्र प्राप्त हुए। लेकिन वहाँ केवल १०० विद्यार्थियों के लिए व्यवस्था थी। शेष बच्चों के लिए केवल दिन की शिक्षा व्यवस्था की गयी। इस प्रकार विद्यालय क्रमशः उन्नति करता रहा।

एक दिन बाल मण्डली को लेकर योगानन्द विद्यालय से दूर एक पहाड़ी पर सैर कराने के लिए ले गये थे। वहीं एक बालक ने सहसा प्रश्न किया—"स्वामीजी, कृपया यह बताइये कि क्या मैं वैराग्य-पथ पर सदा आपके साथ बना रहूँगा?"

योगानन्द की अतीन्द्रिय शक्ति ने जवाब दिया—"नहीं बच्चे, तुम बलपूर्वक ले जाये जाओगे और बाद में तुम्हारी शादी हो जायगी।"

बालक ने तेवर बदलकर कहा—"ऐसा नहीं हो सकता। मेरे मरने पर ही लोग मुझे यहाँ से ले जा सकते हैं।"

लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उसके अभिभावक आये और उसे जबरन अपने साथ ले गये। बाद में उसका विवाह हो गया।

इस बालक के प्रश्न को सुनकर काशी नामक बालक को अपने भविष्य के बारे में उत्सुकता हुई। उसने योगानन्द से प्रश्न किया—"मेरे भाग्य में क्या है?"

योगानन्द ने कहा—''शीघ्र ही तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।'' इतना कहने के बाद योगानन्द चौंक उठे। मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए था। इसके पहले अन्य लड़के अपने बारे में सवाल करें, वे तुरंत अपने कमरे में चले गये। अन्य लड़के प्रश्न करते रह गये, पर उन्होंने किसी को कोई जवाब नहीं दिया।

विद्यालय से लौटने के बाद काशीराम पुनः योगानन्द के कमरे में आया और प्रश्न किया—''अगर मैं मर जाऊँ और पुनर्जन्म लूँ तो क्या आप मुझे खोज निकालेंगे और पुनः आध्यात्मिक मार्ग पर ले आयेंगे?''

इस प्रश्न का उत्तर सहसा योगानन्द नहीं दे सके। कुछ देर बाद उन्होंने कहा—''अगर परमपिता मेरी सहायता करेंगे तो तुम्हें खोजने का प्रयत्न करूँगा।''

योगानन्द को कुछ दिनों के लिए बाहर जाना था। सहसा उन्हें बोध हुआ कि अगर काशी विद्यालय से बाहर न जाय तो उसका संकट टल सकता है। उसे बुलाकर योगानन्द ने कहा—''मैं कुछ दिनों के लिए बाहर जा रहा हूँ। मेरी अनुपस्थिति में तुम बाहर कहीं मत जाना।''

योगानन्द के जाने के चार दिन बाद काशी के पिता उसे घर ले जाने के लिए आये, पर वह जाने को राजी नहीं हुआ। पिता ने कहा—''तेरी माँ की तबीयत ठीक नहीं है। वह एक बार तुझे देखना चाहती है।''

इस बात पर भी जब काशी जाने को राजी नहीं हुआ तब पिता ने कहा कि मैं तुझे पुलिस की सहायता से ले जाऊँगा तब देखूँगा कि तू कैसे नहीं चलता। पुलिस के विद्यालय में आने से यहाँ की अप्रतिष्ठा होगी। यह सोचकर वह पिता के साथ चला गया। कलकत्ता जाकर बाजार का चाट खाने पर उसे हैजा हुआ और मर गया।

इधर जब योगानन्द विद्यालय आये तब सारा समाचार उन्हें ज्ञात हुआ। वे तुरंत काशी को ले आने के लिए कलकत्ता रवाना हो गये। जब हावड़ा-पुल पर से रवाना हो रहे थे तब उन्होंने काशी के पिता को अशौच अवस्था में देखा। तुरंत गाड़ी पर से कूदकर बोले—''तुम हत्यारे हो। तुमने मेरे काशी के प्राण जिद्दवश ले लिया।''

काशी के निधन के छः मास तक योगानन्द योगक्रिया का प्रयोग करते रहे। एक दिन सबेरे कलकत्ता में टहलते हुए अपनी आदत के अनुसार इन्होंने हाथ को ऊपर उठाया। तुरंत रेडियो की तरह उँगलियों में तरंगें महसूस हुईं। योगानन्द वहीं गोल चक्कर काटते हुए यह महसूस करने लगे कि तरंगें किसी दिशा से आ रही हैं। दिशा का ज्ञान होते ही उस ओर बढ़ गये तो तरंगों का विकिरण तेजी से होने लगा। इसके बाद उस गली में तेजी से बढ़ते गये। सहसा एक मकान के पास आते ही उनके पैर अटक गये। योगानन्द को समझते देर नहीं लगी कि इसी मकान में किसी माता के गर्भ में काशी है।

दरवाजा खटखटाने पर गृहस्वामी बाहर निकल कर सवालिया सूरत में इन्हें देखने

लगे। योगानन्द ने पूछा—"कृपया मुझे यह बतायें कि क्या आपकी पत्नी छः माह से गर्भवती है?"

उन्होंने इस बात को स्वीकार किया तब योगानन्द ने काशी के बारे में सारी बातें कहने के बाद कहा—"आपको एक गौर वर्ण का पुत्र प्राप्त होगा जिसका मुँह चौड़ा होगा। ललाट पर भ्रमरी रहेगी। बड़ा होने पर उसकी अध्यात्म के प्रति बेहद रुचि होगी।"

बाद में पता चला कि गृहस्वामी ने योगानन्द के इस बात पर विश्वास करके लड़के का नाम काशी रखा था।

+ + + +

एक दिन गुरुदेव युक्तेश्वर ने कहा—"योगानन्द, अब समय आ गया है। तुम्हें अमेरिका जाना है जहाँ क्रियायोग का ज्ञान उचित व्यक्तियों को देना है।"

योगानन्द को इस बात की जानकारी थी कि दीक्षा लेने के पूर्व से ही गुरुदेव उन्हें पश्चिम जाने की प्रेरणा देते रहे। अतएव इस समय दिया गया यह आदेश समयानुकूल है। निश्चित रूप से यात्रा की सारी व्यवस्था गुरुदेव की ओर से होगी। योगानन्द ने कहा—"आपका आदेश शिरोधार्य है। मैं पिताजी से भी आज्ञा ले लूँ।"

युक्तेश्वर मुस्कराये। बोले—"अगर वे विरोध करेंगे तो क्या यात्रा स्थगित कर दोगे?"

योगानन्द ने कहा—"संभवतः वे ऐसे महान् कार्य के लिए विरोध नहीं करेंगे। अगर ऐसा संभव हुआ तो मैं गुरु के आदेश को महत्त्व दूँगा, क्योंकि अब मैं संन्यासी हूँ।"

दूसरे दिन जब यह समाचार पिताजी को सुनाया गया तो वे नाराज होकर बोले–"तुम अमेरिका नहीं जा सकते। यह मत समझना कि मैं तुम्हें यात्रा–व्यय दूँगा।"

योगानन्द ने कहा–"मैं आपसे यात्रा–व्यय माँग कहाँ रहा हूँ? केवल अनुमति के लिए निवेदन किया है। गुरुदेव की इच्छा जब वहाँ भेजने के लिए है तब सारी व्यवस्था भगवद्कृपा से वे ही करेंगे।"

ठीक उन्हीं दिनों योगानन्द के नाम अमेरिका में आयोजित एक धार्मिक सम्मेलन में भाग लेने का निमंत्रण–पत्र मिला। यह आयोजन बोस्टन में होनेवाला था। इस पत्र को पाकर योगानन्द विस्मय से अवाक् रह गये। उसी दिन गुरुदेव के पास आये।

सारी बातें सुनने के बाद युक्तेश्वर ने कहा—"तुम्हारे लिए यह सुनहला अवसर है। अगर चूक गये तो फिर कभी नहीं जा सकोगे।"

योगानन्द ने अपनी मजबूरी प्रकट करते हुए कहा—"मुझे सार्वजनिक रूप में व्याख्यान देने का अभ्यास नहीं है। अंग्रेजी में तो बोल ही नहीं सकता।"

‘‘अंग्रेजी हो या न हो, पर योगक्रिया पर तुम्हारा भाषण लोग बड़े मनोयोग से सुनेंगे।’’

घर वापस आने पर योगानन्द ने देखा कि पिताजी का क्रोध ठंडा हो गया है। उन्होंने एक बड़ी रकम का चेक उसे देते हुए कहा—‘‘मैं तुम्हें यह रकम पिता होने के नाते नहीं, बल्कि लाहिड़ी महाशय का शिष्य होने के नाते दे रहा हूँ। तुम अमेरिका जाओ और वहाँ क्रियायोग का प्रचार करो।’’

पिताजी से यात्रा व्यय मिल जाने के बाद योगानन्द यात्रा की तैयारी करने लगे। इसी बीच एक दिन सदर दरवाजे पर खड़खड़ आवाज सुनकर उन्होंने दरवाजा खोला तो सामने एक कौपीनधारी युवक को देखा। कौपीनधारी बाबा कमरे के भीतर आये। पल भर में योगानन्द ने आगन्तुक को पहचान लिया। आप परमगुरु के गुरु यानी बाबाजी थे। योगानन्द के मन की भावना को भाँपकर उन्होंने कहा—‘‘हाँ, मैं बाबाजी हूँ। तुम्हें यह आदेश देने आया हूँ कि अपने गुरु की आज्ञा मानकर तुम शीघ्र अमेरिका चले जाओ। तुम्हें कभी कोई परेशानी नहीं होगी।’’

इतना कहने के बाद वे अन्तर्धान हो गये। बाबाजी का आदेश पाने के बाद योगानन्द बिलकुल निर्भय हो गये। पासपोर्ट, बीसा आदि की व्यवस्था कर निश्चित दिन अमेरिका के लिए रवाना हो गये। उन्हें विश्वास था कि मार्ग में किसी प्रकार का संकट आने पर गुरु और बाबाजी सहायता करेंगे। योगानन्द को इस विश्वास का फल जहाज में मिला।

बातचीत के सिलसिले में योगानन्द ने जब जहाज के सहयात्रियों को बताया कि वे अमेरिका में आयोजित धर्म-सम्मेलन में भाग लेने जा रहे हैं तब सभी को उत्सुकता हुई। सहयात्रियों में एक ने अनुरोध किया—‘‘स्वामीजी, गुरुवार की रात्रि को आप अपने प्रवचनों से उपकृत करें। विषय मेरी समझ से ‘‘जीवन युद्ध और उस पर विजय पाने के उपाय’’ रखें तो हमें लाभ होगा।’’

योगानन्द की हालत खराब हो गयी। ऐसे कठिन विषय पर अंग्रेजी में धारा-प्रवाह कैसे बोल सकेंगे? बुधवार को अपने केबिन में बोलने का अभ्यास करने लगे। रह-रहकर उलझ जाते रहे। धाराप्रवाह बोलते समय अपने मन की बात स्पष्ट नहीं कर पा रहे थे। आखिर गुरुवार की रात्रि आ गयी। जहाज के हाल में लोग बैठ गये। योगानन्द भाषण देने के लिए खड़े हुए, पर उनके मुँह से एक शब्द नहीं निकला। लगा जैसे होंठ आपस में चिपक गये हैं। सामने बैठे कई दर्जन श्रोता योगानन्द की परेशानी गौर से देख रहे थे। दस मिनट तक योगानन्द को चुप रहते देख सभी श्रोता हँस पड़े।

शर्म से क्षुब्ध होकर योगानन्द अपने गुरु को स्मरण करते हुए प्रार्थना करने लगे। तभी उनकी अन्तरात्मा से आवाज आयी—‘‘तुम बोल सकते हो। बोलना शुरू करो।’’

इस प्रेरणास्पद संदेश को पाते ही योगानन्द की जड़ता क्षण मात्र में दूर हो गयी। गुरु-शक्ति ने उन्हें धारा-प्रवाह भाषण देने के लिए प्रेरित किया। उन्हें अपने ऊपर आश्चर्य हो रहा था कि वे कैसे बोलते चले जा रहे हैं। भाषण समाप्ति के बाद उन्होंने श्रोताओं से अपने भाषण के बारे में पूछा। लोगों ने कहा कि शुद्ध अंग्रेजी में दिया गया उनका भाषण अपूर्व और अविस्मरणीय रहा। मन ही मन गुरुचरणों में प्रणाम करते हुए योगानन्द ने कहा कि इसी प्रकार सहायता करते रहें।

बोस्टन की धर्म-सभा में भी अपने भाषण के माध्यम से योगानन्द ने श्रोताओं को प्रभावित किया। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि यह सब गुरुकृपा से हो रहा है। मैं तो अंग्रेजी में ठीक से बोलने में हिचकता रहा। गुरु का आशीर्वाद निरन्तर साथ दे रहा है। गुरु ने जिस महान् कार्य के लिए उन्हें अमेरिका भेजा है, अब उस दिशा में कार्य करने लगे। सन् १९२० से १९३० तक हजारों अमेरिकी जनता ने आपकी क्रियायोग पद्धति से आकृष्ट होकर शिष्यत्व ग्रहण किया। आपने स्थानीय साधकों को संस्था का अध्यक्ष बनाया और स्वयं अमेरिका के विभिन्न शहरों में भाषण देते रहे। इसी बीच कैलिफोर्निया में 'सेल्फ रियलाइजेशन फेलोशिप— योगदा सत्संग सोसायटी ऑफ इण्डिया' का अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय की स्थापना उन्होंने की। इस संस्था के माध्यम से अध्यात्म तथा क्रियायोग का प्रचार होने लगा।

इन सब कार्यों में वे इस तरह लगे रहे कि कब पन्द्रह वर्ष गुजर गये, इसका पता नहीं चला। ठीक इन्हीं दिनों अन्तरात्मा से गुरुदेव की वाणी सुनाई दी—"भारत लौट आओ। पिछले पन्द्रह वर्ष तक मैंने इन्तजार किया। मैं शीघ्र शरीर त्याग कर प्रस्थान करनेवाला हूँ। योगानन्द, अब देर मत करो। शीघ्र चले आओ।"

गुरुदेव के इस आदेश को उन्होंने अपने एक मित्र को सुनाया। उसने योगानन्द की यात्रा की सारी व्यवस्था कर दी। योगानन्द वापस जा रहे हैं जानकर अनेक छात्रों ने मिलकर विदाई समारोह का आयोजन किया। वे अमेरिका से ९ जून, सन् १९३५ के दिन रवाना होकर भारत आ गये। बम्बई से कलकत्ता आने पर योगानन्द का अभूतपूर्व स्वागत हुआ। यहाँ से वे अपने अमेरिकी शिष्यों के साथ श्रीरामपुर स्थित गुरुदेव के आश्रम में आये। अमेरिका से गुरुदेव के लिए अनेक उपहार ले आये थे जिसे योगानन्द ने उन्हें समर्पित कर दिया।

इसके बाद गुरुदेव से अनुमति लेकर अपने शिष्यों के साथ वे भारत के विभिन्न स्थानों में भ्रमण करने लगे। कुछ दिनों बाद योगानन्द के गुरुभाई श्री अतुलचन्द्र राय के पास एक तार पहुँचा—"जल्द पुरी आश्रम आ जाइये।"

उन दिनों युक्तेश्वरजी अपने पुरी आश्रम में थे। इस तार की सूचना योगानन्द को अतीन्द्रिय-शक्ति ने दी। इस तार का क्या अर्थ है, समझते ही वे धम्म से जमीन पर बैठ गये। भगवान् से गुरुदेव के जीवन-दान के लिए प्रार्थना करने लगे। थोड़ी देर बाद

वे कलकत्ता स्थित घर से स्टेशन की ओर रवाना हुए तो उनके अन्तर्मन से आवाज आयी—''आज रात पुरी मत जाओ। तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार्य नहीं है।''

''हाय भगवान्'' कहते हुए योगानन्द बेचैन हो उठे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि अंतिम समय में मेरा उपस्थित रहना भगवान् को मंजूर नहीं है। दूसरे दिन जब वे पुरी के लिए रवाना हुए तब मार्ग में श्री युक्तेश्वर प्रकट हो गये। उनकी मुद्रा गंभीर थी।

''क्या सब कुछ समाप्त हो गया?'' विनयपूर्वक शून्य में प्रणाम करते हुए योगानन्द ने पूछा।

उन्होंने सिर हिलाया और फिर शून्य में वे धीरे-धीरे अन्तर्धान हो गये। पुरी स्टेशन पर उतरकर योगानन्द चारों ओर देख रहे थे, तभी एक व्यक्ति पास आकर बोला—''क्या आपने गुरुदेव के देहत्याग का समाचार सुन लिया है?''

इतना कहकर वह व्यक्ति भीड़ में गायब हो गया। बोझिल मन से योगानन्द पुरी आश्रम में आये। सामने गुरुदेव का निष्प्राण शरीर जीवन्त लग रहा था। योगानन्द चीख उठे—''बंगाल का शेर चला गया।''

९ मार्च को उनका निधन हो गया था। १० मार्च के दिन संन्यासियों की परम्परा के अनुसार श्री युक्तेश्वर को समाधि दे दी गयी।

गुरुदेव के निधन के पश्चात् योगानन्दजी भारत के विभिन्न संतों से मिलते रहे। श्री आनन्दमयी माँ, निराहार योगिनी, महात्मा गाँधी आदि इनमें प्रमुख रहे। सन् १९३८ में दक्षिणेश्वर में उन्होंने योगदा आश्रम स्थापित किया। इसके बाद वे पुनः पश्चिम चले गये और कई देशों में भाषण देने के बाद अमेरिका चले आये। यहाँ आकर १९४० से १९५१ तक वे अनेक लोगों को योगक्रिया के बारे में प्रशिक्षण देते रहे।

७ मार्च, सन् १९५२ के दिन भारतीय राजदूत श्री विनय रंजन सेन के सम्मान में आयोजित समारोह में भाषण देने के बाद योगानन्द ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। ७ मार्च से २७ मार्च तक उनका पार्थिव शरीर जनता के दर्शन के लिए रखा गया था। इसके बाद २७ मार्च को उन्हें समाधि दे दी गयी। स्वामी विवेकानन्द के पश्चात् योगानन्दजी ने भारतीय अध्यात्म का प्रचार पश्चिमी देशों में करके यह प्रमाणित कर दिया कि इस क्षेत्र में भारत अन्य देशों से आगे है।

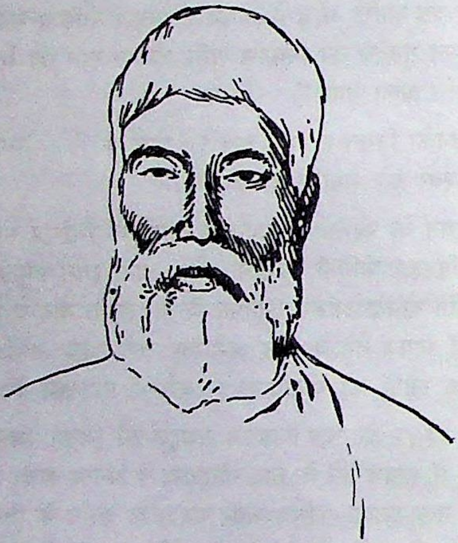

साधु दुर्गाचरण नाग

साधु दुर्गाचरण नाग

बीसवीं शताब्दी के चतुर्थ दशक की बात है। उन दिनों कलकत्ता शहर आज की तरह जनाकीर्ण नहीं था। कालीघाट के आगे भयंकर जंगलों का सिलसिला बहुत दूर तक फैला हुआ था। रेलगाड़ी के अस्तित्व का पता नहीं था। राह चलते मुसाफिरों को चोर-डाकू लूट लेते थे। अधिकतर व्यापार जल-मार्ग से होता रहा।

सेठ राजकुमार और हरिचरण पाल की गद्दी की ख्याति पूरे बंगाल में थी। इस गद्दी में दीनदयाल नाग कारिन्दा थे। नाग महाशय कलकत्ता से नाव पर माल लादकर गन्तव्य शहरों के व्यापारियों के यहाँ पहुँचाते थे। इनकी ईमानदारी की फर्म में धाक थी।

नाग महाशय कितने धर्मभीरु और ईमानदार थे, इसका अंदाजा एक घटना से लगाया जा सकता है। एक बार आप माल नाव पर लदवाकर नारायणगंज जा रहे थे। चलते-चलते एक जगह शाम हो गयी। नदी किनारे से कुछ दूर बस्ती तथा किनारे के समीप एक भवन देखकर उन्हें बस्ती का आभास हुआ। उन्होंने मल्लाहों से लंगर डालने का आदेश दिया।

सभी मल्लाह नीचे उतरकर रात के भोजन की तैयारी करने लगे। दूसरे दिन हाजत के लिए दीनदयाल बड़े मकान के पीछे चले गये। मकान में कोई रहता है, इसका आभास उन्हें नहीं हुआ। उन्हें लगा जैसे यह भवन विरान है। आदत के अनुसार हाथ मटियाने के लिए एक जगह की मिट्टी नाखून से खरोचने लगे। सहसा एक गोल-सा सिक्का हाथ लगा। गौर से देखने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यह मोहर है। उत्सुकतावश वे उस स्थान की मिट्टी हटाने लगे। नीचे उन्हें मोहरों से भरा घड़ा नजर आया। तुरंत उस पर मिट्टी डालकर नाव पर चले आये।

नाव पर आते ही उन्होंने हुक्म दिया—''जल्दी से नाव खोल दो।''

मल्लाहों को आश्चर्य हुआ। आखिर इतनी जल्दी क्यों? उन लोगों ने कहा—''बाबू, अभी सभी लोग फरागत से खाली नहीं हुए हैं। कुछ देर बाद चलेंगे।''

नाग महाशय घबड़ाकर बोले—''ना, ना। तुरंत नाव खोल दो। आगे किसी जगह हाजत करना। यहाँ खतरा है। जल्दी करो। यहाँ रुकने पर मुसीबत आ जायेगी।''

नाग महाशय क्यों इतना घबड़ा गये हैं, आखिर कौन सी मुसीबत आ जायगी, इसे कोई समझ नहीं सका। इच्छा न रहते हुए भी नाव खोलना पड़ा। काफी दूर जाकर पुनः लंगर डाला गया जहाँ लोग हाजत करने गये।

दीनदयाल चाहते तो मोहरों से भरे घड़े को हजम कर सकते थे। कम-से-कम इस नौकरी से छुट्टी पाकर शेष जीवन आराम से गुजार सकते थे। गरीबी से तो मुक्ति मिल ही जाती। लेकिन स्वभाव से धर्मभीरु थे। पराया धन को मिट्टी समझते थे। यही वजह है कि उनके मालिकों का इन पर गहरा विश्वास था।

ऐसे चरित्रवाले व्यक्ति के यहाँ २१ अगस्त सन् १८४६ के दिन एक बालक ने जन्म लिया। अन्नप्राशन के दिन उसका नाम दुर्गाचरण रखा गया।

दीनदयाल तत्कालीन बंगाल के नारायणगंज जिले के देवभोग गाँव के निवासी थे। उनका पूरा परिवार गाँव में रहता था। केवल वे अकेले नौकरी के सिलसिले में कलकत्ता में रहते थे।

दुर्गाचरण की उम्र जिन दिनों आठ वर्ष की थी, उन्हीं दिनों उनकी माँ का निधन हो गया। बचपन के शेष दिन बुआ की गोद में गुजारने लगे। बुआ से उन्हें इतना प्यार मिला कि वे उन्हें 'माँ' कहते थे।

शाम होते ही वे चटाई बिछाकर बुआ के साथ लेट जाते और आकाश में बिखरे तारों को देखकर कह उठते थे—"माँ, चलो हम लोग ताराओं के देश में चलकर रहें।"

चाँद को देखकर उससे खेलने के लिए मचल उठते थे तब बुआ उन्हें धार्मिक कथाएँ सुनाने लगती थीं। बचपन से भोला और शान्त स्वभाव का होने के कारण वह अपने हमजोलियों से कभी उलझा नहीं। अगर किसी मित्र से पीटे जाते तो घर आकर उसकी शिकायत नहीं करते थे। नारायणगंज में केवल एक ही स्कूल था जहाँ दर्जा तीन तक की शिक्षा दी जाती थी। आगे की शिक्षा के लिए गाँव के बालकों को ढाका शहर जाना पड़ता था जो नारायणगंज से चार मील दूर था। सबेरे खा-पीकर सभी बच्चे आठ बजे रवाना हो जाते थे।

ढाका के स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के बाद दुर्गाचरण उच्चशिक्षा के लिए कलकत्ता आये। कलकत्ता आने के पूर्व बुआजी के काफी दबाव के कारण उन्हें विवाह करना पड़ा था।

विवाह के पश्चात् दुर्गाचरण के स्वभाव में विचित्र परिवर्तन हो गया। बुआजी उसका आचरण देखकर मन ही मन झुँझलाती थीं। रात को एक ही बिस्तर पर पत्नी के साथ सोना पड़ेगा, यह सोचकर वे दिन ढलते ही पेड़ पर जा बैठते थे। नीचे उतरने का नाम नहीं लेते थे। जब बुआ अपने साथ सोने का वादा करतीं तब वे पेड़ से नीचे उतरते थे। बुआ का ख्याल था कि आगे चलकर जब पत्नी के प्रति आकर्षण बढ़ेगा

तब सब ठीक हो जायगा। पर ऐसा होने के पहले ही पत्नी का स्वर्गवास हो गया। दुर्गाचरण को इससे मुक्ति मिल गयी।

कलकत्ता आकर वे पिताजी के साथ रहते हुए उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगे। इस बीच होमियोपैथ चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करते रहे। प्रैक्टिस के लिए घर-घर जाकर मुफ्त में इलाज करने लगे। लड़का फोकट में इलाज करे, यह बात पिता को पसन्द नहीं आयी। उन्होंने विरोध प्रकट किया। लेकिन दुर्गाचरण ऐसे चिकने घड़े थे जिस पर उनकी बातों का कोई असर नहीं पड़ा। वे दुःखी लोगों का इलाज अपनी गाँठ की रकम खर्च करके करते रहे।

खाली समय में 'ब्राह्म-समाज' में जाकर केशवचन्द्र सेन का भाषण सुनते। पुराणों का अनुवाद पढ़ते या श्मशान जाकर गंगा किनारे बैठे संतों से धार्मिक विषयों पर बातचीत करते थे। एक बार एक अपरिचित ब्राह्मण ने इन्हें बताया कि महानिशा के दिन श्मशान में जप करने से साक्षात् ईश्वर का दर्शन होता है। उन्होंने ऐसा किया। जप करते-करते आपने शुभ्र ज्योति का दर्शन किया था। इस घटना के बाद आप अक्सर जप करने में मग्न हो जाते थे।

लड़के की यह गति देखकर दीनदयाल ने निश्चय किया कि इसका पुनर्विवाह कर दिया जाय। इस बात का प्रस्ताव आते ही दुर्गाचरण ने साफ इन्कार कर दिया। जैसे बाप थे वैसे बेटा। लड़के ने जब विवाह से इन्कार कर दिया तो वे अनशन करने लगे। अन्त में बाप की जीत हुई और दुर्गाचरण को राजी होना पड़ा।

विवाह के पश्चात् वे पुनः कलकत्ता चले आये। इच्छा न होते हुए भी फीस लेकर रोगियों की चिकित्सा करने लगे। चिकित्सा-कार्य के साथ-साथ उनका जप-ध्यान भी जारी रहा। इस प्रकार सात वर्ष निकल गये और तभी गाँव से समाचार आया कि बुआजी सख्त बीमार हैं।

यह सूचना मिलते ही वे तुरंत गाँव चले आये और बुआजी की सेवा करने लगे। काफी कोशिश करने पर भी वे बुआजी को बचा नहीं सके। मातृ-शोक का अनुभव दुर्गाचरण को नहीं हुआ था, पर बुआजी के निधन से उनकी दशा विक्षिप्त-सी हो गयी। दिन-रात श्मशान भूमि का चक्कर काटते या घाट किनारे गुमसुम बैठे रहते।

लड़के की यह दशा देखकर दीनदयाल चिन्तित हो उठे। उसे जबरन कलकत्ता ले आये। यहाँ आने पर दुर्गाचरण की मानसिक दशा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। आखिर एक दिन खिजलाकर बाप को कहना पड़ा—"तुझसे बड़ी आशाएँ थीं, पर तू तो दरवेश बनता जा रहा है।"

दुर्गाचरण में एक विशेषता थी। वे विरोध में पिता से कभी उलझते नहीं थे। जो मन में आया, उसे अवश्य करते थे। क्रमशः चिकित्सा-क्षेत्र में उनकी ख्याति बढ़ती गयी। पर अपनी आदतों पर वे अंकुश नहीं रख सके। गरीब-परिवारों का मुफ्त इलाज

तो करते ही थे, धनाढ्य-परिवारों से पर्याप्त रकम पाने पर निर्धारित पारिश्रमिक लेकर शेष रकम वापस कर देते थे। जहाँ उनकी आमदनी ३००-४०० रुपये मासिक होती, वहाँ केवल ३०-४० रुपये होती रही। कभी-कभी आवश्यकता से अधिक रकम प्राप्त होने पर उसे पिताजी को दे देते थे, फिर किसी गरीब की सहायता के लिए माँग लेते थे। एक बार मरीज देखने गये तो उस मरीज को अपना चद्दर दे आये। दूसरी बार किसी मरीज के पास खटिया नहीं थी तो अपने घर में रखी अतिरिक्त खटिया दे आये।

घर की हालत यह थी कि कभी बाप तो कभी बेटा अपने हाथ से भोजन बनाकर खाते रहे। फंलस्वरूप अक्सर इस कारण बाप-बेटा में तकरार हो जाती थी। इस परेशानी से बचने के लिए दुर्गाचरण ने गाँव से अपनी पत्नी को बुला लिया। स्थानाभाव की वजह से दूसरा मकान किराये पर लिया गया। दीनदयाल को यह देखकर प्रसन्नता हुई कि अब बहू के आ जाने के कारण लड़के में कुछ परिवर्तन होगा, पर उनकी आशा धूमिल हो गयी। दुर्गाचरण पहले की तरह भागवत-गीता-पाठ में मगन रहने लगे।

ठीक इन्हीं दिनों कुलगुरु कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य नाग-परिवार के अतिथि बने। इनसे दुर्गाचरण नाग ने सपरिवार शक्ति मंत्र की दीक्षा ली। दीक्षा के पश्चात् दुर्गाचरण की साधना और भी कठोर हो गयी। जप-ध्यान में भोर हो जाता था और अमावस के दिन उपवास रहकर गंगा किनारे जप करते-करते बेहोश हो जाते थे। यहाँ तक कि जप करते वक्त इतने तन्मय हो जाते कि एक बार नदी का ज्वार इन्हें बहा ले गया था। बाद में तैरकर किनारे आये थे।

इधर दीनदयालजी के बुढ़ापे ने उन्हें इतना कमजोर बना दिया कि वे काम करने में असमर्थ हो गये। दुर्गाचरण ने सोचा— अब पिताजी अर्थ-चिन्ता छोड़कर धर्म की ओर उन्मुख हों तो अच्छा हो। यह सोचकर उक्त फर्म में पितावाली नौकरी दुर्गाचरण करने लगे।

कुछ दिनों बाद पिताजी को चलने-फिरने में असमर्थ होते देख दुर्गाचरण ने उन्हें गाँव भेज दिया। पत्नी को भी उनके साथ भेजते हुए कहा—"अब तुम गाँव जाकर अपने श्वशुर की सेवा करो।"

इन लोगों के जाने के बाद दुर्गाचरण नये भवन को छोड़कर पुन: पहलेवाले मकान में आकर रहने लगे। ब्राह्म-समाज में आते-जाते रहने के कारण अपने मित्र सुरेशचन्द्र की जबानी इन्हें पता चला कि दक्षिणेश्वर में एक साधु हैं जो कंचन-कामिनी त्याग कर चुके हैं और उच्चकोटि के साधक हैं। दुर्गाचरण को उत्सुकता हुई। सुरेशचन्द्र के साथ दक्षिणेश्वर आये तो देखा— एक कमरे में चौकी पर पैर फैलाये एक संत बैठे हैं। वे परमहंस रामकृष्णजी थे। इन लोगों को देखते ही उन्होंने हाथ के इशारे से पास बुलाया। कमरे के भीतर प्रवेश करने के साथ ही सुरेशचन्द्र ने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। दुर्गाचरण ने आगे बढ़कर चरण-स्पर्श करना चाहा, पर उन्होंने स्पर्श करने नहीं

दिया। आपस में परिचय हो जाने के बाद रामकृष्णजी ने कहा—"जाओ, पंचवटी में ध्यान करो।"

दोनों ही युवक आधा घण्टा बाद जब वापस आये तब रामकृष्ण परमहंसजी ने कहा—"फिर आना।"

ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा से दोनों युवक एक सप्ताह बाद पुनः गये। इन्हें आया देखकर रामकृष्णजी ने कहा—"आ गये? अच्छा किया। मैं तो तुम लोगों के लिए ही यहाँ मौजूद हूँ।" इसके बाद नाग बाबू को अपने पास बैठाकर बोले—"डर किस बात का? तुम्हारी तो उच्चावस्था है।"

इसके बाद नाग बाबू परमहंसजी के पास आने-जाने लगे। रामकृष्णजी उनसे तरह-तरह के काम करवाने लगे। एक बार जब नाग बाबू आये तब रामकृष्णजी ने कहा—"तुम तो डॉक्टर हो। देखो तो मेरे पैर में क्या हुआ है?"

नाग महाशय ने अच्छी तरह जाँचने के बाद कहा—"कहाँ, कुछ भी नहीं हुआ है।"

दरअसल नाग बाबू रामकृष्णजी का तिकड़म समझ नहीं पाये। एक दिन चरण स्पर्श करने से उन्हें रोका गया था और आज इसी बहाने रामकृष्णजी ने चरण स्पर्श करने का मौका दिया।

थोड़ी देर बाद रामकृष्णजी ने अपने अंग को दिखाते हुए पूछा—"तुम इसे क्या समझते हो?"

नाग महाशय बिना किसी द्विधा के बोले—"यह मुझसे मत कहलाइये, ठाकुर। आपकी कृपा से समझ गया हूँ कि आप वही हैं।"

तुरंत ठाकुर को समाधि लग गयी। उसी दौरान नाग महाशय के वक्षस्थल पर उनके पैर पड़ गये। नाग महाशय को तुरंत एक नयी अनुभूति हुई। वे सर्वत्र दिव्य ज्योति देखने लगे।

एक दिन भोजन के पश्चात् रामकृष्णजी चौकी पर लेट गये और नाग महाशय के हाथ में एक पंखा देते हुए बोले—"जरा हवा करो।"

काफी देर से निरन्तर पंखा डुलाते रहने के कारण नाग महाशय का हाथ दर्द करने लगा, पर वे इस पीड़ा को इसलिए सहन करते रहे कि कहीं इनकी नींद में खलल न पहुँचे। धीरे-धीरे पीड़ा असह्य हो गयी। रामकृष्णजी को भक्त की पीड़ा का ज्ञान हुआ और उन्होंने नाग महाशय का हाथ पकड़कर हवा करने से रोक दिया।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन रामकृष्णजी ने कहा—"डॉक्टर, वकील, मुख्तार, दलाल आदि को धर्म-लाभ नहीं होता।"

इतना सुनना था कि नाग महाशय वहाँ से घर वापस आकर अपनी दवा की पेटी गंगा में फेंक आये। उन्होंने निश्चय किया कि भविष्य में चिकित्सा-कार्य नहीं करेंगे। अब जीविका चलाने के लिए पिताजी वाली नौकरी का सहारा रह गया।

नाग बाबू के अन्तर में सर्वदा त्याग की अग्नि जलती रही। यह देखकर उनके गुरुदेव रामकृष्ण ने कहा था—"तुम राजा जनक की तरह गृहस्थाश्रम में रहोगे। तुम्हें देखकर गृही लोग गृहस्थ-धर्म के प्रति आस्था रखेंगे।"

रामकृष्णजी की इस शिक्षा के कारण वे अपनी पत्नी का त्याग नहीं कर पा रहे थे। अपनी चिन्ता उन्हें नहीं थी, नौकरी तो पत्नी के लिए कर रहे थे। एक दिन न जाने क्या ख्याल आया कि अपने सहायक रणजीत हाजरा को सारा चार्ज देकर अपने कार्य से मुक्त हो गये। पाल बाबू की दासता को हमेशा के लिए छोड़ दिया।

पाल बाबुओं को जब यह समाचार मिला तब उन लोगों ने इन्हें बुलाकर काफी समझाया, पर नाग बाबू पुनः नौकरी करने के लिए तैयार नहीं हुए। पाल बाबू ने सोचा—इतना ईमानदार कर्मचारी, बिलकुल बाप की तरह। आखिर इसकी गृहस्थी कैसे चलेगी? धर्म तो खाने को नहीं देगा। इन लोगों ने नाग बाबू के सहायक रणजीत को बुलाकर कहा—"आगे से मुनाफे की आधी रकम तुम नाग बाबू को देते रहना। इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।"

भगवान् अपने भक्तों का ध्यान सर्वदा रखते हैं। रणजीत नाग बाबू के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित था। वह यह जानता था कि इन्हें पूरी रकम देने पर गरीब, दुखिया लोगों को बाँट देंगे। उधर गाँव में पिता और पत्नी को उपवास करना पड़ेगा। वह इनके खर्च लायक रकम इन्हें देकर शेष रकम गाँव भेज देता था।

इधर नाग बाबू की साधना क्रमशः उग्र से उग्रतर होती गयी। भोजन से नमक ही नहीं, बल्कि मीठा गायब हो गया। अपने मकान का आधा हिस्सा उन्होंने एक अनाज के व्यापारी को किराये पर दे रखा था। दुकानदार बोरे से गिरे चावलों को झाड़ू लगाकर एक जगह रख देता था। नाग बाबू उस अनाज को लाकर सेवन करने लगे। जब दुकानदार को यह रहस्य ज्ञात हुआ तब पाप के भय से वह उस कूड़े को उठाकर ले जाने लगा।

अगर कोई भक्त इन्हें प्रसाद के रूप में मीठा या नमकीन देता तो हजरत प्रसाद के साथ-साथ दोना भी चबा जाते थे। यह दृश्य देखकर कुछ लोग प्रसाद समाप्त होते ही इनके हाथ से दोना छीन लेते थे।

नाग महाशय कितने विचित्र स्वभाव के हो गये थे, इसका उदाहरण निम्न घटना से आँका जा सकता है—

पिताजी से मुलाकात करने के लिए एक बार गाँव गये तो पिता ने कहा—''घर-गृहस्थी की दशा सुधरे, ऐसे काम करना चाहिए। लेकिन तेरा काम तो उल्टा होता है। सुना कि डॉक्टरी छोड़ दिया, अब क्या खाकर गुजारा करेगा?''

''भगवान् जो देंगे, वही खाऊँगा।''

पिता तुरंत बिगड़ उठे—''वह तो मैं भी जानता हूँ। अब नंगा रहेगा और मेढक खायेगा।''

पुत्र ने पिता की बातों का प्रतिवाद नहीं किया। तुरंत अपने सभी कपड़े उतारकर नंगे हो गये और आँगन से एक मृत मेढक उठाकर खाते हुए बोले—''आपके दोनों आदेशों का पालन मैंने कर दिया। अब आपके चरणों में निवेदन है कि आप विषय-चिन्ता छोड़कर परमार्थ का चिन्तन करें। अपने इष्ट को स्मरण करें।''

गाँव से वापस आने के बाद नाग बाबू नियमित रूप से दक्षिणेश्वर जाने लगे। केवल छुट्टियों के दिन नहीं जाते थे। उस दिन वहाँ अनेक विद्वानों की भीड़ होती थी। रामकृष्ण ठाकुर के विद्वान भक्तों के सामने उनके जैसा मूर्ख की उपस्थिति अशोभनीय होगी।

रुपये-पैसे या गंदी बातों की चर्चा करते अगर किसी से सुनते तो तुरंत ईंट या पत्थर का टुकड़ा लेकर अपने सिर पर मारते और कहते—''चुप हो जाइये। रामकृष्ण भगवान् का नाम लीजिए।'' केवल यही नहीं, किसी के मुँह से निन्दा की बात नहीं सुनना चाहते थे।

अगर कोई रामकृष्णजी की आलोचना करता तो उससे तुरंत उलझ जाते थे। उनके उंग्र रूप को देखकर लोग दंग रह जाते थे।

घर पर रहते हुए वनवासी संन्यासियों की तरह रहन-सहन अपनाये हुए रहते थे। इस समय तक वे योग के यम-नियम और आसन में सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। इसकी जानकारी बहुत कम लोगों को थी।

वे अपनी साधना से इतने उच्चकोटि के साधक बन गये थे कि एक बार स्वयं रामकृष्णजी को उनसे सहायता माँगनी पड़ी। उन दिनों किसी कारण से रामकृष्णजी का सारा शरीर असह्य ज्वाला से जलने लगा था। वे परेशान थे। ठीक इसी समय नाग महाशय हाजिर हुए। इन्हें देखकर रामकृष्णजी ने कहा—''जरा मेरे पास सटकर बैठो।''

इससे किंचित राहत मिली तो उन्होंने नाग बाबू को बाँहों में भर लिया। पर्याप्त आराम मिलने पर रामकृष्णजी ने कहा—''डॉक्टर-कविराज हार गये हैं। अगर तुम कुछ उपकार कर सको तो अच्छा हो।''

नाग बाबू कुछ देर तक स्तब्ध भाव से खड़े रहे। इसके बाद वे अपनी इच्छा के बल से रामकृष्णजी की बीमारी को अपने शरीर में लेने के लिए आगे बढ़ते हुए बोले—''हाँ, मैं आपकी कृपा से सब कर सकता हूँ।''

रामकृष्णजी तुरंत उनकी मनःस्थिति को भाँप गये। तुरंत उन्हें दूर ढकेलते हुए बोले—"तुम यह कार्य कर सकते हो।"

नाग बाबू अपने स्वभाव और गुणों के कारण रामकृष्ण के भक्तों में श्रद्धा के पात्र बन गये थे। आपके जैसा त्यागी अन्य कोई गृहस्थ नहीं था।

एक बार अर्धोदय योग के समय नाग बाबू अपने गाँव आये। इन्हें देखते ही पिताजी क्रोध से उबल पड़े—"तुम्हारी धर्म-बुद्धि कैसी है? ऐसे शुभ अवसर पर लोग गंगा स्नान के लिए जाते हैं और तुम यहाँ चले आये? अभी भी तीन-चार दिन का समय है। मुझे गंगा-तट पर ले चलो।"

नाग महाशय ने कहा—"अगर विश्वास रहे तो माँ गंगाभक्तों के घर आकर दर्शन देती हैं।"

पिता ने बहस करना उचित नहीं समझा। वे अपने लड़के के स्वभाव से परिचित थे। लेकिन वे अपने घर की घटना देखकर चकित रह गये।

बात यह हुई कि ठीक योग वाले दिन दोपहर को नाग बाबू के घर में आँगन के एक कोने से प्रबल वेग से पानी निकला। आँगन को भरने के बाद पानी का स्रोत बाहर बह चला। चारों ओर कोलाहल शुरू हो गया। नाग महाशय कोलाहल सुनकर कमरे के बाहर आये।

यह दृश्य देखकर वे "जय माँ गंगे" कहकर अंजलि में पानी भर-भरकर पीने लगे। केवल दीनदयाल ही नहीं, गाँव के अधिकांश लोगों ने इस पानी में स्नान किया।

घटना क्रम से नाग बाबू की योग-शक्ति प्रकट हो गयी, अन्यथा वे अपने गुरुदेव की भाँति योग-शक्ति को विष्ठा समझते आये हैं।

झोपड़ी की मरम्मत करने के लिए उनकी पत्नी ने एक मजदूर को बुलाया। जब वह काम शुरू कर चुका तब थोड़ी देर बाद कहीं से नाग महाशय आये। उन्हें जब यह बात मालूम हुई तब वे सिर पकड़कर बोले—"हाय गुरुदेव, क्यों मुझे गृहस्थाश्रम में रहने का आदेश दिया था। मेरे सुख के लिए दूसरा व्यक्ति श्रम करेगा। आज मुझे यह दिन देखना पड़ रहा है।"

बेचारा मजदूर काम छोड़कर नीचे आया। उसे गुड़ खिलाकर पानी पिलाया गया। इसके बाद तम्बाकू दिया गया। पूरी मजदूरी देकर उसे विदा कर दिया गया।

इसी प्रकार एक बार घर में साँप निकला तो नाग-पत्नी भय से चीखकर बाहर आ गयीं। पड़ोस के लोग लाठी लेकर उसे मारने आये। अचानक नाग बाबू वहाँ आये और कहा—"आप लोग नाग देवता की हत्या मत करिये।"

इसके बाद वे चुटकी बजाने लगे। उसी आवाज के सहारे साँप घर से बाहर आकर एक ओर चला गया। जीव-हत्या से नाग बाबू को बेहद चिढ़ थी। झोपड़ी के एक खम्भे

में दीमक लगी थी। एक सज्जन मिलने के लिये आये थे। यह दृश्य देखकर उन्होंने खम्भे को हिला दिया। दीमकों का घर ढह गया।

यह देखकर नाग बाबू ने कहा—"आहा, यह आपने क्या किया?" फिर दीमकों की ओर देखते हुए बोले—"गलती हो गयी। अब आप लोग पुनः घर बसा लीजिये।"

इसी प्रकार एक बार पड़ोस के घर में आग लगी जो तेजी से इनके घर की ओर बढ़ रही थी। यह देखकर पत्नी बिस्तर, रजाई, सन्दूक आदि सामान बाहर निकालने लगीं।

यह देखकर नाग महाशय ने अपनी पत्नी से कहा—"अरे, यह क्या? स्वयं ब्रह्मा हमारे घर आ रहे हैं। इनकी पूजा करनी चाहिए। अभी तक तुममें इतना अविश्वास है?"

यह कहकर वे आँगन में नाचते हुए 'जय कृष्ण-जय कृष्ण' कहने लगे। बोले—"अगर कृष्ण को हमारी रक्षा करनी है तो कौन हमें मारेगा?"

देवक्रम से नाग महाशय की झोपड़ी बच गयी। उनकी बगलवाली झोपड़ी तक आग आकर बुझ गयी थी।

नाग बाबू सर्वदा सत्य बोला करते थे। अपने इस स्वभाव के कारण सभी को सत्यवादी समझते थे। दुकानदार सामानों का जो भाव बताता, उसी भाव से सामान खरीदते थे। मोलचाल करने की अपेक्षा वे कहते—"सभी को जिस भाव में देते हैं, वही कीमत मुझसे लीजिए। यहाँ तक कि अतिरिक्त पैसा वापस नहीं माँगते थे। जो लोग इनके स्वभाव से परिचित थे, वे शेष रकम वापस कर देते थे। यहाँ तक कि कुछ लोग कम कीमत पर इन्हें सामान देते थे।

इनके जीवन से प्रभावित होकर गाँव के अनेक लोगों ने आध्यात्मिक जीवन को अपनाया था। नाग बाबू में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि पुनर्विवाह करने के बाद उन्होंने कभी पत्नी को स्पर्श नहीं किया था।

कलकत्ता से वापस आकर जब स्थायी रूप से गाँव में रहने लगे तब वे बाहर बरामदा में सोने लगे। पत्नी उनकी मंशा समझ गयी। वह बोली— "बाहर ठंड लग जायगी। आप भीतर कमरे में सोया करिये। आपकी इच्छा के विरुद्ध मैं कभी कोई काम नहीं करूँगी।"

देहत्याग के तीन दिन पूर्व उन्होंने पत्रा मँगाकर देखा और समझ लिया कि २७ दिसम्बर सन् १८९९ के दिन १० बजे के बाद समय अच्छा है। उन्होंने निश्चय किया कि उसी दिन देहत्याग करेंगे।

अपने मित्र शरत् बाबू को बुलाकर उन्होंने कहा—"आप एक-एक तीर्थ का नाम लेते रहें। मैं उन सभी तीर्थों को देखता रहूँगा।"

शरत् बाबू काशी, मथुरा, प्रयाग, हरिद्वार, नासिक, गंगासागर, पुरी का नाम लेते रहे। उन स्थानों का वर्णन करते-करते नाग महाशय ने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

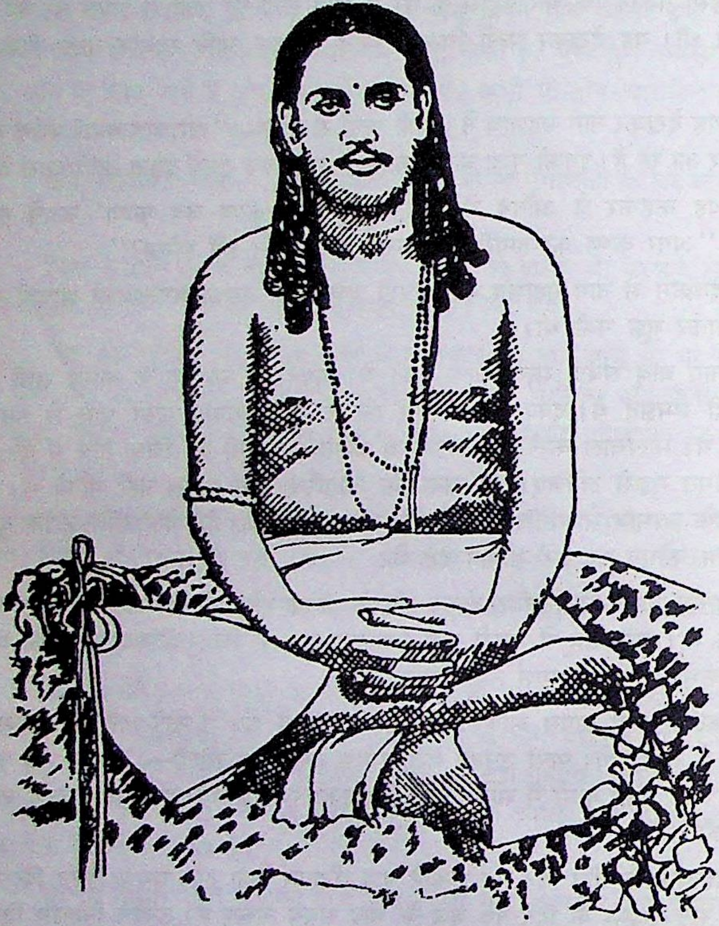

निगमानन्द सरस्वती

निगमानन्द सरस्वती

बंगाल का नदिया जिला महाप्रभु गौरांग के कारण संपूर्ण वैष्णव-समाज के लिए तीर्थस्थान है। महाप्रभु को लोग 'नदेर निमाई' कहते हैं। इस जिले के कुतुबपुर गाँव में भुवनमोहन चटर्जी सपरिवार रहते हैं। आपकी पत्नी मानिक सुन्दरी अत्यन्त भक्तिमती है। मानिक सुन्दरी को अहरह एक ही दुःख पीड़ा देती रही। विवाह हुए ७-८ वर्ष व्यतीत हो गये, पर उन्हें माँ बनने का गौरव प्राप्त नहीं हुआ। पूजा-पाठ, व्रत-उपवास के अलावा हाथों में अनेक ताबीज धारण करती आ रही हैं।

एक दिन न जाने कहाँ से एक संन्यासी गाँव में आया और भिक्षा माँगते हुए मानिक सुन्दरी के दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया। भिक्षा लेने के पश्चात् संन्यासी ने दोनों हाथ उठाकर कहा—''दूधो नहाओ, पूतो फलो।''

इस आशीर्वाद को सुनते ही मानिक सुन्दरी रो पड़ी। मुँह में आँचल ठूँसकर दुःख के आवेग को रोकने का असफल प्रयत्न करने लगी। संन्यासी पहले अवाक् रह गया और थोड़ी देर में रहस्य समझ गया। पूछा—''क्या बात है, माताजी?''

सहानुभूति के स्वर से मानिक का दुःख पिघला। बोली—''मैं बाँझ हूँ, बाबाजी। लोग मुझे दिशाशूल समझते हैं।''

संन्यासी ने कहा—'' यह बात गलत है। मैं साफ देख रहा हूँ कि तुम सुसंतान की जननी बननेवाली हो।''

इतना कहने के बाद संन्यासी ने अपनी झोली से थोड़ा भभूत देकर कहा—''ले, इसे अभी खा ले। मैं एक वर्ष बाद आकर तेरे संतान को आशीर्वाद दूँगा।''

संन्यासी का आशीर्वाद फलीभूत हुआ। समय पर वह एक पुत्र की जननी बन गयी। अब वे बेसब्री के साथ संन्यासी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगीं। अन्नप्राशन के दिन संन्यासी महाशय आये और आशीर्वाद देते हुए बोले—''जातक भाग्यवान होगा। बालक का क्या नाम रखा है?''

पिता ने कहा—''नलिनीकान्त।''

बालक शनैः-शनैः बड़ा होता गया। पाठशाला में अक्षर-बोध होने के साथ ही माँ का देहान्त हो गया। बहुत दिनों बाद पिता बनने के कारण भुवनमोहन का समस्त

प्यार लड़के पर केन्द्रित हो गया। उन्होंने पुनर्विवाह इसलिए नहीं किया कि कहीं सौतेली माता आकर उनके नलिनीकान्त को कष्ट न दे। यक्ष के धन की तरह उसका लालन-पालन करने लगे। गौर वर्ण का नटखट बालक गाँव के लोगों के निकट जनप्रिय बनता गया। कालेज की शिक्षा पूरी करने के बाद वह पटवारी बन गया। गाँव में किसी को मुसीबत में देखता तो तुरंत मदद के लिए चला जाता। कुलीन घराने का युवक छुआ-छूत को नहीं मानता था। कभी कोई कुछ कहता तो उत्तर देता—"ईश्वर के घर सभी एक हैं। जात-पाँत का पचड़ा तो हमने बनाया है।"

आश्चर्य की बात यह थी कि ब्राह्मण घराने का लड़का धीरे-धीरे घोर नास्तिक बनता जा रहा था। पुत्र के इस आचरण से पिता दुःखी रहते थे। मुँह खोलकर पुत्र से कुछ कह नहीं पाते थे। इन्हीं दिनों कुल पुरोहित सत्यनारायण कथा के सिलसिले में भुवनमोहन के घर आये तो बातचीत के मध्य नलिनीकान्त की चर्चा चल पड़ी।

कुल पुरोहित ने जन्मकुण्डली देखकर कहा—"चटर्जी महाशय, बड़े आश्चर्य की बात है। चरित्र से लड़का घोर नास्तिक है और ग्रह बता रहे हैं कि आगे चलकर संन्यासी बनेगा।"

भुवनमोहन ने कहा—"मेरे लिए क्या करना उचित है, यह बताइये। ले-देकर एक ही लड़का है, अगर वह भी दण्ड-कमण्डल लेकर चला जायगा तो बुढ़ापे में क्या करूँगा?"

पुरोहित ने कहा—"झटपट इसका विवाह कर दीजिए। गृहस्थी के चक्कर में पड़कर लोग संन्यास की बात भूल जाते हैं।"

पुरोहित की बात चटर्जी बाबू को पसन्द आ गयी। उन्होंने घटक के जरिये लड़की तलाश कर नलिनीकान्त का विवाह करा दिया। सूने घर में एक बहू आ जाने से उन्हें आराम मिला। नववधू का नाम सुधांशुबाला था। नलिनीकान्त पटवारी का काम छोड़कर ओवरसियर हो गये थे। दिन आराम से गुजर रहे थे। सहसा हैजे का शिकार होने के कारण दो दिन के भीतर सुधांशुबाला का निधन हो गया। किशोर उम्र का प्रेम बड़ा तीव्र होता है। इस उम्र में पत्नी का वियोग असह्य हो जाता है। वियोग के इस दर्द को भुलाने के लिए नलिनीकान्त विभिन्न स्थानों का भ्रमण करने लगे।

कई जिलों का चक्कर काटते हुए वे तारापीठ आये। उन दिनों अवधूत वामाखेपा के कारण तारापीठ साधकों के निकट तीर्थस्थल बन गया था। अनेक लोग जो कष्ट से पीड़ित थे, वे बाबा के पास आते थे। इस स्थान के बारे में अनेक जनश्रुतियाँ नलिनीकान्त सुन रखा था। उसने सोचा, शायद बाबा उसके अशान्त हृदय को शान्ति दे सकेंगे।

तारापीठ आने पर उसे ज्ञात हुआ कि इन दिनों बाबा कुण्ड के पास रहते हैं। उनके निकट जाकर वह साष्टांग प्रणाम करते हुए रो पड़ा। बाबा उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए बोले—"शान्त हो जाओ बेटा, तारा माँ की कृपा से सब मंगल होगा।"

नलिनी ने कहा—"मैं बड़ा दुःखी हूँ, बाबा। मुझे तारा माँ का दर्शन चाहिए।"

बाबा ने हँसकर कहा—"तारा माँ तो सर्वत्र हैं। इस मंदिर में, कुण्ड के इस जल में, श्मशान में, नदी में, डूबते हुए सूरज की रोशनी में। कर ले दर्शन। चिन्ता किस बात की?"

नलिनी ने कहा—"प्रभो, आप सिद्ध योगी हैं। मेरे पास वह दृष्टि नहीं है जो आपके पास है। मैं तो प्रत्यक्ष रूप से माँ का दर्शन करना चाहता हूँ। मूर्तिमयी रूप में।"

"वह भी हो जायगा। इसके लिए प्रतीक्षा करनी होगी। आकुल-हृदय से माँ को पुकार। आकुल-हृदय से पुकारने पर माँ अपनी सन्तान के निकट बिना आये कैसे रह सकती हैं। वे जरूर आयेंगी। जा, जगज्जननी का आह्वान कर।"

बाबा के इस आश्वासन पर नलिनी चुपचाप श्मशान के किनारे जाकर बैठ गया। दिन गुजरते गये। नलिनी एकाग्र चित्त से माँ को पुकारता रहा। साधना चलती रही।

एक गहरी रात को अंधेरे से आवाज आयी—"वत्स, आँखें खोलो।"

नलिनी ने चौंककर देखा— घनघोर अंधेरे में एक ओर से तीव्र प्रकाश आ रहा है। उसने पूछा—"आप कौन हैं?"

"तुम्हारी इष्ट देवी।"

"अगर आप मेरी इष्ट देवी हैं तो अपना साक्षात् रूप दिखाइये ताकि मेरी आँखें धन्य हो जायँ।"

"एवमस्तु।" इसके साथ ही वह प्रकाश चारों ओर फैल गया। श्मशान का कोना-कोना प्रकाश से झलमला उठा। देवी को साक्षात् सामने देखते ही भय से उसका कण्ठ सूख गया। उन्हें प्रणाम करते-करते वह बेहोश हो गया। होश आने पर उसने अपने आपको बाबा की गोद में पाया।

उसे होश में आया देख बाबा ने कहा—"अबे साले, तेरा जीवन धन्य हो गया। तू तो भाग्यवान निकला। अब तीर्थयात्रा कर। किसी योग्य गुरु के पास जाकर साधना करना। तेरा जीवन सफल हो जायगा।"

नलिनीकान्त ने कहा—"आपकी कृपा से ही मुझे जगन्माता का दर्शन प्राप्त हुआ। आपसे योग्य गुरु मैं कहाँ खोजने जाऊँगा। मुझे दूर मत भगाइये। अपनी सेवा में रख लीजिए।"

बाबा ने कहा—"मैं तेरा निर्दिष्ट गुरु नहीं हूँ। तुझे वैदिक संत से दीक्षा लेनी पड़ेगी। मैं तो अवधूत हूँ। तेरा-मेरा मेल नहीं है। तुझे अभी कठोर साधना करनी पड़ेगी।"

नलिनी ने कहा—"ऐसे गुरु मुझे कहाँ मिलेंगे। न जाने वे कब मिलेंगे। मैं उन्हें पहचानूँगा कैसे?"

बाबा ने कहा—"गुरु को खोजना नहीं पड़ता। गुरु योग्य शिष्य को आकर्षित करके अपने निकट बुला लेते हैं। शक्तिमान आचार्यों की इच्छा-शक्ति के प्रताप से शिष्य में कुण्डलिनी-शक्ति का जागरण होता है। वास्तविक गुरु जब दीक्षा देते हैं तब उसके हृदय को स्पर्श कर आत्मज्ञान देते हैं। समय आने पर तुझे तेरे गुरु मिल जायेंगे। जो गुरु तुझे आत्मज्ञान देंगे, वे ही वास्तविक गुरु होंगे। जा, अब गुरु की तलाश में तीर्थाटन कर। कहीं न कहीं तुझे अपने गुरु का दर्शन हो जायगा।"

इस आज्ञा को शिरोधार्य कर नलिनीकान्त वहाँ से चल पड़ा। भागलपुर, गया आदि शहरों का दर्शन करते हुए वह काशी आया। काशी के बारे में उसने सुन रखा था कि यहाँ कोई भूखा नहीं सोता। माँ अन्नपूर्णा सभी को भोजन देती हैं। उसने सोचा— इस प्रवाद की परीक्षा लेनी चाहिए। उसने निश्चय किया कि अनायास भोजन मिलने पर ही वह खायेगा वर्ना भूखा रह जायगा। इस निश्चय के बाद वह गंगा किनारे आकर बैठ गया।

सबेरे का समय था। स्नानार्थी लोग गंगा-स्नान करने तथा करके जाने वाले आ-जा रहे थे। चारों ओर 'हर-हर महादेव शंभु, काशी विश्वनाथ गंगे' का नारा लग रहा था। मीठी धूप में बैठा नलिनीकान्त एकाग्र चित्त से गंगा की ओर देख रहा था। धीरे-धीरे समय गुजरता गया। घाटों पर भीड़ में कमी होती गयी। ठीक इसी समय एक बुढ़िया नलिनी के पास आकर एक पिटारी देती हुई बोली—"बेटा, इसे अपने पास रखो। मैं स्नान करने जा रही हूँ। वापस आकर ले लूँगी। घाट पर बहुत कुत्ते घूम रहे हैं। जरा सम्हालकर रखना।"

नलिनी ने कहा—"ठीक है माताजी। आप स्नान करके आइये। मैं कहीं नहीं जाऊँगा। आपके आने की प्रतीक्षा करूँगा।"

धीरे-धीरे दोपहर ढलने लगी, पर अभी तक बुढ़िया वापस नहीं आयी। पता नहीं, किस जगह नहाने गयी है। नलिनीकान्त को संदेह हुआ कि कहीं वह भूल तो नहीं गयी। आखिर कब तक वह यहाँ बैठा रहेगा। उत्सुकतावश पिटारी खोला तो उसने देखा— उसमें वर्धमान का प्रसिद्ध सीताभोग और मिहिदाना रखा हुआ है। नलिनीकान्त को वर्धमान की इन मिठाइयों से बहुत प्रेम है। नलिनी ने अनुमान लगाया कि बुढ़िया जरूर भूल गयी है। जोरों से भूख लगी थी। सारी मिठाइयाँ खाकर वह अपने डेरे पर वापस चला आया।

अधिक रात गये उसने सपने में देखा कि पिटारी वाली बुढ़िया आकर कह रही है—"अब तो विश्वास हो गया कि काशी में कोई भूखा नहीं सोता?"

नलिनी ने कहा—"तुम तो मुझे सुरक्षा का भार देकर चली गयी थी। अगर वापस आकर माँगती तो मैं भूखा रह जाता।"

बुढ़िया ने कहा—"मैं तो तेरे पास जान बूझकर छोड़ गयी थी। अगर वापस लेना होता तो मैं पुनः न आती?"

न जाने क्यों नलिनी को संदेह हुआ। उसने पूछा—"आप कौन हैं देवी?"

"मैं अन्नपूर्णा हूँ।" कहने के पश्चात् देवी ने साक्षात् अपना रूप दिखाया।

श्रद्धा से गद्‌गद होकर नलिनी ने कहा—"माँ, अपने इस बालक के अपराध को क्षमा कर दो।" कहने के पश्चात् उसने देवी के चरणों की ओर हाथ बढ़ाया तभी उसकी नींद खुल गयी। उसने अपने आपको एक अंधेरी कोठरी में पाया।

+ \+ \+ \+

प्रयाग, मथुरा, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र आदि क्षेत्रों का दर्शन करते हुए नलिनी पुष्कर क्षेत्र में आया। अजमेर नगर से दूर, शान्त वातावरण और अनेक साधकों की साधना-भूमि है यह क्षेत्र। यहाँ अनेक संन्यासियों का नित्य वह दर्शन करता रहा। इन संन्यासियों में सच्चिदानन्दजी की ओर वह विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। वे नित्य जिज्ञासुओं के बीच योग-सम्बन्धी चर्चा करते थे। बराबर यहाँ आते रहने के कारण नलिनी का उनके प्रति आदर की भावना उत्पन्न हो गयी। सच्चिदानन्द भी नलिनी के प्रति आकृष्ट हुए।

एक दिन सच्चिदानन्द ने अध्यात्म-दर्शन की चर्चा करते हुए कहा— "विश्व ब्रह्माण्ड ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही विश्व ब्रह्माण्ड है । जो व्यक्ति इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लेता है, वही वास्तविक योगी है। स्वयं योगियों ने स्वीकार किया है कि योग एक विज्ञान है। साधना करते हुए जब कोई इसे आत्मसात कर लेता है तब वह योगसिद्ध हो जाता है। इसके लिए अष्ट सिद्धियों पर विजय करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए 'अणिमा' को लो। इसका अर्थ है कि योगी साधना की चरम अवस्था प्राप्त कर लेने पर सूक्ष्म रूप धारण कर सकता है। 'लघिमा' के माध्यम से शरीर को हल्का किया जाता है। इससे जल, पंक और काँटे बाधा उत्पन्न नहीं करते। आकाश में गमन करने की शक्ति आ जाती है। 'महिमा' से शरीर विशाल बनाया जा सकता है। 'गरिमा' से शरीर को पहलवानों की भाँति वजनी बनाया जाता है। 'प्राप्ति' किसी भी वस्तु को इच्छा करते ही प्राप्त किया जा सकता है। 'प्राकाम्य' बिना किसी बाधा के भौतिक पदार्थ को संकल्प मात्र से प्राप्त किया जा सकता है। 'वशित्व' पाँच भूतों का और तज्जन्य पदार्थों का वश में होना। 'ईशित्व'— भूत और भौतिक पदार्थों का नाना रूपों में उत्पन्न करने की और उन पर शासन करने की क्षमता आ जाती है।"

इसी प्रकार योग के सम्बन्ध में विभिन्न बातें वे उपस्थित लोगों को सुनाया करते थे। बातचीत के सिलसिले में नलिनी ने एक दिन दीक्षा देने की प्रार्थना की।

सच्चिदानन्द ने कहा—"नलिनीकान्त, दीक्षा लेना आसान है, पर देना कठिन है। तुम केवल मेरे प्रवचनों से प्रभावित होकर दीक्षा लेना चाहते हो। जन सामान्य में एक कहावत प्रचलित है— गुरु कीजिए जानकर, पानी पीजिए छानकर। जब कोई गुरु किसी शिष्य को दीक्षा देता है तब उसके समस्त पापों को वह ग्रहण करता है। अगर शिष्य ठीक से जप-ध्यान या साधना नहीं करता तब शिष्य के बोझ को गुरु को सम्हालना पड़ता है। अभी तुम दीक्षा के योग्य नहीं हो। तुम्हारे हृदय में मृत-पत्नी की स्मृतियाँ

पत्थर की लकीर की तरह जमी हुई हैं। पहले जप से उस कालिमा को धोकर स्वच्छ हृदय बना लो। जब तक आसक्ति रहेगी तब तक तुम साधना नहीं कर सकोगे।''

नलिनी ने कहा—''प्रभु, मैं अध्यात्म के मार्ग की ओर अग्रसर हो सकूँ इसके लिए जो निर्देश देंगे, उसका पालन अवश्य करूँगा। यह ठीक है कि पत्नी के निधन के पश्चात् मेरे मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। संभव है कि उसकी स्मृतियाँ हृदय के किसी भाग को आच्छन्न कर रखा हो। आप सक्षम हैं, कृपया उस धब्बे को मिटाकर अपने चरणों में स्थान दें।''

सच्चिदानन्द ने कहा—''साधु, साधु। इस कार्य में समय लगेगा। प्रतीक्षा करो।'' इसके बाद एक मंत्र देते हुए उन्होंने कहा—''सोते, जागते, चलते, फिरते, इस मंत्र का जाप करते रहना। धीरे-धीरे स्वतः अनुभव करोगे कि ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है अर्थात् ब्रह्म ही वर्तमान, अतीत और भविष्य है। इस कथन का वास्तविक अर्थ है—जीव-जगत् और ब्रह्म के अलावा अन्य कुछ नहीं है— सर्वं खल्विदं ब्रह्म।''

समय गुजरता गया। नलिनीकान्त मनोनीत गुरुदेव के निर्देशानुसार जप-ध्यान करते गये। उनमें अद्भुत परिवर्तन होता गया। इन्हीं दिनों एक दिन स्वामी सच्चिदानन्द ने कहा—''कल तुम्हें ब्राह्ममुहूर्त में दीक्षा दी जायगी। स्नान करने के बाद सीधे मेरे पास चले आना।''

दूसरे दिन विधिवत दीक्षा देने के बाद सच्चिदानन्द ने कहा—''आज से तुम निगमानन्द सरस्वती के नाम से जाने जाओगे। प्रथम गुरु होने तथा सरस्वती शाखा का संन्यासी होने के कारण यह उपाधि तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ। जो मंत्र तुम्हें दिया है, उसका निरन्तर जप करते रहना। मेरे दिये मंत्र से तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा। आत्मज्ञान की दृष्टि प्राप्त होगी। श्रीकृष्ण ने कहा है—

> यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांछति ।
> शुभाशुभ परित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥

जिस दिन तुम्हारे हृदय में प्रज्ञा के साथ-साथ ज्ञान का उदय होगा, उसी दिन तुम मुक्त पुरुष हो जाओगे।''

निगमानन्द ने पूछा—''इसका ज्ञान मुझे कब होगा कि मैं अब मुक्त पुरुष हो गया हूँ?''

सच्चिदानन्द ने जवाब दिया—''यह ज्ञान स्वतः अर्जित करते रहोगे। तुम्हारी यह साधना तब तक चलती रहेगी जब तक तुम्हारे हृदय में ब्रह्म और जीव-जगत् भिन्न है, की भावना रहेगी। अभेद ज्ञान के लिए साधना की आवश्यकता होती है। साधना का मार्ग निर्दिष्ट है। उसी मार्ग पर निरन्तर तुम्हें स्थिर गति से चलना है। जब इस मार्ग में सिद्ध हो जाओगे तब भेदभाव लुप्त हो जाएगा।''

कुछ देर निगमानन्द की ओर देखने के पश्चात् उन्होंने पुनः कहा—''एक बात

और बता दूँ। मैं साधक हूँ, योगी नहीं। मैं जानता हूँ, तुम्हें योग सीखने की लालसा है। अभी कुछ दिनों तक साधना करने के बाद भक्ति-मार्ग में परिपक्व हो जाओगे तब योग सीखने के लिए किसी योग्य गुरु के पास जाना पड़ेगा। परिस्थितियाँ ऐसी बन जायँगी कि गुरु तुम्हें आकर्षित कर लेंगे। जिस प्रकार शिष्यों को योग्य और वास्तविक गुरु की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार गुरुओं को भी योग्य शिष्य की आवश्यकता होती है।''

सच्चिदानन्द के निर्देशानुसार निगमानन्द सरस्वती गुरु-सेवा के साथ-साथ कठोर-साधना में निमग्न हो गये। उन्हें याद आया वामाखेपा की बातें— तुम्हारा वास्तविक गुरु वैदिक होगा। कई वर्षों बाद निगमानन्द को आत्मोपलब्धि हुई। उन्होंने स्वयं अनुभव किया कि एक प्रकार का तेज उनके शरीर से प्रस्फुटित हो रहा है। उनके अन्तर में एक प्रकार की हलचल होती है।

इस उपलब्धि की सूचना देने के लिए वे गुरुदेव के पास आये। साष्टांग प्रणाम करते ही सच्चिदानन्द ने कहा—''निगमानन्द, तुम सफल हुए। आज से मैं मुक्त हो गया। तुम्हारे कारण मैं यहाँ निवास कर रहा था। अब मैं अपने गुरु की सेवा में लौट जाऊँगा। मेरे विचार से तुम अन्यत्र न जाकर कामाक्षा-पीठ चले जाओ। तुम्हारे योगी गुरु वहीं तुम्हें आकर्षित करेंगे।''

+ + + +

उत्तर भारत की यात्रा करते हुए निगमानन्द एक बार पुनः काशी आये। उन्हें अन्य शहरों की अपेक्षा काशी का वातावरण अधिक पसन्द आया था।

एक दिन चौसट्टीघाट के समीप एक बुर्जी पर बैठे श्रद्धालु भक्तों के प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। उनके आकर्षक व्यक्तित्व के कारण लोग बड़े मनोयोग से उनकी बातें सुन रहे थे। धीरे-धीरे श्रोताओं की भीड़ छँटने लगी। शाम के बाद रात्रि का आगमन हो गया। केवल एक वृद्ध को बैठा देखकर निगमानन्द ने पूछा—''कहिये महाशय, आप कुछ पूछना चाहते हैं?''

वृद्ध ने जो कुछ कहा, उसका आशय यह है कि वे चटगाँव के निवासी हैं। यहाँ वे बाबा विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा देवी का दर्शन करने इतनी दूर से आये हैं। बाबा का दर्शन हो गया है, पर अन्नपूर्णा देवी के मन्दिर में दर्शन कराने के लिए यहाँ के पण्डे बहुत तंग कर रहे हैं। वे चार रुपये दक्षिणा देने को तैयार हैं, पर उनकी माँग इससे अधिक है। इनके पास उतनी रकम नहीं है। अगर वे उतनी रकम पण्डे को दे देंगे तो घर वापस नहीं जा सकते। घर पर पत्र लिखकर रुपये मँगाने में काफी दिन लगेंगे। अगर स्वामीजी किसी उपाय से माता अन्नपूर्णा का दर्शन करा दें तो वे अपने घर चले जायेंगे।

वृद्ध की समस्या को सुनकर निगमानन्द ने कहा—''ठीक है। मैं आपको माता अन्नपूर्णा का दर्शन करा दूँगा। आइये, मेरे साथ।''

आगे-आगे निगमानन्द और उनके पीछे वृद्ध महाशय चल पड़े। कुछ दूर जाने के बाद वृद्ध ने महसूस किया कि यह गली अन्नपूर्णा मंदिर की ओर नहीं जाती। संन्यासी के भेष में कोई ठग तो नहीं है? काशी में ऐसे लोगों की कमी नहीं है। लेकिन अपने पास है क्या जो ठग लेगा। एकाएक मन में विचार आया कि शायद मेरे लिए दर्शन के रुपये लेने अपने डेरे पर चल रहे हैं।

तभी पीछे की ओर पलटकर निगमानन्द ने कहा—''मैं यहाँ रहता हूँ। आप बेफिक्र होकर यहाँ आ जाइये।''

एक कमरे के भीतर उन्हें बैठाकर निगमानन्द ने कहा—''कृपया कुछ देर के लिए अपनी आँखें बन्द कर लें। जब मैं कहूँगा तभी खोलियेगा।''

आदेश के अनुसार उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। कुछ देर बाद उन्हें महसूस हुआ कि कमरे में एक प्रकार का सुगंध फैलता जा रहा है, जैसे पूजा-मण्डप में महसूस होता है।

तभी निगमानन्द ने कहा—''अब आप धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलिये।''

आँखें खोलते ही वृद्ध ने देखा— उनके सामने साक्षात् माता अन्नपूर्णा अभय-मुद्रा में विराजमान हैं। वृद्ध को लगा जैसे वह स्वप्न देख रहा है। इस घोर कलियुग में देवी साक्षात् दर्शन देंगी? यह कल्पना से परे है। भाव विह्वल हो उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया और बेहोश हो गये।

होश आने पर वृद्ध ने कहा—''सचमुच मैंने माँ का दर्शन किया? अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। स्वामीजी, कृपा करके अब मुझे इन चरणों में स्थान दीजिए। शेष जीवन इसी काशीधाम में आपकी सेवा में व्यतीत कर दूँगा।''

निगमानन्द ने हँसकर कहा—''मैं स्वयं प्रभु का दास हूँ। मेरा न रहने का ठिकाना है और खाने-पीने का। इसके अलावा अभी मुझे बहुत दूर जाना है जहाँ मेरे आराध्य मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपका काम हो गया, अब आप अपने घर वापस चले जाइये।''

वृद्ध ने हताश होकर कहा—''अच्छी बात है। लेकिन एक बार मेरे गाँव में आपको दर्शन देना पड़ेगा। कृपया इस अनुरोध को मत ठुकराइये। चटगाँव के मेघला गाँव में आने पर आपसे मुलाकात हो जायगी। आपके आगमन से मेरा गाँव धन्य हो जायगा।''

निगमानन्द ने इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया। वृद्ध के जाने के बाद वे दूसरे दिन कामाख्या की ओर रवाना हो गये। सच्चिदानन्द स्वामी ने कहा था— योग सीखने के लिए तुम्हें कामाख्या जाना पड़ेगा। वहाँ के वन तथा पहाड़ों में अनेक योगी रहते हैं। जो तुम्हारे गुरु होंगे, वे तुम्हें आकर्षित कर लेंगे। आधार मैंने बना दिया है। चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।

गुरुदेव सच्चिदानन्द की बातें रह-रहकर उनके मस्तिष्क में गूँज रही थीं। देवी

का दर्शन करने के बाद वे गारो पहाड़ियों में भावी गुरु की तलाश में चक्कर काटने लगे। बारहवें दिन वे एक नदी के किनारे आये तो देखा— घनघोर जंगलों के बीच एक कुटिया है। बाहर एक संन्यासी ध्यान लगाये बैठा है। निगमानन्द के अन्तर्मन ने कहा— यही हैं, तुम्हारे मनोवांछित गुरु।

हल्के कदमों से पास आकर निगमानन्द ने उन्हें प्रणाम किया। बाबाजी की दाढ़ी तथा सिर के बाल सन की तरह सफेद हो गये हैं। शरीर पर कौपीन के अलावा अन्य कोई वस्त्र नहीं है।

शाम होने में अभी देर थी, परन्तु बड़े-बड़े वृक्षों के कारण अंधेरा हो चला था। तभी बाबाजी ने कहा— "थके हो। आज विश्राम करो। कल विस्तार से बातें होंगी।"

दूसरे दिन से निगमानन्द बाबाजी की सेवा में लग गये। नदी से जल भरकर लाते, वृक्षों के नीचे से सूखी लकड़ियाँ तथा जंगली फलों का संग्रह करने लगे। मच्छरों को भगाने के लिए हमेशा धुनी जलाकर रखना पड़ता था। सुबह बाबा यौगिक क्रियाओं का ज्ञान देते और अभ्यास करने का निर्देश देते रहे। शाम के समय परमार्थ की चर्चा करते थे। धीरे-धीरे दिन गुजरते गये। निगमानन्द परिपक्व होते गये।

आखिर एक दिन बाबा सुमेरदास ने कहा—"मेरे पास जो कुछ था, सब तुम्हें दे चुका। मेरा आदेश है कि इनका कभी दुरुपयोग मत करना। तुम्हारे लिए मेरा आदेश है कि दुःखी मानव को, पथभ्रष्टों को सही मार्ग दिखाते हुए उन्हें शान्ति प्रदान करना। धर्म के प्रति लोगों की रुचि जागृत करना। मनुष्य मात्र की सेवा से बढ़कर अन्य कोई महत कार्य नहीं है। संतप्त मानव को परमेश्वर की साधना की ओर लगाने का कार्य तुम्हें करते रहना है।"

गुरु से आज्ञा प्राप्त होने के बाद निगमानन्द वापस लौटे। उन्हें याद आया कि चटगाँव जिले के मेघला गाँव में जाने का वादा कर चुके हैं।

गाँव में आकर उस वृद्ध को खोजने लगे। वह वृद्ध कविराज था। बहुत दिनों बाद निगमानन्द को देखकर वह खुशी से फूला नहीं समाया। इनके योग ऐश्वर्य की कहानी इसके पूर्व प्रचारित हो चुकी थी। गाँव के अनेक लोग निगमानन्द से दीक्षा लेने आये। आनेवाले लोगों में गाँव के सबसे बड़े महाजन ईश्वर धर के सुपुत्र महेन्द्रलाल ने भी दीक्षा ली।

दीक्षा लेने के बाद महेन्द्रलाल के स्वभाव में अद्‌भुत परिवर्तन होने लगा। जहाँ के निवासी हमेशा आमिष भोजन करते हैं, वहीं महेन्द्रलाल निरामिषभोजी बन गया। दिन-रात पूजा, जप और ध्यान करने लगा। पुत्र की यह गति देखकर ईश्वर धर बौखला उठे। अगर पुत्र की ऐसी स्थिति रही तो इतना बड़ा कारोबार कैसे सम्हलेगा। उनकी झल्लाहट का कोई असर लड़के पर नहीं पड़ा। धीरे-धीरे उन्हें इस बात का भय सताने लगा कि कहीं लड़का बाबाजी न बन जाय।

इधर क्रमशः वे भी यह अनुभव करने लगे कि अब उनका मन भी कारोबार के

प्रति उतना नहीं लग रहा है। तीर्थयात्रा करने की इच्छा क्रमशः प्रबल होती जा रही है। ऐसा क्यों हो रहा है, स्वयं ही समझ नहीं पा रहे थे। अन्त में एक दिन पत्नी से परामर्श करने के बाद ईश्वर धर ने यात्रा करने का निश्चय किया।

इस बात का पता चलते ही महेन्द्र ने विरोध किया। बुढ़ापे का शरीर है, आप दोनों को एक साथ यात्रा के लिए नहीं जाने दूँगा। अगर बहुत इच्छा है तो सुरक्षा के लिए मैं स्वयं चलूँगा। ईश्वर धर ने लड़के की राय का विरोध नहीं किया। उन दिनों निगमानन्द बनारस में थे। महेन्द्र ने पिता-माता के तीर्थभ्रमण के बारे में पत्र लिखकर निगमानन्दजी के पास भेज दिया था।

महेन्द्र अपने माता-पिता के साथ जब निगमानन्दजी के डेरे पर आया तो ईश्वर धर को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यह कैसा साधु है! न जटा और न दाढ़ी। राजकुमारों की तरह आकृति है। वे भाव विह्वल होकर देखते ही रहे। महेन्द्र के अनुरोध पर उन्हें भी दीक्षा दी गयी। बाद में उन्होंने कहा—"डरने की जरूरत नहीं, तुम्हारा लड़का कभी साधु नहीं बनेगा। मुझे साधुओं की फौज नहीं तैयार करनी है। मैं संसार-त्यागी संन्यासियों को नहीं, आदर्श-गृहस्थों को चाहता हूँ। गृहस्थ-धर्म की प्रतिष्ठा करना मेरा एक मात्र उद्देश्य है।"

बनारस से वापस लौटने के पूर्व ईश्वर धर ने अपने गुरुदेव से निवेदन किया—"गुरुदेव एक बार मेरे घर आपको चरण-रज गिराना होगा।"

निगमानन्द ने इस निमंत्रण को स्वीकार करते हुए कहा—"उधर जब यात्रा करूँगा तब आऊँगा।"

इस घटना के दस वर्ष बाद की बात है। नित्य की तरह ईश्वर धर पूजा करने के पश्चात् कमरे के बाहर आये तो अचानक उन्हें मिरगी का दौरा पड़ गया। बेहोश होकर वे गिर पड़े। चारों तरफ हलचल मच गयी। पहले लोगों को संदेह हुआ कि शायद किसी साँप ने काटा है। ओझा ने आकर कहा—"नहीं, इनके शरीर में साँप का जहर नहीं है।"

कविराज आये और जाँच के बाद कहा—"यह तो मिरगी है। इस रोग का इलाज मेरे पास नहीं है।"

शहर से बड़े कविराज को बुलाया गया। उन्होंने जाँच के बाद कहा—"बहुत देर हो गयी है। हालत चिन्ताजनक है। दस-बारह घण्टे तक जीवित रहेंगे।"

कविराज की इस राय को सुनकर घर के लोग ही नहीं, पड़ोसी भी दुःखी हो गये। इधर एक और मुसीबत इंतजार कर रही थी। ईश्वर धर को सूचित किया गया था कि चटगाँव शहर में स्थित हजारी रोड पर प्रसन्नदास के यहाँ गुरुदेव मौजूद हैं। यहाँ से कोई आदमी जाकर उन्हें गाड़ी से ले आयेगा। अब इस मुसीबत के वक्त उन्हें बुलाकर झंझट में क्यों डाला जाय। लोगों ने सुझाव दिया कि गुरुदेव को आज नहीं, किसी और दिन आने को कहा जाय।

यह सूचना देने के लिए महेन्द्र को शहर भेजा गया। महेन्द्र को देखते ही निगमानन्द ने कहा—"अजीब लड़के हो, आज ले जाने की बात थी और अभी आ रहे हो। खैर, टैक्सी लाये हो न ?"

साथ आये प्रसन्न ठाकुर ने कहा—"हम आपको मना करने आये हैं कि आप आज न आयें। कारण ईश्वर भाई की हालत बहुत खराब है। शायद सुबह तक जीवित नहीं रहेंगे। अगर आप ऐसे मौके पर वहाँ जायेंगे और कहीं ईश्वर मर गया तो आपकी बदनामी होगी। मेरी राय है......।"

प्रसन्न ठाकुर की बात पूरी होने के पहले ही निगमानन्दजी गरज उठे–"गुरु की बदनामी होगी? महेन्द्र, जल्दी से एक टैक्सी ले आओ।"

टैक्सी आते ही सभी तुरंत मेघला गाँव की ओर रवाना हो गये। अधिकांश लोगों को इस बात की सूचना थी कि स्वामी निगमानन्दजी आज ईश्वर के घर आ रहे हैं अतएव यहाँ लोगों की अपार भीड़ एकत्रित हुई थी।

टैक्सी से उतरकर निगमानन्द सीधे मरणासन्न ईश्वर धर के पास आये। कुछ देर तक बेहोश पड़े ईश्वर धर की ओर देखने के बाद बोल उठे–"ईश्वर, ईश्वर।"

निगमानन्दजी की तेज आवाज सुनकर सभी लोग चौंक उठे। जो आदमी बेहोश है, वह इस पुकार को कैसे सुनेगा? इसके बाद निगमानन्द उस कमरे में चले गये जहाँ उनके लिए ठहरने की व्यवस्था की गयी थी।

निगमानन्दजी के जाने के कुछ देर बाद ईश्वर धर की आँखें खुलीं। उसने चकित दृष्टि से चारों ओर लोगों की भीड़ देखकर पूछा–"इतनी भीड़ यहाँ क्यों है?"

छोटे पुत्र ने कहा–"गुरुदेव आये हैं।"

ईश्वर धर ने चौंककर कहा–"जा, जल्दी से एक लोटा पानी ले आ।"

पुत्र के पानी लाने पर उसके सहारे ईश्वर धर उस कमरे में आये जहाँ निगमानन्दजी विराजमान थे। उपस्थित लोगों को इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि जो व्यक्ति मरणासन्न था, वह इस संत की आवाज पर कैसे तुरंत होश में आ गया।

निगमानन्द ने पूछा–"क्या बात है?"

ईश्वर ने कहा–"जरा चरणामृत दीजिये।"

लोटे के पानी में उन्होंने पैर का अँगूठा स्पर्श किया और तब कहा–"अब जाओ, आराम करो।"

+ \+ \+ \+

इसी प्रकार की एक अद्‌भुत घटना मैमनसिंह जिले के बेनियारचर गाँव में हुई थी। वहाँ एक हलवाई रहता था। उसकी पत्नी के पेट में हमेशा दर्द बना रहता था। पाँच-छः साल तक लगातार इलाज करने पर भी ठीक नहीं हुआ। तंग आकर उसने इलाज कराना बन्द कर दिया।

हलवाई की पत्नी को ज्ञात हुआ कि गाँव में एक उच्चकोटि के संत आये हैं तब वह पति से बोली—"एक बार संतजी के यहाँ मुझे ले चलो।"

पति ने सोचा, सन्तजी के यहाँ पैसा लगेगा नहीं। अगर मुफ्त में भला हो जाता है तो बुरा क्या है। वह पत्नी को लेकर काली मंदिर में आया। गाँव के अधिकांश लोग हलवाई की पत्नी की बीमारी से परिचित थे। मंदिर में दर्शकों की भीड़ लग गयी।

हलवाई की जबानी सारी बातें सुनने के बाद निगमानन्द ने कहा—"देखो भाई, मैं कोशिश करूँगा, पर नतीजा भगवान् के हाथ है। तुम एक मिट्टी की हाँड़ी ले आओ और सरसों का तेल भी लेते आना।"

हलवाई दोनों सामग्री ले आया। आग जलाकर हाँडी में तेल उड़ेल दिया गया। तेल जब खौलने लगा तब उसमें पैर डालकर निगमानन्द ने उस महिला के पेट पर रख दिया। पैर रखने के साथ ही दर्द में कमी होने लगी। कुछ देर बाद सारा दर्द जाता रहा। यह दृश्य देखकर सभी दर्शक अवाक् रह गये।

इसी प्रकार निगमानन्दजी अनेक बीमार तथा पीड़ितों का उपकार करते रहे। धीरे-धीरे उनकी योग-विभूति का प्रचार होता गया।

त्रिपुरा जिले की घटना तो और भी अद्‌भुत है। इस गाँव में अश्विनी नामक एक व्यक्ति अपनी माँ और पत्नी के साथ रहता था। अश्विनी निगमानन्द का भक्त था। गरीबी में जीवन का निर्वाह कर रहा था। अचानक गाँव में हैजे का प्रकोप हुआ। अश्विनी हैजे का शिकार हुआ और उसकी मृत्यु हो गयी। पूरा परिवार अनाथ हो गया। सारा परिवार पहले से ही दरिद्रता से जूझ रहा था और अब मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। अब क्या होगा? कौन उनका पेट पालेगा? कौन मुसीबतों के समय उनका सहायक होगा? यही सब सोचते-सोचते माँ की निगाह सामने दीवार पर टँगी निगमानन्द की तस्वीर पर पड़ी।

इस चित्र पर नजर पड़ते ही माँ आवेश में आकर बोली—"सारा दोष इसी संत का है। दिन-रात इनके प्रति भक्ति रखने के कारण मेरा लड़का चल बसा।"

दीवार के पास आकर वह चित्र फेंकने को उद्यत हुई तो देखा— चित्र में संत मुस्करा रहे हैं। यह देखकर वह और आग बबूला हो उठी। दीवार से चित्र उखाड़कर तेजी से तालाब की ओर आयी और ज्योंही वह उसे फेंकने को उद्यत हुई त्योंही पीछे से आवाज आयी—"माँ।"

वृद्धा चौंक उठी। यह कौन पुकार रहा है। यह तो अश्विनी की आवाज है। तभी पुनः वही आवाज आयी—"माँ, मैं भी तो तेरा बेटा हूँ। तुझे किस बात का दुःख है?"

वृद्धा ने देखा— यह तो तस्वीरवाला संत है जिसे वह फेंकने आयी थी। यह दृश्य देखकर वह भय से काँपने लगी।

संत ने कहा—"चलो माँ, अब घर चलो। मैं तुझे माँ कहकर पुकारूँगा। इससे तुझे शान्ति मिलेगी। अश्विनी मेरे पास ही है।"

वृद्धा सोचने लगी कि यह संत अचानक यहाँ कैसे आ गया? किसने इन्हें बताया कि मैं तालाब की ओर उनका चित्र फेंकने आयी हूँ?

वृद्धा को क्या मालूम कि उच्चकोटि के साधक अपने भक्तों की रक्षा सर्वदा करते हैं। धीरे-धीरे वृद्धा की शोचनीय दशा सुधरती गयी।

इस घटना के कुछ दिनों बाद एक नयी आफत आयी। पुत्रवधू और एक मात्र पौत्र को लेकर वृद्धा समय गुजार रही थी। बहू खूबसूरत होने के अलावा जवान थी। गाँव के मनचलों की आँखों में वह जँच गयी। कुछ लोगों ने मिलकर उसके घर पर हमला करके अपनी वासना पूर्ति के लिए तैयार हुए।

प्रथम दिन सभी मनचले कामयाब नहीं हुए। कुछ दिनों बाद पुनः रात के वक्त घर के चारों ओर से हमला शुरू हुआ। कमरे के भीतर वृद्धा, अश्विनी की पत्नी और दो वर्ष का बालक था। दरवाजा टूटते देख वृद्धा एकाग्र मन से संत को पुकारने लगी—''बाबा, हमारी रक्षा करो। बहू की इज्जत बचा लो। दया करो, मेरे देवता।''

दरवाजा टूट चुका था और कुछ मनचले भीतर आ गये थे। अचानक उन लोगों ने देखा कि सामने एक हृष्टपुष्ट संत आग्रेय दृष्टि से उनकी ओर देख रहा है। उस दृष्टि में ऐसा उत्ताप था कि कोई आगे बढ़ नहीं पा रहा था। धीरे-धीरे सभी दुर्वृत्त पीछे हटने लगे और अचानक 'जल गया, बाप रे,' कहते हुए भाग खड़े हुए। इस प्रकार अश्विनी के परिवार की रक्षा हुई।

जाते समय संत निगमानन्द ने कहा—''अब डरने की जरूरत नहीं। मैं मकान के चारों ओर रेखा खींच देता हूँ। इस रेखा के बाहर मैं हमेशा पहरा देता रहूँगा। रात को इस रेखा के बाहर कभी मत जाना।''

स्वामी निगमानन्द अपने गुरु के निर्देशानुसार पहाड़ या जंगल में साधना करने नहीं गये। कष्ट से पीड़ित और संतप्त मानव की सेवा में लगे रहे। उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य था— सनातन-धर्म की रक्षा, सत्शिक्षा का प्रचार और जीव सेवा। वे कहा करते थे—''अगर मनुष्य को शान्ति देना है तो पहले स्वयं मनुष्य बनो। मनुष्य की सेवा करते हुए उन्हें मनुष्य बनाओ।''

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कुमिल्ला में आश्रम की स्थापना की। यहाँ से 'आर्य दर्पण' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। आश्रम में ब्रह्मचर्य विद्यालय स्थापित किया। इसके अलावा 'शंकर का मत और गौरांग का मार्ग', 'प्रेमिक गुरु', 'जयगुरु', 'ब्रह्मचर्य की साधना' आदि ग्रंथों का निर्माण किया। नवम्बर माह सन् १९३५ ई० के दिन दोपहर वक्त वे योगासन में ध्यानमग्न हो गये और तब लोगों को ज्ञात हुआ कि स्वामी निगमानन्द ने सायुज्य प्राप्त कर लिया है।

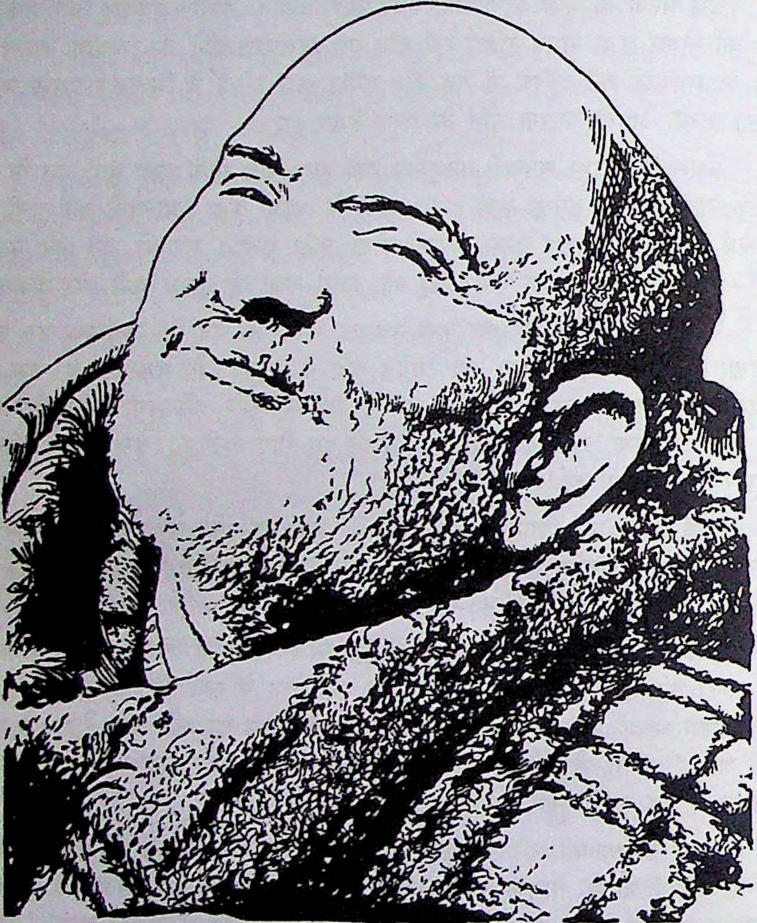

नीब करौरी के बाबा

नीब करौरी के बाबा

फरूखाबाद का रेलवे स्टेशन। एक गाड़ी खड़ी थी। लोग गाड़ी पर चढ़-उतर रहे थे। इन्हीं यात्रियों में कम्बल लपेटे एक बाबा प्रथम श्रेणी के डिब्बे में सवार हो गये। अगले स्टेशन पर एक एंग्लो इंडियन टिकट चेकर आया। प्रथम श्रेणी के डिब्बे में एक नेटिव साधु को देखकर वह क्रोध से जल उठा। वह यह जानता था कि भारत के अधिकांश साधु बिना टिकट रेल में सफर करते हैं। उसने ऐसे अनेक साधुओं को पकड़ा था। लेकिन इस साधु की यह मजाल जो प्रथम श्रेणी में आकर बैठ गया?

ब्रिटिश शासन काल था। टिकट है या नहीं, बिना पूछे अगले स्टेशन पर उसने बाबा को डिब्बे से बाहर निकाल दिया। बिना प्रतिवाद किये बाबाजी चुपचाप गाड़ी से उतरकर स्टेशन के एक बेंच पर बैठ गये।

गाड़ी छूटने का समय हो गया जानकर स्टेशन के कर्मचारी ने घण्टी बजाई। गार्ड ने हरी झण्डी दिखाई। गाड़ी छोड़ने के कागजात दे दिये गये। इंजन की सीटी बज उठी। लेकिन गाड़ी अपनी जगह से नहीं हिली। ड्राइवर-खलासी गाड़ी और इंजन की जाँच करने लगे। गाड़ी के न छूटने पर स्टेशन के कर्मचारी और गार्ड आकर ड्राइवर से कारण पूछने लगे।

ड्राइवर ने कहा—''इंजन में कोई खराबी नहीं है। पूरी गाड़ी चेक कर चुका। माजरा क्या है, समझ में नहीं आ रहा है?''

धीरे-धीरे दो घण्टे बीत गये। गाड़ी जहाँ की तहाँ खड़ी रही। सभी लोग परेशान थे। यात्रियों में एक युवक ने विनोद के रूप में बाबाजी से कहा—''बाबा, कोई मंतर-वंतर फूँकिये गाड़ी चले। सभी परेशान हो रहे हैं।''

बाबा ने कहा—''तो हम क्या करें। एक तो हमें गाड़ी से उतार दिया और दूसरे हमसे गाड़ी चलाने के लिए मंतर फूँकने को कह रहे हो।''

बाबा की शिकायत सुनने पर उस युवक ने कहा—''आपके पास टिकट नहीं होगा।''

बाबा ने तुरंत एक नहीं, कई टिकट प्रथम श्रेणी के दिखाये। यह देखकर उपस्थित सभी लोगों को विस्मय हुआ। टिकट रहते क्यों मुसाफिर को उतारा गया? क्या फर्स्ट क्लास में केवल अंग्रेज ही सफर कर सकते हैं? ब्रजभूमि में संतों को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। लोग उस चेकर को खोजने लगे जिसने बाबा को उतार दिया था।

लोगों में उत्तेजना फैलते देख उक्त टिकट चेकर स्टेशन मास्टर के कमरे में जाकर बैठ गया। इसके बाद कुछ लोगों ने आदर के साथ बाबा को डिब्बे के भीतर बैठाया।

बाहर खड़े किसी व्यक्ति ने कहा—''बाबा, अब तो गाड़ी चलाइये।''

बाबा ने गाड़ी को थपथपाते हुए कहा—''चल भाई।''

इतना कहना था कि बिना सीटी के गाड़ी चल पड़ी। अब लोगों को समझते देर नहीं लगी कि बाबाजी के कारण ही गाड़ी रुकी हुई थी। इस घटना का प्रचार इस क्षेत्र में तेजी से हो गया। अगले स्टेशन पर बाबा उतरे जिसका नाम था— नीब करौरी।

+ + + +

बाबा आगरा जिला के अकबरपुर गाँव के निवासी थे। इसी गाँव के एक सम्पन्न परिवार में आपका जन्म हुआ था। यह उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों की बात है। स्कूली शिक्षा सामान्य हुई थी। कभी-कभी किसी प्रश्न के उत्तर में आप कह देते थे—''हम पढ़े-लिखे नहीं हैं।''

बाबा की जन्मतिथि, माता-पिता का नाम आदि के बारे में किसी को कुछ पता नहीं है। बाबा इन बातों का किसी से उल्लेख भी नहीं करते थे। कहा जाता है कि आपके बचपन का नाम लक्ष्मीनारायण शर्मा था। सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् जब आप नीब करौरी गाँव में आकर रहने लगे तब वहाँ के लोग आपको बाबा लक्ष्मणदास वैरागी कहने लगे। यहाँ तक कि नीब करौरी गाँव से कुछ दूर जहाँ आप रहते थे, वहाँ एक हाल्ट स्टेशन बनाकर रेलवे ने उस स्टेशन का नाम रखा—बाबा लक्ष्मणदास पुरी।

कहा जाता है कि आप बचपन से ही सिद्ध थे। मित्रों तथा पड़ोसियों को भविष्य की सूचनाएँ देते थे। आगे चलकर वैसी घटनाएँ हो जाती थीं। एक बार आपने अपने घर के लोगों से कहा कि आज रात डाका पड़ेगा। बालक समझकर किसी ने आपकी बात पर ध्यान नहीं दिया, पर आपकी भविष्यवाणी सत्य हुई। उस रात को डाका पड़ा था।

जिन दिनों आपकी उम्र ग्यारह वर्ष की थी, उन्हीं दिनों किसी अज्ञात प्रेरणावश लक्ष्मीनारायण घर से भाग गये। गुजरात के बबानियाँ गाँव में आकर रहने लगे। यह गाँव मोरवी से ४० मील दूर है। यहाँ वैष्णवों का एक प्राचीन आश्रम है। यहीं आप साधन-पूजन करने लगे। बाद में रमाबाई के आश्रम में चले आये।

संतों में एक परम्परा है। वे अपने शिष्यों को उचित समय पर बुलाकर दीक्षा देते हैं। लक्ष्मीनारायण को उनके गुरु ने आकर्षित किया और समय पर दीक्षा दी। दीक्षा के पश्चात् उनका नाम हुआ— लछमनदास वैरागी।

बाबा लछमनदास में कुछ खूबियाँ थीं। वे बाह्य आडम्बर नहीं करते थे। रंगीन वस्त्र पहनना, जटा-दाढ़ी रखना, त्रिपुण्ड लगाना, माला जपना, शिष्य बनाकर दीक्षा देना या भक्तों को उपदेश देना आदि कार्य नहीं करते थे। शरीर पर केवल धोती रखते थे। आगे चलकर कम्बल ओढ़ने लगे। जाड़े के दिनों में स्वेटर जरूर पहनते थे।

बबानियाँ गाँव में बाबा लगभग सन् १९०७-८ में आये थे। स्थानीय लोगों की मदद से यहाँ स्थित्त तालाब के किनारे हनुमानजी का एक मंदिर बनवाया था। बबानियाँ में आप सात वर्ष तक तपस्या करने के बाद तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। विभिन्न तीर्थों का दर्शन करते हुए आप नीब करौरी गाँव में आये।

नीब करौरी के ग्रामवासियों ने आपको सादर अपनाया। निश्छल ग्रामवासियों की आत्मीयता और मधुर व्यवहार ने आपको स्नेह-पाश में बाँध लिया। यहाँ के लोग आपके योगैश्वर्य से प्रभावित हो गये। इन लोगों ने साधना करने के लिए जमीन के भीतर एक गुफा बना दी। अगली बरसात के मौसम में जब गुफा नष्ट हो गयी तब पुनः ऊँचे स्थान पर दूसरी गुफा का निर्माण किया गया। आप दिन भर गुफा में साधना करते थे। शाम के समय गाँव के लोगों से मिलते थे।

नीब करौरी गाँव ब्रज का पिछड़ा इलाका था। यहाँ एक भी मंदिर नहीं था। बाबा ने निश्चय किया कि हनुमानजी का मंदिर बनवाऊँगा। इस गाँव में एक अर्से से रहने के कारण यहाँ के लोगों की स्थिति के बारे में जानकारी उन्हें थी। गाँव के एक समृद्ध बनिये से उन्होंने कहा कि हनुमानजी का मंदिर बनवा दे।

वह राजी हो गया। निश्चित स्थान पर ईंट-पत्थर गिर गये। इसके बाद उसने हाथ खींच लिया। बाबा समझ गये कि अब उसकी दिलचस्पी समाप्त हो गयी है।

कई दिनों बाद सहसा उसके दुकान में आग लग गयी। गाँव में आग बुझाने का कोई साधन नहीं था। बाबा की योग-शक्ति से बनिया परिचित था। वह दौड़ा हुआ बाबा के पास आया। उनसे प्रार्थना करने लगा।

बाबा ने कहा—''तूने हनुमानजी का मंदिर बनवाने का वायदा किया, बाद में मुकर गया। जा, उनसे क्षमा माँग और मंदिर बनवा दे।''

बनिये ने कहा—''मंदिर मैं बनवा दूँगा। इस वक्त तो मुझे बचाइये। वर्ना में तबाह हो जाऊँगा।''

''जा, जा। हनुमान मंदिर में जा। उनसे प्रार्थना करने पर सब ठीक हो जायगा।''

वह तुरंत हनुमानजी के विग्रह के पास आकर प्रार्थना करने लगा। थोड़ी देर बाद दुकान के नौकर ने आकर कहा—"मालिक, दुकान की आग अपने आप बुझ गयी। सिर्फ मिर्च के दो बोरे थोड़े से जल गये हैं।"

इस घटना के बाद बनिये ने गाँव में हनुमानजी का मंदिर बनवा दिया और हवन-कुण्ड भी बन गया। बाबा ने देखा— मंदिर के आसपास कुआँ नहीं है। इस कार्य के लिए उन्होंने एक दूसरे बनिये को आदेश दिया।

"तू कुआँ बनवा दे। तुझे पुत्र होगा।" बाबा ने कहा।

बनिया अपुत्रक था। बाबा का आदेश पाते ही उसने मंदिर के समीप एक कुआँ बनवा दिया। उसी वर्ष उसे पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। इसी प्रकार बाबा गाँव के लोगों पर अपनी कृपा की वर्षा करते रहे।

+ + + +

बाबा के बढ़ते प्रभाव को देखकर गाँव के कुछ ब्राह्मण स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उनके दरबार में आते रहे। एक बार एक सेठ चाँदी की थाली में सोने के कुछ सिक्के लेकर भेंट देने आया। बाबा ने उसे ग्रहण नहीं किया। सेठ भेंट लेकर वापस चला गया।

बाबा के इस व्यवहार से ब्राह्मणों का दल नाराज हो गया। वे इस रकम को बाबा के माध्यम से प्राप्त करना चाहते थे। लेकिन उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। उनका कहना था कि बाबा को जरूरत नहीं थी तो उसे लेकर हम ब्राह्मणों को बाँट देते। उन लोगों ने बदला लेने को सोचा। इसके लिए मौका ढूँढ़ने लगे।

प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी बाबा यज्ञ करानेवाले थे। तैयारियाँ चल रही थीं। इस यज्ञ के लिए एक सेठ तीस टीन घी लेकर आया। उस समय बाबा गाँव में नहीं थे। गंगा नहाने फरूखाबाद गये हुए थे। मौका पाकर ब्राह्मणों ने बदला ले लिया। सेठ को बताया गया कि कुछ कारणों से इस वर्ष यज्ञ नहीं होगा।

यह समाचार सुनकर सेठ घी के टीनों को लेकर वापस चला गया। गंगा-स्नान से वापस आने के बाद बाबा को सारी बातें मालूम हुईं। उन्होंने स्थानीय ब्राह्मणों को खूब फटकारा। यह एक ऐसी घटना थी जिसके कारण बाबा का मन इस गाँव से उचट गया। उनके अन्तर की घुमक्कड़ प्रवृत्ति जाग उठी। उन्होंने इस गाँव को हमेशा के लिए छोड़ दिया। लेकिन गाँव ने इन्हें नहीं छोड़ा। वे सर्वत्र 'नीब करौरी के बाबा' के नाम से आजीवन प्रसिद्ध रहे।

यहाँ से आप फतेहगढ़ आये। यहाँ से कई स्थानों का चक्कर काटते हुए अकबरपुर आये। यहाँ अपने घर न जाकर डाक बंगले में रुक गये। आपके आगमन का समाचार पाकर कुछ भक्त दर्शन करने चले आये।

बाबा सभी को 'तू' या 'तुम' कहते थे और अपने बारे में 'हम' शब्द का प्रयोग करते थे। एक दिन उपस्थित लोगों से बातचीत करते हुए सहसा पास बैठे श्यामसुन्दर शर्मा से उन्होंने कहा—"तू बगिया चला जा। अभी कोई नीब करौरी के बाबा को खोजता हुआ आयेगा। उसके साथ एक गूँगा-बहरा लड़का होगा। उनसे कहना कि यहाँ कोई आबा-बाबा नहीं है। जा, तेरा गूँगा-बहरा लड़का ठीक हो जायगा। इसके अलावा और जो मन में आये कह देना।"

शर्माजी तुरंत बाहर आये। फाटक के पास पहुँचते ही एक कार आकर डाक बंगले के पास रुक गयी। उसमें से एक सज्जन उतरे और कहा—"मैं फिरोजाबाद का सिविल सर्जन डॉ० बेग हूँ। पता चला है कि इस बंगले में नीब करौरी के बाबा ठहरे हैं। उनसे मिलना चाहता हूँ। मेरा यह लड़का पैदाइशी गूँगा-बहरा है। काफी इलाज किया गया, पर ठीक नहीं हुआ। बाबा का आशीर्वाद मिल जाय तो ठीक हो जाय।"

शर्माजी ने बाबा के निर्देशानुसार सारी बातें कहने के बाद अज्ञातवश लड़के की ओर देखते हुए पूछा—"क्या नाम है तुम्हारा?"

डॉ० बेग कुछ कहते, उसके पहले ही लड़के ने अस्पष्ट स्वर में अपना नाम बताया। डॉ० बेग चौंक उठे।

शर्माजी ने कहा—"आपका लड़का बोलता तो है और सुन भी लेता है। घबड़ाने की जरूरत नहीं जल्द ठीक हो जायगा।"

अकबरपुर से बाबा आगरा आये। यहाँ भी बाबा के अनेक भक्त थे। वे एक भक्त के यहाँ ठहर गये। आपका दर्शन करने के लिए आपके भक्त डॉक्टर लक्ष्मीचन्द्र के साथ डॉक्टर सुरेशचन्द्र मेहरोत्रा भी आये थे। इनकी शक्ल देखते ही बाबा ने कहा—"खाली हाथ क्या आया है, मिठाई खिला, हम मिठाई खायेंगे।"

तुरंत बाजार से मिठाई मँगवायी गयी। एक टुकड़ा खाने के बाद बाबा ने सारी मिठाई लोगों में बँटवा दी।

डॉ० मेहरोत्रा ने पूछा—"बाबा, किस खुशी में मिठाई बँटवायी गयी?"

बाबा ने कहा—"तू बाप बन गया है, इस खुशी में।"

यह बात सुनकर डॉ० मेहरोत्रा विस्मित हुए। उनकी पत्नी गर्भवती थी और प्रसव के सिलसिले में इन दिनों मायका गयी हुई हैं। बच्चा पैदा होने की सूचना अभी तक उन्हें नहीं मिली है। ऊहापोह स्थिति में वे घर वापस आये तो इस आशय का तार प्राप्त हुआ कि उनकी पत्नी को लड़का हुआ है।

+ \+ \+ \+

सन् १९४० के आसपास बाबा नैनीताल आये। यहाँ आकर आदत के अनुसार चारों ओर घूमते रहे। एक बार मनोरा आये तो यहाँ का वातावरण उन्हें इतना पसन्द

आया कि भविष्य में नैनीताल के भक्तों के यहाँ न रुक कर इस सुनसान स्थान में चले आते थे और किसी पेड़ के नीचे रात गुजारते थे। आगे चलकर यहाँ आश्रम तथा हनुमानजी का मंदिर बनवाने के कारण इस स्थान का नाम हनुमानगढ़ हो गया।

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जिन दिनों उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे, उन दिनों बाबा की ख्याति सुनकर आपके सम्पर्क में आये थे। नैनीताल में बाबा से आपकी मुलाकात बराबर होती थी। आपने अपने एक संस्मरण में लिखा है—''नीब करौरी के बाबा हमेशा एक कम्बल ओढ़े घूमा करते हैं। वे प्रायः नैनीताल आते हैं। यहाँ हनुमानगढ़ में ठहरते हैं। यह बात कोई नहीं जानता कि वे कहाँ से आते हैं और कहाँ चले जाते हैं। कोई उनका वास्तविक नाम तक नहीं जानता।''

हनुमानगढ़ के बाद इस क्षेत्र में बाबा ने कई जगह आश्रम और मंदिर बनवाये। भूमियाधार, काकड़ीघाट, पिथौरागढ़, धारचूला, जिसी, गर्जिला, बदरीनाथ, ऋषिकेश आदि स्थानों पर आश्रम बनवाये, पर मुख्य आश्रम कैंची रहा। नैनीताल से कुछ दूर पर यह आश्रम है। नीब करौरी के बाद कैंची आश्रम में उनका अधिकतर समय गुजरा है।

गर्मियों में आपका दर्शन करने के लिए अनेक गणमान्य व्यक्ति आते थे। इनमें उत्तर प्रदेश के राज्यपाल सर्वश्री वी०वी० गिरि, राजा भद्री (राज्यपाल), भगवान सहाय (केरल के भू०पू० राज्यपाल), उपराष्ट्रपति गोपालस्वरूप पाठक, गुलजारीलाल नन्दा, लालबहादुर शास्त्री, जगन्नाथ प्रसाद रावत जैसे राजनेता और प्रसिद्ध उद्योगपति जुगल-किशोर बिड़ला भी थे।

एक ओर जहाँ आपका इतना प्रभाव था कि बड़े-बड़े लोग आते थे, वहीं दूसरी ओर अनजाने क्षेत्र में एक बार आपको संदिग्ध व्यक्ति समझकर दफा १०९ में चालान कर दिया गया और आप हवालात में बन्द हो गये।

इस थाने के इंचार्ज नासिर अली थे जो किसी मामले की जाँच करने के लिए दूर कहीं गये थे। रात ग्यारह बजे वापस आकर थाने का हालचाल पूछा तो पता लगा कि एक व्यक्ति को दफा १०९ में बन्द कर दिया गया है। नासिर अली ने बन्दी बाबा को उड़ती निगाह से देखा और घर चले गये।

दूसरे दिन भोर के समय थाने से सिपाही आया और भयभीत स्वर में कहा—''हुजूर, कल जिस आदमी को दफा १०९ में बन्द किया गया था, लगता है वह कोई भूत-प्रेत है। बाहर से हवालात में ताला बन्द है, मगर जब देखता हूँ तब वह बाहर निकल आता है। उसके बाहर आते समय ताला अपने आप खुल जाता है और उसके भीतर जाते ही बन्द हो जाता है। थाने के सभी लोग घबड़ाये हुए हैं। मेहरबानी करके जल्दी चलिये।''

नासिर अली समझ गये कि यह आदमी कोई ऊँचे दर्जे का फकीर है जो अपना चमत्कार दिखा रहा है। तुरंत वे थाने पर आये और सिपाहियों द्वारा की गयी बेअदबी के लिए माफी माँगी।

बाबा ने कहा—"न तुझसे कोई गलती हुई है और न हमारी किसी तरह की तौहीनी, फिर तू माफी क्यों माँग रहा है?"

बाबा की उदारता देखकर नासिर अली प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—"अगर आप मेरे यहाँ चलकर भोजन करें तो मैं समझूँगा कि आप मुझ पर खुश हैं।"

बाबा ने कहा—"ऐसी बात? चल, आज तेरे यहाँ भोजन करूँगा।"

इस घटना के बाद नासिर अली जब कभी मुसीबत के वक्त बाबा को याद करते, उन्हें उससे छुटकारा मिल जाता था। यह बात केवल नासिर अली पर लागू नहीं थी, बल्कि ऐसे अनेक भक्त थे जिनकी समस्याएँ बाबा दूर रहकर हल कर दिया करते थे। बाबा के ऐसे चमत्कारों से कविवर सुमित्रानन्दन पन्त और श्री हरिवंश राय बच्चन भी प्रभावित हुए थे।

+ \+ \+ \+

द्वितीय महायुद्ध की बात है। झाँसी के सिविल सर्जन बाबा के भक्त थे। उन दिनों बाबा उनके यहाँ ठहरे हुए थे। एक दिन भोजन के पश्चात् बाबा तख्त पर सो गये। सिविल सर्जन साहब ने बाबा के पास ही फर्श पर बिस्तर लगाया ताकि रात को अचानक बाबा को कोई जरूरत हो तो तुरंत सेवा कर सकेंगे।

रात एक बजे अचानक बाबा तड़पने लगे। सिविल सर्जन की नींद खुल गयी। बाबा ने अपने शरीर से कम्बल उतारकर उन्हें देते हुए कहा—"इसे किसी जलाशय में फेंक आ।"

सिविल सर्जन ने कहा—"इतनी रात को कहाँ जाऊँगा?" कल सबेरे फेंकवा दूँगा।"

बाबा ने कहा—"नहीं, अभी ले जा।"

बाबा की आज्ञा का उल्लंघन करने की हिम्मत सर्जन साहब को नहीं हुई। गैरेज से गाड़ी निकालकर चल दिये। जब वे लौटे तब सबेरा हो गया था। घर में प्रवेश करने पर उन्होंने देखा— बाबा प्रसन्न-मुद्रा में सबसे बातचीत कर रहे हैं।

बाद में उन्होंने बाबा से कम्बल बहाने का कारण पूछा।

बाबा ने कहा—"तेरा जो लड़का फौज में है, कल वह जर्मन सैनिकों का सामना नहीं कर सका। उसकी टुकड़ी में भगदड़ मच गयी। वह स्वयं भी भागा और पहाड़ की चोटी से नीचे कूद गया। नीचे दलदली जमीन थी, उसमें फँस गया। पहाड़ पर से सैनिक गोलियों की बौछार करते रहे। बाद में उन लोगों ने सोचा कि अब तक वह मर गया होगा। जर्मन सैनिक ऊपर से ही वापस चले गये। वे सारी गोलियाँ मेरे कम्बल में आ गयी थीं। उसकी गर्मी मुझे परेशान कर रही थी। जब तूने कम्बल को पानी में बहाया तब शान्ति मिली।"

बाबा इस घटना का वर्णन इस तरह कर रहे थे जैसे घटनास्थल पर स्वयं मौजूद थे। रात की नींद खराब होने के कारण सिविल सर्जन साहब असंतुष्ट होकर भीतर चले गये। उन्होंने बाबा की बातों पर विश्वास नहीं किया।

बाबा के वापस जाने के दो सप्ताह बाद लड़के ने अपनी पत्नी के नाम पत्र लिखते हुए इस घटना का जिक्र किया। अन्त में लिखा, किसी दैवी-शक्ति के कारण मैं उस दिन जीवित बच गया। इस पत्र को पढ़ने के बाद सिविल सर्जन साहब दंग रह गये। मन ही मन अविश्वास के अपराध के लिए बाबा से क्षमा माँगते रहे।

+ \+ \+ \+

बाबा के एक भक्त हैं— केहर सिंह जो उत्तर प्रदेश शासन के सचिवालय में सचिव पद पर कार्य करते थे। अब अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। बाबा के एकनिष्ठ भक्त हैं। लखनऊ आने पर बाबा अधिकतर इन्हीं के घर ठहरते थे। इनका लड़का २ जनवरी, सन् १९५८ के दिन टेनिस खेल रहा था। अखरोट वाला गेंद उसकी आँखों से टकराया। आँख का चश्मा फूट गया और शीशे के अनेक कण रेटिना में धँस गये। घटना की सूचना मिलते ही केहर सिंह तुरंत आये और उसे मेडिकल कालेज ले गये। जाँच के बाद डॉक्टरों ने कहा—"इसका इलाज यहाँ सम्भव नहीं है। इसे यथाशीघ्र सीतापुर ले जाइये।"

आँख के इलाज के लिए सीतापुर की ख्याति समस्त उत्तर भारत में है। लड़के की एक आँख बचपन से ही खराब थी और अब दूसरी आँख भी खराब होने जा रही है। शायद जीवन भर लड़का अंधा बनकर रहेगा? मन में यह विचार आते ही वे फफककर रो पड़े।

तभी अचानक टेलीफोन की घंटी बज उठी। फोन उठाते ही उधर से आवाज आयी—"तू रो रहा है? सुन, लड़के को सीतापुर मत ले जाना। अलीगढ़ में डॉ० मोहनलाल के यहाँ ले जा। रोने की जरूरत नहीं। सब ठीक हो जायगा।"

केहर सिंह इतना तो समझ गये कि यह बाबा का फोन है। वे कुछ पूछना चाहते थे, पर तभी फोन रख दिया गया। बाबा का फोन करने का ढंग अलग किस्म का होता है। कहीं से किसी को वे फोन कर लेते हैं जबकि दूसरा उनसे सम्पर्क नहीं कर पाता।

बैठे-बैठे वे डॉ० मोहनलाल के बारे में सोचने लगे। तभी उन्हें याद आया कि चिकित्सा-विभाग सचिव श्री विनोद चन्द्र शर्मा की डॉ० मोहनलाल से घनिष्ठता है। तुरंत केहर सिंह ने शर्माजी को सारी घटना बताते हुए कहा कि आप डॉ० मोहनलाल से सम्पर्क करके मुझे सूचना दें।

थोड़ी देर बाद विनोद चन्द्र शर्मा ने फोन करते हुए कहा—"ठाकुर साहब, आप मुझसे मजाक करते हैं? डॉ० मोहनलाल को फोन करने पर ज्ञात हुआ कि तीन दिन हुए तुमने वहाँ एक कमरा रिजर्व करवाया है। बहरहाल मैंने उनसे कह दिया है। कल तुम लड़के को लेकर चले जाओ।"

केहर सिंह समझ गये कि यह घटना होनेवाली है जानकर बाबा ने सारा प्रबंध पहले से कर रखा है, इसीलिए सीतापुर की जगह अलीगढ़ जाने का निर्देश मिला है। दूसरे दिन केहर सिंह की पत्नी बच्चे को लेकर अलीगढ़ गयी। स्टेशन पर स्वागत के लिए डॉ० मोहनलाल उपस्थित थे।

लड़के की आँख का आपरेशन हुआ, फिर भी उसमें २०-२२ कण रह गये। उन्हें निकाला नहीं जा सका। घर वापस आने के आठ-दस दिन बाद उसकी आँखों की पट्टी खोली गयी तो एक नयी समस्या उत्पन्न हो गयी। शीशे के शेष कणों के कारण उसे अनेक बल्ब, तारे, चाँद दिखाई देने लगे। वह ४-५ फीट दूर की वस्तु देख नहीं पाता था। डॉक्टरों से शिकायत करने पर जवाब मिला— ''यह तो होगा ही, अब कोई उपाय नहीं है।''

केहर सिंह मन मसोस कर रह गये। लड़का लोगों की दृष्टि में दया का पात्र बन गया। फरवरी, १९५८ ई० को कानपुर से सहसा बाबा का फोन आया। उस समय केहर सिंह सचिवालय जाने की तैयारी कर रहे थे।

बाबा ने फोन पर आदेश दिया— ''फौरन कानपुर में पं० कामता प्रसाद दीक्षित के घर चले आओ।''

सिंह साहब को समझते देर नहीं लगी कि कोई महत्त्वपूर्ण कार्य होगा। वे अपनी कार से कानपुर रवाना हो गये। अज्ञात प्रेरणावश लड़के को भी साथ ले लिया। दीक्षितजी के घर आकर केहर सिंह ने बाबा के चरण स्पर्श किया।

बाबा ने बालक के हाथ को पकड़कर अपनी गोद में बैठाया और उसकी आँखों पर हाथ फेरने लगे। बाबा ने प्यार करते हुए बालक से कहा— ''तेरे लिए केहर सिंह को यहाँ बुलाया।''

थोड़ी देर बाद बाबा ने पुनः कहा— ''केहर सिंह, अब तुम वापस अपने कार्यालय जा सकते हो।''

इस घटना के सातवें दिन बालक ने अपने पिता से कहा— ''पिताजी, मेरी आँखें बिलकुल ठीक हो गयी हैं। अब मैं बिना चश्मे का सब कुछ देख पा रहा हूँ।''

इस सुखद समाचार को सुनकर केहर सिंह खुशी से उछल पड़े। डॉक्टर के पास जाकर उन्होंने लड़के की आँखें दिखाईं। डॉक्टर ने जाँच करने के बाद कहा— ''चिकित्सा-जगत् की यह अद्भुत घटना है। डॉक्टर ऐसा चमत्कार नहीं कर सकते।''

केहर सिंह बाबा के प्रिय भक्तों में अन्यतम हैं। इस घटना के दो वर्ष बाद बाबा घूमते हुए लखनऊ आये। बाबा के आगमन की सूचना पाते ही केहर सिंह उनका दर्शन करने गये। बाबा को रात का भोजन करने का निमंत्रण दिया।

बाबा ने कहा— ''आज नहीं, कल शाम को तेरे यहाँ आयेंगे।''

दूसरे दिन केहर सिंह ने अपनी पत्नी से दो आदमियों के लायक भोजन बनाने को कहा। पत्नी को यह बात मालूम हो गयी थी कि आज बाबा का अपने यहाँ निमंत्रण है।

शाम को सब्जी बनाकर वे आटा गूँथने लगीं। सिंह साहब बाजार से मिठाई लाने के बाद पत्नी से बोले— "मैं बाबा को लिवाने जा रहा हूँ। उनके आने पर पूरी तलना। गरम-गरम पूरी वे पसन्द करते हैं।"

वापस आते समय बाबा के साथ आठ आदमी और चले आये। केहर सिंह ने सोचा— बाबा जहाँ जाते हैं, वहाँ कुछ भक्त उनके पीछे-पीछे लगे रहते हैं। सिंह साहब एक थाली सजाकर ले आये।

बाबा ने कहा— "इन लोगों को भी थाली परोस दो।"

इस आदेश को सुनते ही केहर सिंह स्तंभित रह गये। सिंह साहब असमर्थ नहीं थे, पर सभी लोगों के लिए भोजन बनाने में नये सिरे से प्रबंध करना पड़ेगा। तुरंत रसोई-घर में जाकर पत्नी से परामर्श करने लगे। पति की बातें सुनकर पत्नी झल्लाकर बाहर चली गयी।

इस स्थिति को सम्हालने के लिए केहर सिंह को नौकरों की सहायता लेनी पड़ी। वे सब मदद देने लगे और सिंह साहब थालियाँ सजाकर आगन्तुकों को परोसने लगे। आश्चर्य की बात यह हुई कि सभी लोगों को भरपेट भोजन कराने के बाद भी सामग्रियाँ बच गयीं।

सिंह साहब समझ गये कि बाबा की योग-शक्ति के कारण आज उनकी इज्जत बच गयी। दरअसल किसी वस्तु का उत्पादन, वृद्धि या रूपान्तर कर देना योगियों के लिए सामान्य बात है। भले ही उसे लौकिक दृष्टि से चमत्कार समझा जाय।

+ \+ \+ \+

बाबा की अतीन्द्रिय-शक्ति कितनी प्रबल थी, इसका अन्दाजा निम्न घटना से लगाया जा सकता है।

घटना सन् १९५० ई० की है। उन दिनों बाबा हल्द्वानी में एक भक्त के यहाँ ठहरे हुए थे। भक्तों के प्रश्नों का उत्तर देते-देते सहसा मौन हो गये। कुछ देर बाद पास बैठे पूरनचन्द्र जोशी से उन्होंने कहा— "पूरन, एक चम्मच पानी पिला। उन्हें बहुत तकलीफ हो रही है।"

बाबा के इस कथन का क्या अर्थ है, इसे कोई समझ नहीं सका। पूरन ने एक के बदले दो चम्मच पानी पिलाया। थोड़ी देर बाद बाबा की आँखों से आँसू ढुलकने लगे। लोग अवाक् होकर देखते रहे।

बाबा ने कहा— "आज भारत का एक महान् संत चला गया। महर्षि रमण नहीं रहे।"

जिन लोगों की बाबा पर आस्था थी, उन्हें इस कथन पर विश्वास हो गया। अन्य लोग सोचने लगे कि महर्षि रमण तो तिरुमल्लाई में हैं, बाबा को यहाँ बैठे-बैठे उनके निधन की बात कैसे मालूम हो गयी? दूसरे दिन समाचार पत्रों के जरिये लोगों को यह समाचार जब ज्ञात हुआ तब लोग दंग रह गये।

+ + + +

कैंची में आश्रम बनने के बाद बाबा का अधिकांश समय यहीं गुजरता था। लेकिन वे लोगों की जबान पर 'नीब करौरी के बाबा' के नाम से प्रसिद्ध थे। यहाँ उनकी अनेक योग विभूतियाँ प्रकट हुई हैं जिसका वर्णन 'स्मृति सुधा' में प्रकाशित है।

एक बार बाबा ने आश्रम के लोगों से कहा कि आज रात भर तुम लोग पूरी बनाओ। आदेश के अनुसार काम होने लगा। दूसरे दिन लोगों को नित्य की भाँति प्रसाद दिये गये। लोगों को यह बात समझ में नहीं आ रही थी कि आखिर कई मन पूरियाँ क्यों बनवायी गयीं? बाबा से पूछने का साहस किसी को नहीं हो रहा था। लोगों ने समझ लिया कि सारा सामान अन्त में फेंकना पड़ेगा।

उस दिन शाम होने के पहले एक बस आयी और आश्रम की दीवार से इस कदर टकराई कि उसके दो पहिये निकल कर खड्ड में जा गिरे। बस इस तरह खड़ी हो गयी कि रास्ता बन्द हो गया। कुछ ही देर में दोनों ओर डेढ़ सौ के लगभग कार, बस आदि की लाइनें लग गयीं। अंधेरा बढ़ने लगा।

उन दिनों कैंची में केवल चाय की एक दुकान थी। आखिर इतने आदमी भोजन कहाँ करते? बाबा ने आगत सभी यात्रियों को पूरी-हलवा खिलाया। बच्चों और महिलाओं को आश्रम में तथा पुरुषों को बस में सोने का आदेश दिया। सभी लोगों को कम्बल दिये गये। यह सब देखकर आश्रमवासियों को ज्ञान हुआ कि बाबा ने कल इतनी पूरियाँ क्यों बनवायी थीं।

इसी कैंची आश्रम की घटना है। बाबा की कार का ड्राइवर हबीबुल्ला खाँ था। एक दिन उसने कहा— "बाबा, गाड़ी में पेट्रोल नहीं है। अगर आपको कहीं जाना हो तो आज्ञा दें जाकर पेट्रोल भरवा लाऊँ।"

बाबा ने कहा कि उन्हें कहीं जाना नहीं है। दूसरे ही दिन रात को खाँ को बुलाकर उन्होंने कहा— "गाड़ी निकाल, जाना है।"

खान ने कहा— "गाड़ी में पेट्रोल आपने भरवाया नहीं, गाड़ी कैसे चलेगी? इस वक्त आपको कहाँ जाना है?"

बाबा ने कहा— "अल्मोड़ा जाना है। तू गाड़ी चला।"

गाड़ी रवाना हुई। चार या पाँच किलोमीटर चलने के बाद गाड़ी रुक गयी। अब जंगल में रात गुजारनी पड़ेगी, यह समझकर खान अपनी सीट पर सो गया।

यह देखकर बाबा ने कहा— "सो क्यों गया? आसपास के किसी झरने से पानी लाकर टंकी में डाल दे।"

"क्या?" हबीबुल्ला बुरी तरह चौंक उठा। फिर कहा— "पेट्रोल की जगह पानी डाल दूँ? पानी छोड़ने से गाड़ी खराब हो जायगी। अब अगर यही हुक्म दोबारा देंगे तो कल ही मैं आपकी नौकरी छोड़ दूँगा।"

बाबा ने कहा— "ज्यादा पानी मत डालना। सिर्फ तीन कैन डालना।"

टंकी में पानी डालने के बाद हबीबुल्ला गाड़ी चलाने लगा। रात भर गाड़ी चलाने के बाद सबेरे आश्रम में वापस आया। बाबा के इस चमत्कार को देखकर वह स्वयं चकित रह गया। पानी से गाड़ी कैसे रात भर चलती रही?

+ + + +

उत्तर प्रदेश कांग्रेसी मंत्रिमंडल के मंत्री श्री जगन प्रसाद रावत रानीखेत में आयोजित एक मीटिंग में भाग लेने आये थे। कार्यक्रम समाप्त होने के बाद वे बाबा का दर्शन करने आये। बाबा ने उन्हें प्रसाद खिलाने के बाद कहा— "अब तू यहाँ से जल्द भाग जा।"

रावतजी जरा परेशान हुए। आखिर बाबा मुझे यहाँ से क्यों भगा रहे हैं। प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ, तुरंत नैनीताल चले आये। अपने कमरे में जाते ही उन्हें भूकम्प का सामना करना पड़ा। दूसरे दिन उन्हें पता चला कि भूमियाधार से नैनीताल के बीच अनेक नुकसान हुआ है। अब उनकी समझ में आया कि बाबा ने कल क्यों भाग जाने को कहा था।

+ + + +

सन् १६६६ ई० में कुंभ मेला लगा। यह प्रयाग की घटना है। बाबा का कैम्प संगम के पास उस पार लगा था। कैम्प में अनेक भक्त थे। बातचीत के दौरान एक व्यक्ति ने कहा— "कड़ाके की इस सर्दी में अगर सभी को चाय मिलती तो कुछ आराम मिलता।"

अन्तर्यामी बाबा लोगों की इच्छा समझ गये। उन्होंने चाय बनाने का आदेश दिया। कैम्प में चाय, चीनी, बरतन आदि थे, पर दूध नहीं था। ब्रह्मचारी की जबानी यह बात सुनकर बाबा ने कहा— "जा, बाल्टी ले जा। गंगा से दूध भरकर ले आ। कह देना— मइया, दूध लिए जा रहा हूँ। कल लौटा दूँगा।"

ब्रह्मचारी ने आज्ञा का पालन किया। वे गंगा से एक बाल्टी पानी ले आये। बाबा ने उसे ढक देने को कहा। कुछ देर बाद बाबा ने कहा— "अब क्या बैठा है? चाय क्यों नहीं बनाता?"

चूल्हे पर पानी चढ़ाने के बाद ब्रह्मचारी ने बाल्टी का ढक्कन हटाया तो देखा— एक बाल्टी दूध है। सभी लोगों ने चाय पी। दूसरे दिन एक बाल्टी दूध गंगा में प्रवाहित कर दिया गया।

इसी प्रकार एक बार बाबा दाढ़ी बनवाने के लिए एक नाई की दुकान पर गये। बाबा के बारे में नाई बहुत कुछ सुन चुका था। उसने विनय पूर्वक कहा— "बाबा, बहुत दिन हुए मेरा लड़का घर से भाग गया है। आज तक उसका पता नहीं लगा।"

कुछ देर बाद बाबा सहसा उठकर खड़े हो गये और बोले— "मुझे अभी बाहर जाना है।"

नाई ने कहा— "अभी तो आधी दाढ़ी बनी है। शेष बना लेने दीजिए।"

लेकिन बाबा ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। वे दुकान से बाहर निकल गये। पास ही लघुशंका करके वापस आये तब उनकी शेष दाढ़ी बनी। इसके बाद वे चले गये।

दूसरे दिन नाई का लड़का घर वापस आ गया। उसने विचित्र कहानी सुनाई। उसने कहा— "यहाँ से सौ मील दूर मैं एक होटल में काम करता था। कल वहाँ एक आदमी आया जिसकी आधी दाढ़ी बनी थी और दूसरी ओर साबुन लगा था। उन्होंने मुझे पचास रुपये देकर कहा कि तुम आज ही पहली गाड़ी से घर चले जाओ।"

+ \+ \+ \+

उन दिनों बाबाजी आश्रम से कहीं बाहर गये हुए थे। उसी समय एक सज्जन आश्रम में आये। उक्त सज्जन ने यहाँ मंदिर का निर्माण कराया था। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने पुजारी से जाति पूछी और संस्कृत-ज्ञान के बारे में प्रश्न किया।

उत्तर में पुजारी ने कहा— "मैं ब्राह्मण नहीं, ठाकुर हूँ।"

इतना सुनना था कि उक्त सज्जन क्रोधित हो उठे। ठीक इसी समय बाबा आ गये। बाबा उन्हें साथ लेकर एक बड़े हाल में आये। पुजारी के बारे में चर्चा होने लगी।

बाबा ने पुजारी से कहा— "तुम तो संस्कृत जानते हो। भगवद्गीता का पाठ सुनाओ।"

पुजारी ने कहा— "नहीं महाराजजी।"

बाबा बिगड़े— "झूठ मत बोलो। तुम्हें गीता के अट्ठारहों अध्याय कंठस्थ हैं।"

तभी उक्त सज्जन ने कहा— "आप ग्यारहवाँ और बारहवाँ अध्याय सुनाइये।"

बाबाजी ने अपना कम्बल पुजारी के ऊपर डाल दिया। इसके बाद दो-तीन बार उसकी पीठ को थपथपाया। पुजारी सस्वर गीता के श्लोकों की आवृत्ति करने लगा। उपस्थित सभी लोग मुग्ध हो गये। उक्त सज्जन बाबा के चरणों पर सिर रखकर अपने अपराध के लिए क्षमा माँगने लगा।

+ \+ \+ \+

घटना लखनऊ की है। बाबा लखनऊ आकर कभी-कभी कर्णवीर के यहाँ ठहर जाते थे। कर्णवीर बचपन से उन्हें देखता आ रहा है। अक्सर जब वह बाबा को चिढ़ाता तब घर के लोग उस पर बिगड़ उठते थे।

एक बार बाबा इनके यहाँ आये और कर्णवीर से कहा— ''कर्णवीर, तू गोविन्द बल्लभ पन्त के यहाँ चला जा। उन्हें यहाँ बुला ला। कहना बाबा ने बुलाया है।''

कर्णवीर ने कहा— ''पन्तजी अब कांग्रेसी नेता नहीं हैं। मुख्यमंत्री हैं। उनसे मुलाकात करना आसान नहीं है।''

बाबा ने कहा— ''तू उनके घर में घुसते चले जाना और कह देना कि बाबा ने बुलाया है।''

कर्णवीर ने हँसकर कहा— ''यह बात कहूँगा तब न, जब मुझे कोई उनके बंगले में घुसने देगा। पकड़कर बन्द कर देंगे तब मेरी जमानत देनेवाला कोई नहीं मिलेगा।''

बाबा बार-बार उसे समझाते रहे कि तू एक बार वहाँ चला जा। तुझे कोई कुछ नहीं कहेगा। दूसरी ओर कर्णवीर बराबर इन्कार करता रहा।

अन्त में बाबा ने खिजलाकर कहा— ''मत जा! हम उसे यहीं बुला लेंगे।''

इसके बाद बाबा कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद बोले— ''आओ, जरा सड़क पर टहलें।''

पाँच-सात मिनट टहलने के बाद कर्णवीर ने देखा कि लालबत्ती वाली एक गाड़ी बाबा के पास आकर रुक गयी। उसमें से पं० गोविन्द बल्लभ पन्त बाहर निकलने लगे। तभी बाबा ने पंतजी से कहा— ''तू गाड़ी में बैठ। हम तेरे साथ चलेंगे।''

इतना कहकर बाबा गाड़ी के भीतर बैठ गये। फिर बाहर झाँकते हुए कर्णवीर से बोले— ''देख, बुला लिया। अब हम जाते हैं।''

+ + + +

हठयोगी अपनी योग विभूति का प्रयोग वहीं तक करते हैं जहाँ तक उनकी सीमा होती है। इसके आगे प्रकृति के कार्य में वे हस्तक्षेप नहीं करते। योग विभूति के प्रदर्शन से साधना की क्षति होती है, इसीलिए उच्चकोटि के साधक इससे बचते हैं। उनके अनजाने या दयावश कुछ योग विभूतियाँ प्रकट हो जाती हैं।

बाबा के अधिकांश भक्तों का विश्वास था कि बाबा में अपूर्व शक्ति है। वे असंभव को संभव करते हैं। इसी विश्वास को लेकर एक महिला उनके निकट आयी। यह घटना इलाहाबाद की है। बाबा यहाँ चर्च लेन स्थित एक भक्त के यहाँ ठहरे हुए थे।

बातचीत के सिलसिले में महिला ने कहा— ''मेरे बहनोई सख्त बीमार हैं, उन्हें बचा लीजिए।''

बाबा ने कहा— ''उसे जलोदर हुआ है।''

महिला ने इस बात को स्वीकार करते हुए कहा— ''सात लड़कियों का बाप है। उसके न रहने पर पूरा परिवार अनाथ हो जायगा। उसे बचा लीजिए।''

बाबा ने कहा— ''हमसे झूठ मत कहलाओ। अब हम उसके लिए सिर्फ प्रार्थना कर सकते हैं।''

इसका अर्थ यह हुआ कि उसकी मृत्यु अनिवार्य है। बाबा इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते। इस प्रकार की कई घटनाएँ हुई हैं जिसमें बाबा ने अपनी असमर्थता प्रकट की है।

नीब करौरी के बाबा बीसवीं शताब्दी के अन्तिम महापुरुष थे। संभव है कि ऐसे अनेक बाबा भारत में हैं, पर वे प्रकट रूप से लोगों के बीच नहीं आये हैं। भारत में सन्तों की कमी नहीं है, पर सभी लोक कल्याण नहीं कर पाते।

हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों के अलावा बाबा ने लखनऊ, कानपुर, शिमला आदि शहरों में हनुमानजी का मंदिर बनवाया है। उनका एक अमेरिकी भक्त डॉ० रिचार्ड एल्पर्ट ने न्यू मैक्सिको स्थित टाओस में एक हनुमानजी का मंदिर बनवाया है जहाँ अमेरिकी नागरिक तथा वहाँ स्थित भारतीय नित्य दर्शन करते हैं। आपने बाबा के सम्बन्ध में 'मिराकेल ऑफ लव' नामक पुस्तक लिखी है।

बाबा जीवन भर यायावरों की तरह घूमते रहे। लेकिन सन् १९७३ के बाद से वे कैंची आश्रम से बाहर नहीं निकले। यह उनकी प्रवृत्ति के विरुद्ध था। सन् १९७२ में एक बार एक भक्त से पूछा था— ''हमें अपना शरीर कहाँ छोड़ना चाहिए।''

इस प्रश्न को सुनकर सभी भक्त बेचैन हो उठे। किसी भी महात्मा का इस तरह का प्रश्न करना अशुभ होता है। उन दिनों जो लोग उनका दर्शन करने आते, उनसे कहते— ''अब हमारी मुलाकात नहीं होगी।''

९ सितम्बर, सन् १९७३ को वे अस्वस्थ हुए। भक्त लोग तुरंत उन्हें वृन्दावन के अस्पताल में ले आये। गहन चिकित्सा आरंभ हुई। ११ सितम्बर को नीब करौरी के बाबा इस धराधाम से सदा के लिए चले गये।

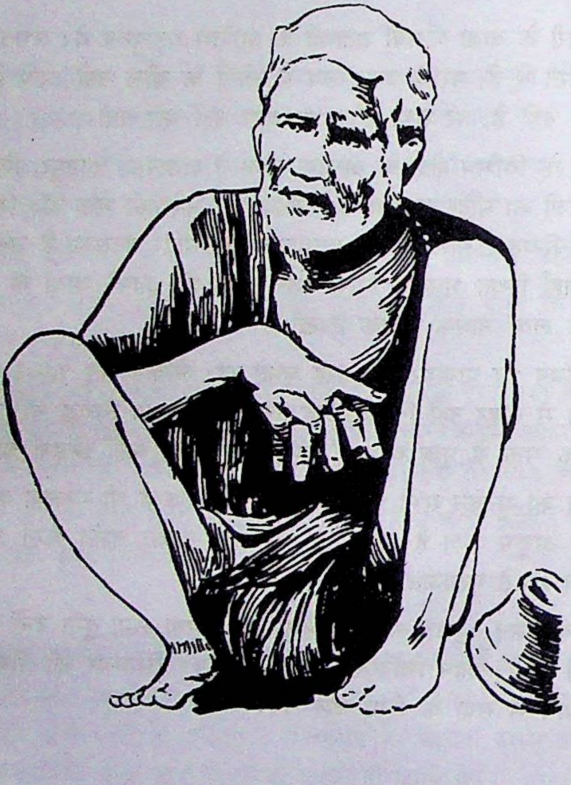

परमहंस पं० गणेशनारायण

परमहंस पं० गणेशनारायण

राजस्थान में अक्सर अकाल पड़ता है। उस समय देश के कोने-कोने से समाजसेवी सहायता के लिए वहाँ पहुँच जाते हैं। तन, मन, धन से मारवाड़ी लोग अपने प्रान्त के लोगों की सेवा करने लगते हैं। एक बार बिड़ला बंधुओं ने वर्षा के लिए यज्ञ का आयोजन किया। इस आयोजन में भाग लेने के लिए ब्राह्मणों को आमंत्रित किया गया।

आमंत्रित ब्राह्मणों में पंडित कालूराम रुंथला भी थे। जो उन दिनों चिड़ावा के संस्कृत पाठशाला में अध्ययन कर रहे थे। अचानक एक दिन पंडित गणेशनारायण टहलते हुए पाठशाला में आये। बातचीत के सिलसिले में कालूराम ने कहा—"बिड़लाजी पिलानी में वर्षा के लिए यज्ञ करवा रहे हैं। मुझे भी जाना है।"

परमहंस गणेशनारायण ने छूटते ही कहा—"यज्ञ तो हो जायगा, पर इससे वर्षा नहीं होगी। तुम वहाँ जाओ, पर याद रखना कि यज्ञस्थल से चले मत आना। अन्न त्याग देना। इस बीच तू 'ॐ ऐं क्लीं ह्रीं' मंत्र जपते रहना। छठे दिन वर्षा होगी यानी तीन दिन तुझे बराबर मंत्र जपते रहना पड़ेगा।"

परमहंसजी के प्रति कालूराम की असीम श्रद्धा थी। उनके आदेश को वे वेदवाक्य समझते थे। तीन दिन यज्ञ हुआ। पण्डितों को दक्षिणा देकर विदाई दी गयी। कालूराम यज्ञ-स्थल पर बैठे रहे।

बिड़लाजी के मुनीम सुखदेव उनके पास आकर बोले—"पंडितजी, अब कुछ नहीं मिलेगा। आप घर जा सकते हैं। यहाँ बेकार क्यों बैठे हैं?"

कालूराम ने जवाब दिया—"वर्षा होने पर ही मैं यहाँ से जाऊँगा। मुझे कुछ नहीं चाहिए। भोजन भी नहीं।"

कालूराम की बातें सुनकर उपस्थित लोग आपस में परिहास करने लगे। कालूराम के इस निश्चय की सूचना बलदेवदास बिड़ला तक पहुँची। उन्होंने कहा—"अगर ब्राह्मण हठ करके बैठा है तो उन्हें उठाकर ऊँची पैड़ीवाले मंदिर पर बैठा दो। यज्ञ करना चाहें तो सामग्री भिजवा दो।"

आदेश के अनुसार सारी सामग्री आ गयी। पंडित कालूराम परमहंसजी से प्राप्त मंत्र का जाप करते रहे। ठीक छठे दिन जोरदार वर्षा हुई। हवेली से सेठ का परिवार आया। नगर से अनेक लोग आये। लोगों ने कालूराम का चरण स्पर्श किया। दक्षिणा में काफी रकम मिली। सभी धन्य-धन्य कहने लगे। ऐसा था— परमहंसजी का मंत्र।

+ + + +

पंडित कालूराम के पिता पंडित भोलाराम एक बार किसी काम से पिलानी गये। वहाँ जुगलकिशोर बिड़ला से बातचीत के सिलसिले में परमहंसजी की चर्चा चल पड़ी। आपके योग विभूति की चर्चा हुई। धार्मिक प्रवृत्ति के होने के कारण बिड़लाजी परमहंसजी का दर्शन करने चले आये। बातचीत से वे इतने प्रभावित हुए कि अक्सर परमहंसजी की सेवा में आते रहे। यह उन दिनों की बात है जब जुगलकिशोर बिड़ला ३९ वर्ष के युवा थे।

एक बार अपनी आदत के अनुसार जब जुगलकिशोरजी आये तब परमहंसजी ने इन्हें देखते ही कहा—"रे जुगला, आज तेरा चोखा दिन है। जो कुछ करना-धरना है, करके तुरंत भाग जा।"

सेठ जुगलकिशोर बिड़ला को समझते देर नहीं लगी कि आज उनके जीवन का शुभमुहूर्त आया है और इसका उपयोग तुरंत करना चाहिए। घर वापस आकर उन्होंने तुरंत नारनौल के रास्ते अपनी गाड़ी बढ़ायी। चाँदनी रात, दोनों ओर सफेद बालू के ढेर थे। कुछ दूर आगे बढ़ने पर बायीं ओर एक काला साँप फन उठाये दिखाई दिया। यात्रा के अवसर पर सर्प-दर्शन? यह तो अशुभ शकुन है। वे वापस लौटने लगे।

मार्ग में परमहंसजी मिले। उन्होंने विस्मय से पूछा—"क्यों रे जुगला, वापस कैसे आ गया?"

बिड़लाजी ने कहा—"रास्ते में बायीं ओर एक काला साँप फन उठाये दिखाई दिया। यात्रा में यह तो अपशकुन है, इसलिए वापस चला आया।"

परमहंसजी ने खेद प्रकट करते हुए कहा—"तूने बड़ी भारी गलती कर दी। अगर उस वक्त चला जाता तो चक्रवर्ती बन जाता। अब भी चला जा, तेरी कीर्ति सारे जग में फैल जायगी।"

इस आज्ञा को शिरोधार्य कर जुगलकिशोरजी कलकत्ता चले आये। कुछ ही दिनों में वे अपार सम्पत्ति के स्वामी बने और अपने परिवार के वे सर्वश्रेष्ठ दानी हुए।

इसी प्रकार की एक घटना ओंकारमल पंसारी के जीवन में हुई थी। बाजार में परमहंसजी बच्चों से घिरे खड़े थे। सहसा उनकी दृष्टि ९-१० वर्ष के उम्रवाले ओंकारमल पर पड़ी। उन्होंने उससे कहा—"कहीं से कागज ला। तेरा मुहूर्त निकाल दूँ।"

ओंकारमल ने इस बात की सूचना तुरंत अपने पिताजी को दी। परमहंसजी का मुहूर्त बताना एक अद्‌भुत चमत्कार है, इसे चिड़ावा के लोग जानते थे। उन्होंने बही से एक पृष्ठ फाड़कर देते हुए कहा—"जा लिखवा ला।"

ओंकारमल परमहंसजी के पास आया। पंसारी की हालत उन दिनों अच्छी नहीं थी। नगर के बाहर कहीं विशेष परिचय भी नहीं था। परमहंसजी के लिखे मुहूर्त के अनुसार उस बालक को पिता ने कलकत्ता भेज दिया।

कुछ दिनों बाद परमहंसजी पंसारी-परिवार में आये। उस दिन घर में खीर बनी थी। एक कटोरा खीर उन्हें खाने को दे दी गयी। उसे लेकर परमहंसजी गंदे नाले में डालते हुए बोले—"तेरी खीर ऐसी है।"

इतना कहकर परमहंसजी चले गये। ओंकारमल के भाग्य का सितारा उसी दिन से चमक उठा। आज उनकी गणना चिड़ावा के श्रेष्ठ सेठों में होती है।

+ \+ \+ \+

परमहंसजी रमता योगी प्रकृति के थे। श्मशान उनका स्थायी निवास जरूर था, पर वे कब कहाँ चल देंगे, इसे कोई समझ नहीं पाता था। एक बार इसी प्रकार टहलते हुए पंडित रामजीलाल शास्त्री के घर आये। उस समय शास्त्रीजी किसी अनुष्ठान की तैयारी कर रहे थे।

परमहंसजी ने पूछा—"रामजी, क्या कर रहा है?"

शास्त्रीजी ने उत्तर दिया—"महाराज, बड़े कष्ट में हूँ। आर्थिक कठिनाई के कारण लड़की का विवाह नहीं हो पा रहा है। इधर पास में कुछ नहीं है। अब अनुष्ठान की तैयारी कर रहा हूँ, शायद कष्ट दूर हो जाय।"

परमहंसजी ने हँसकर कहा—"अनुष्ठान करने से भला रकम आती है? मैं एक मंत्र बता रहा हूँ, उसे जप करते रहना। इससे तेरे पास रुपये आ जायेंगे। याद कर ले—ॐ ड ड ड।"

इतना कहकर परमहंसजी चले गये। शास्त्रीजी इस मंत्र का जाप दो माह तक करते रहे। अचानक एक दिन उनके मन में आया कि अब तीर्थयात्रा करनी चाहिए। इस उद्देश्य से वे घर से चल पड़े। जहाँ कहीं गये, वहाँ स्थित चिड़ावा निवासी इन्हें धन-सम्मान देते गये। प्राप्त रकम से उन्होंने अपनी लड़की की शादी धूमधाम से की। दो साल तक उनकी समृद्धि में वृद्धि होती गयी।

एक दिन मंत्र जपना भूल गये। फलस्वरूप दूसरे दिन मंत्र याद नहीं आया। दौड़े हुए परमहंसजी के पास आये। इन्हें देखते ही परमहंसजी ने कहा—"उस मंत्र की सिद्धि समाप्त हो गयी। अब वह काम नहीं देगी और न तुझे इसकी जरूरत है।"

+ \+ \+ \+

भूरामल नामक एक वृद्ध चिड़ावा में रहता था। सट्टा में घाटा उठाने के कारण बाजार जाना बन्द कर दिया था ताकि महाजन लोग परेशान न करें। घर में कठिनाई बढ़ती जा रही थी।

एक दिन जोशियों के मंदिर के पास से गुजर रहे थे। रास्ते में परमहंसजो से मुलाकात हो गयी। भूरामलजी को यह मालूम था कि इनका आशीर्वाद पाकर कुछ लोगों की माली हालत सुधर गयी है। फलस्वरूप इसी लालसा से उनके निकट बैठ गये।

अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से परमहंसजी उसकी समस्या को समझ गये। कुछ देर बाद बोले—"यहाँ क्या बैठा है? जा, छः अमल का सट्टा कर ले।"

भूरामल ने कहा—"मैं सौदा करना नहीं जानता।"

परमहंसजी बिगड़ उठे—"तो यहाँ क्या बैठा है? जा भाग जा।"

इस फटकार को सुनकर भूरामल अनिच्छा से उठे। उनके कदम अनायास बाजार की ओर उठ गये। रास्ते में जानकीदास अपनी दुकान में बैठे दिखाई दिये। इन्हें देखते ही उन्होंने आवाज दी। भूरामल ने सोचा— मारे गये। आज वे बकाया रकम की तगादा करेंगे। मेरी मति मारी गयी जो इधर चला आया। भागने का उपाय भी नहीं था।

पास जाने पर जानकीदास ने कहा—"तेरी दो पेटी अमल का सौदा कर दूँ?"

भूरामल ने कहा—"जैसी आपकी मर्जी हो, कर दें।"

जानकीदास ने सौदा कर दिया। तीन-चार दिन बाद जानकीदास ने भूरामल को बुलाकर कहा—"तेरे सौदे में सात सौ रुपये आये हैं। ले, रख ले।"

+ \+ \+ \+

राजस्थान के एक जिले का नाम है— झुन्झुनूं। इसी जिले में एक छोटा-सा गाँव बुगाला है। गाँव में पंडित कुशालचन्द्र सपरिवार रहते थे। सात्त्विक ब्राह्मण तथा संस्कृत के विद्वान थे। कुशालचन्द्र के पुत्र हुणतराम थे। आप गाँव में यजमानी करते और शेष समय में बच्चों को पढ़ाया करते थे। हुणतराम के पाँच पुत्र हुए। इनमें सबसे बड़े घनश्यामदास थे। घनश्यामजी के दो पुत्र हुए। बड़े का नाम गणेशनारायण और छोटे का नाम स्योनारायण था।

गणेशनारायण का जन्म पौष कृष्णपक्ष, प्रतिपदा, गुरुवार, संवत् १९०३ को हुआ था। गणेशनारायण के जन्म के १६ वर्ष बाद स्योनारायण का जन्म हुआ था।

बुगाला गाँव से १२ मील दूर नवलगढ़ में दौलतराम चोखानी नामक सेठ द्वारिकाधीश का मंदिर बनवा रहे थे। इस मंदिर के निर्माण का सारा कार्य घनश्यामजी देख रहे थे। इसी कारण उन्हें बुगाला गाँव छोड़कर हमेशा के लिए नवलगढ़ आकर बस जाना पड़ा।

गणेशनारायण की प्रारंभिक शिक्षा द्वारिकाधीश के मंदिर में हुई। बाद में उन्हें पंडित रुड़ेन्द्रजी की पाठशाला में भेजा गया। 'होनहार विरवान के होत चिकने पात' के अनुसार गणेशनारायण अपनी प्रतिभा का परिचय देते रहे। बचपन से ही आप में अलौकिक शक्ति जागृत हो गयी थी।

एक बार आपके चाचा का सबसे छोटा पुत्र बीमार पड़ गया। देखते ही देखते उसकी हालत खराब होती गयी। घनश्यामदास अच्छे ज्योतिषी थे। चाचा बच्चे की कुण्डली लेकर आये तो पता चला कि वे घर पर नहीं हैं। चाचा ने घबराकर गणेशनारायण से कहा—''जरा लड़के की कुण्डली देख। क्या चक्कर है?''

चाचा के आदेशानुसार बालक गणेशनारायण ने फलादेश निकालकर कहा—''यह जातक कल दोपहर तक जीवित रहेगा।''

यह बात सुनकर घर में रोना-चिल्लाना प्रारंभ हो गया। किसी ने यह नहीं सोचा कि बालक की गणना का क्या महत्व है। इतने में घनश्याम आ गये। लोगों से रोने का कारण पूछने पर सारी बातें मालूम हुईं। वे बिगड़कर बोले—''मूर्ख, गणेश को इन बातों की जानकारी कैसे हो सकती है? अभी कल तक मैं उसे सिखाता रहा, फिर मेरे रहते उसे कुण्डली क्यों दिखायी गयी?''

इसके बाद वे स्वयं कुंडली लेकर विचार करने लगे तो देखा— मारकेश है। वह लड़का दूसरे दिन दोपहर को चल बसा। पिता को मानना पड़ा कि गणेश को फलादेश का ज्ञान हो गया है।

सन् १९१७ ई० में गणेशनारायण का विवाह हो गया। विवाह के पश्चात् उनका अध्ययन छूट गया। इसके बाद से वे घर के प्रति उदासीन हो गये। यह क्रम लगभग १२ वर्ष तक चलता रहा। लड़के की इस स्थिति से घनश्यामदास चिन्तित रहने लगे। अन्त में उन्होंने सोचा कि जब तक इस पर घर की जिम्मेदारी नहीं सौंपी जायगी तब तक यह नहीं सुधरेगा।

सन् १९३१ ई० को आपको घर से अलग कर दिया गया। आपका प्रथम पुत्र एक साल तक जीवित रहा। बाकी दो लड़कियाँ थीं। कई वर्ष बाद आपकी माँ का देहान्त हो गया।

घर से अलग होने के पश्चात् आप दुर्गा का अनुष्ठान कर अपनी जीविका चलाते थे। शेष समय में आप भुवनेश्वरी देवी के मंत्र को सिद्ध करने में लगे रहे। लेकिन इसमें आपको वांछित सफलता नहीं मिली। सन् १९४४ में आप सदा के लिए घर से अलग होकर श्मशान पर रहने लगे। यहाँ पर श्मशान-काली की साधना करने लगे।

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज के शब्दों में—''काली अनेक प्रकार की हैं। कालीमूर्ति के नीचे शवरूपी शिव रहते हैं। शिव की चैतन्य-शक्ति जब शरीर से उठ जाती है तब शरीर शवाकार में परिणत हो जाता है। उसी शव पर चैतन्य-शक्ति क्रिया

करती है। शिव के वक्ष पर काली विराजमान रहती हैं। बिना शिवत्व प्राप्त किये काली को हृदय में धारण नहीं किया जा सकता। शिवत्व प्राप्त कर शवावस्था तक पहुँचा जाता है तब काली का पता लगता है। शिव ही शव हो सकते हैं, जीव नहीं हो सकता। .... शवरूपी शिव के हृदय पर इसी प्रकार विचरण करती हैं। वे श्मशानवासिनी हैं। श्मशान शवशयान अर्थात् वहाँ इसी प्रकार शव रहते हैं।''

कहा जाता है कि गणेशनारायणजी को इस साधना से सफलता मिली थी। देवी ने प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देकर कहा था कि शिव की आराधना करो। शिव का बीज मंत्र 'ड' है। आप इस बीज मंत्र का निरन्तर जाप करने लगे। इस साधना में आपको शीघ्र सफलता मिल गयी। आप वाक् सिद्ध तथा सर्वज्ञ हो गये।

इस सिद्धि के सिद्धों की चर्चा करते हुए श्री दानवीर गंगोपाध्याय कहते हैं—''आज भी तांत्रिक सिद्ध साधक महापुरुष अपने-अपने तपः प्रभाव से भारत के दिग् दिगन्त को प्रज्ज्वलित कर रहे हैं। आज भी भारत के श्मशानों में प्रति अमावस्या की महानिशा में प्रज्ज्वलित चिता के समीप भैरव-भैरवियों की ज्वलन्त दिव्य ज्योति नैश तमिस्रा को विदीर्ण कर गगन को आलोकित कर रही हैं। आज भी श्मशान में जलमग्र मृत और सड़े शव साधकों की मंत्र-शक्ति से जीवित होकर सिद्धों की साधना में सहायक होते हैं। आज भी तांत्रिक योगी दिव्य दृष्टि के प्रभाव से इस लोक में रहते हुए देवलोक के अतीन्द्रिय कार्यों को प्रत्यक्ष रूप में देख लेते हैं। आज भव-भय-भीत प्रणत शरणागत भक्त-साधक को मुक्त करने के लिए मुक्तकेशी श्मशान में दर्शन देती हैं। अभी भी मंत्र-शक्ति के अद्‌भुत आकर्षण से पर्वतनन्दिनी का सिंहासन डोल उठता है।''

पुत्र की यह हालत देखकर घनश्यामजी ने अपनी सारी जायदाद छोटे पुत्र के नाम लिख दी। गणेशनारायण की दोनों पुत्रियों का विवाह का भार भी स्योनारायण के जिम्मे कर दिया गया।

गणेशनारायण एक अर्से तक जसरापुर के श्मशान में रहने के बाद अपनी अन्तःप्रेरणा से चिड़ावा चले आये। यह संवत् १९४७ की बात है। चिड़ावा में कोई भी आपकी शक्ति से परिचित नहीं था। आपके रहन-सहन और अघोरी प्रवृत्ति को देखकर लोग आपको पागल समझते रहे। आज भी समाज के अधिकांश लोग अघोरी संतों से भयभीत रहते हैं। उनके प्रति श्रद्धा की भावना उत्पन्न नहीं होती। जब ऐसे संतों की योग विभूति प्रकट होती है तब लोग इनके मुरीद बनते हैं।

चिड़ावा की श्मशान भूमि इनका प्रिय स्थान था। अघोरियों की तरह आप भी समदर्शी हो गये थे। जिस पात्र में आप खाते, उसी में आपके साथ कुत्ते और कौवे भी भोजन करते थे। काली के साधक अधिकतर नीले रंग का वस्त्र धारण करते हैं जिसे सामान्य नागरिक पसन्द नहीं करते।

शनैः-शनैः आप साधना करते हुए सिद्ध हो गये। कभी-कभी अपनी योग विभूति दिखाते थे जिसके कारण स्थानीय लोग आपके प्रति श्रद्धावनत हो जाते थे। स्थानीय लोगों के अलावा जुगलकिशोर बिड़ला आपके भक्त बन गये थे। अक्सर आपसे मिलने के लिए पिलानी से चिड़ावा आते थे।

एक बार आपने नारायणदास चोटिया के द्वारा परमहंसजी के लिए चार रजाई भिजवायी। सर्दी का मौसम था। चोटिया अपने घर के लिए रजाई बनवा रहे थे, पर वह बनकर नहीं आयी थी। इन्होंने सोचा कि जब तक अपनी रजाई बनकर नहीं आ जाती तब तक इनका उपयोग कर लूँ, बाद में दे आऊँगा। चौथे दिन इनकी रजाई बनकर आ गयी। पाँचवें दिन वे रजाइयों को लेकर पहुँचे।

परमहंसजी ने कहा—"इन रजाइयों को कैरो के पेड़ पर डाल दे। सभी रजाइयाँ बीमार हैं।"

परमहंसजी के आदेशानुसार सभी रजाइयों को कैरो के पेड़ पर टाँगने के बाद नारायणदास अपने घर आये तो ज्ञात हुआ कि जिन लोगों ने परमहंसजी की रजाइयाँ ओढ़ी थीं, वे सब बीमार हैं। तुरंत घबराकर वे परमहंसजी के पास आये और क्षमा याचना करते हुए बोले—"अपनी रजाइयाँ बनकर नहीं आयी थीं इसलिए उनके उपयोग का अपराध मुझसे हो गया। इस अपराध के लिए क्षमा कर दें।"

परमहंसजी ने कहा—"जा, सब ठीक हो गये।"

घर आने पर मालूम हुआ कि वास्तव में सभी प्राणी ठीक हो गये हैं।

इसी प्रकार एक बार बिड़लाजी ने हरदेव बाठोलिया के हाथ चार अनार परमहंसजी के यहाँ भिजवायी। रास्ते में नवलगढ़ के एक ब्राह्मण के माँगने पर उन्होंने एक अनार उसे दे दिया। सोचा—परमहंसजी को क्या मालूम कि चार अनार भेजे गये हैं।

हरदेवजी जब परमहंसजी के पास आकर उनके सामने तीन अनार रखे तो उन्होंने कहा—"पिलानी से तो चार चले थे, पर एक कहाँ रह गया?"

यह बात सुनते ही हरदेवजी के होश उड़ गये। वे समझ गये कि संतों से कुछ छिपा नहीं रहता। उन्होंने क्षमा माँगते हुए अपराध स्वीकार कर लिया।

+ \+ \+ \+

पंडित रामजीलाल शास्त्री और गजानन शर्मा प्रायः परमहंसजी का दर्शन करने चले आया करते थे। एक बार इनके आने पर उन्होंने कहा—"चलो नवलगढ़, अपनी मावड़ी से मिल आयें।"

परमहंसजी अपनी पत्नी को 'मावड़ी' कहा करते थे। तीनों व्यक्ति नवलगढ़ आये। घर पर आकर परमहंसजी चौक में बैठ गये। आपकी पत्नी स्योनन्दी देवी ने

कहा—"आपने यह स्वांग बना लिया है, पर यहाँ खर्च के लाले पड़े हैं। मैं कहाँ से कमाकर घर चलाऊँ?"

इतना सुनने के पश्चात् परमहंसजी जहाँ बैठे थे, वहीं से मिट्टी कुरेदने लगे। थोड़ी-थोड़ी मिट्टी हटाते गये और चाँदी के सिक्के निकालते गये। इस प्रकार ४२ सिक्के निकालने के बाद बोले—"तू कहती है कि तेरे पास रुपये नहीं हैं। देख, तेरे पास इतने रुपये हैं और तूने जमीन में गाड़ रखा है।"

यह दृश्य देखकर स्योनन्दी देवी ही नहीं, साथ आये दोनों व्यक्ति भी दंग रह गये।

+ + + +

चेनसुखदास का एक रिश्तेदार बीमार था। उनकी जन्म कुण्डली लेकर वे पड़ोस के पंडित बदरी प्रसाद चौरसिया के पास गये ताकि ग्रह-संकट के बारे में जानकारी मिले।

बदरी प्रसाद जन्म पत्रिका लेकर मेष, वृष, राहू, केतु का हिसाब लगा रहे थे। ठीक उसी समय उधर से जाते हुए परमहंसजी ने पूछा—"बदरिया, क्या कर रहा है?"

बदरी प्रसाद शंकित हो उठे। पता नहीं, परमहंसजी क्या कह बैठे जो वे नहीं कह सकेंगे। बोले—"सेठ कुंजीलाल की जन्म कुण्डली देख रहा हूँ।"

यह बात सुनते ही परमहंसजी ने कहा—"तीन दिन हो गया। मुरदे की क्यों कुण्डली देख रहा है?"

इतना सुनना था कि सभी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। तभी चेनसुख का नौकर एक तार लेकर आया जिसमें कुंजीलाल के तीन दिन हुए निधन का समाचार था।

चिड़ावा में ही गुरुदयाल उन दिनों घूम-घूमकर मिठाई बेचता था। रास्ते में अगर परमहंसजी मिल जाते तो उन्हें अवश्य कुछ न कुछ देता था।

एक दिन परमहंसजी ने उससे पूछा—"गुरदिया, तुझे क्या चाहिए, बोल?"

गुरुदयाल ने कहा—"मेरे मरे हुए माँ-बाप को एक बार दिखा दो।"

परमहंसजी ने कहा—"उन्हें देखकर क्या करेगा? इससे अच्छा है कि कुछ और चाहिए तो बता।"

लेकिन गुरुदयाल अपनी जिद्द पर अड़ा रहा। यह देखकर परमहंसजी ने कहा—"आज खेत में चलेंगे। वहाँ हम भुट्टे खायेंगे। साथ में कोयला ले चलना।"

गुरुदयाल कोयला लेकर खेत में आया। कोयला जलाकर परमहंसजी की ओर देखा। परमहंसजी ने कहा—"ऊँचे टीले पर से भुट्टे तोड़ ला।"

गुरुदयाल टीले के पास पहुँचा तो देखा कि वहाँ उसके स्वर्गवासी माता-पिता बैठे हैं। उन्हें देखते ही उसकी घिग्घी बँध गयी। भय से चीखता हुआ वह परमहंस के पास आकर गिर पड़ा।

परमहंसजी ने कहा—''अरे कमबख्त, माँ-बाप से भला कोई डरता है?''

इस घटना के बाद वह तीन दिनों तक बुखार में बेहोश पड़ा रहा।

इसी प्रकार की एक घटना पिलानी के एक नाई के साथ हुई थी। उन दिनों आप नवलगढ़ में थे। आज से ५०-६० वर्ष पहले लोग पैदल अधिक चलते थे। सवारी की उतनी सुविधा नहीं थी। फिर राजस्थान में ऊँट के अलावा अन्य कोई सवारी नहीं थी।

एक नाई पैदल यात्रा करते हुए सोचा कि रात भर पैदल चलने पर वह झुंझुनूं पहुँच जायगा और फिर वहाँ से चलकर दूसरे दिन पिलानी पहुँच जायगा। यही सब सोचता हुआ वह चला जा रहा था।

आगे टीले पर परमहंसजी बैठे थे। उसे पास आते देख बोले—''कहाँ जा रहा है?''

नाई ने कहा—''महाराज, अभी झुंझुनूं जा रहा हूँ। वहाँ से पिलानी जाऊँगा।''

परमहंसजी ने कहा—''सुबह चले जाना। रात को कहीं भटक गया तो परेशान होगा। सो जा यहाँ।''

नाई ने सोचा— जब टोक दिया गया है तब आगे यात्रा नहीं करनी चाहिए। वह वहीं सो गया। सुबह जब उसकी नींद खुली तो उसने आश्चर्य से देखा कि वह पिलानी के एक टीले पर बैठा है।

+ \+ \+ \+

सेठ पाटोदिया काफी दिनों से बीमार थे। इस मुसीबत से छुटकारा पाने के लिए परमहंसजी के पास आये। प्रथम प्रयास में उनसे मुलाकात न हो सकी। कई दिनों तक खोजने के बाद परमहंसजी मिले। साथ में नीले रंग का एक थान भेंट देने के लिए ले आये थे।

परमहंसजी ने इन्हें देखते ही मौन धारण कर लिया। काफी देर तक आग्रह करने के बाद नीले रंग का मलमल उन्होंने लिया। मलमल बढ़िया थी। उस थान को लेकर वे पैर पर लपेटने लगे। यह देखकर सेठजी खिन्न हो गये। इतना बढ़िया मलमल जो पगड़ी के लायक है, उसकी यह दुर्गति हो रही है। जब सेठजी से रहा नहीं गया तब बोल उठे—''महाराज, यह मलमल तो पगड़ी बाँधने के काम आता। पैर में लपेटने के लिए नहीं लाया था।''

परमहंसजी ने कहा—''टोक टाक करके तूने बुरा किया। मैं तो तेरी मौत को बाँध रहा था। अब तू नहीं बचेगा।''

इतना सुनना था कि सेठजी की हालत खस्ता हो गयी। कुछ ही दिनों बाद उनका निधन हो गया।

इसी प्रकार की एक घटना शिवबक्स राय ककरानिया के साथ हुई थी। उस दिन परमहंसजी नोहर के आगे पेशाब करने लगे। यह देखकर शिवबक्स राय लज्जित हो उठे। अपने पुत्र से कहा—"पंडित तो बड़े बेशर्म हैं। यह भी भला कोई पेशाब करने की जगह है। मुहल्ले की औरतें इधर से आ-जा रही हैं। यह दृश्य देखकर वे स्वयं ही लज्जित हो जायेंगी।"

इतना कहने के पश्चात् उन्होंने अपने नौकर से कहा—"जाकर पंडित से कहो कि वे यहाँ से चले जायें।"

नौकर ने आदेश का पालन किया।

परमहंसजी ने कहा—"मैं तो चला जा रहा हूँ, पर पन्द्रह दिन आगे-पीछे तुम जाओगे।"

उस वक्त लोगों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। लेकिन उसी दिन रात को सेठ को बुखार आया और आठवें दिन वे चल बसे। उनका पुत्र भगवानदास हट्टा-कट्टा था। श्मशान में पिता की दाह क्रिया करके लौटा तो उसने खाट पकड़ ली। पन्द्रह दिन के भीतर बाप-बेटा दोनों ही परलोकवासी हो गये।

दूसरी ओर परमहंसजी का एक और रूप प्रकट होता था। घूमते हुए एक दिन गजानन्द मिश्र के घर आये। उन दिनों मिश्रजी मियादी बुखार से पीड़ित थे। परमहंसजी को देखते ही मिश्रजी की माताजी ने कहा—"मेरा गजू तो बीमार है पंडित।"

परमहंसजी ने कहा—"आज मैं इसी के लिए आया हूँ। तू मुझे रोटी-रबड़ी लाकर दे।"

मिश्रजी की माताजी ने तुरंत रोटी-रबड़ी लाकर उनके सामने रख दी। उन्होंने रोटी के कुछ टुकड़े तोड़-तोड़कर चारों ओर फेंक दी और कुछ खा लीं। इसके बाद कहा—"शिवबक्स (वैद्यजी) की दवा बन्द कर दे। गजू जब रोटी माँगे तब खाने को दे।"

इतना कहकर परमहंसजी चले गये। उनके जाने के कुछ देर बाद गजानन्दजी को कड़ाके की भूख लगी। वे खाना माँगने लगे। घर के लोग परेशान हो उठे। वैद्यजी अभी तक रोगी के पास बैठे थे। उनसे खाना देने के बारे में पूछा गया। उन्होंने रोगी की नाड़ी देखी तो बिलकुल स्वस्थ पाया।

चलते समय हल्का पथ्य देने का आदेश देकर वे चले गये। लोग दौड़कर परमहंसजी के पास इसी प्रश्न को लेकर गये तो उन्होंने कहा—"जो माँगे, वही दे दो।"

इस आज्ञा को मानकर लोगों ने गजानन्दजी को भरपेट भोजन दिया। दो-चार दिन में वह स्वस्थ हो गया।

+ + + +

कभी-कभी मूड आ जाने पर परमहंसजी ऐसा चमत्कार करते थे कि देखनेवाले डर जाते थे। परमहंसजी नियमित रूप से न तो हजामत बनवाते थे और न मुण्डन कराते थे।

उस दिन कालूराम नाई को देखते ही बोले—"आज मेरा मुण्डन कर दे।"

कालूराम तुरंत तैयार हो गया। उसे यह मालूम था कि पंडितजी श्मशान में ही क्षौर-क्रिया करवाते हैं। श्मशान में आकर परमहंसजी ने मुर्दों पर फेंकने वाले नाद से पानी लिया। छूकर देखा— काफी ठंडा पानी था। सर्दी के दिन थे।

परमहंसजी ने कहा—"कालिया, श्मशान से कुछ हड्डी के टुकड़ों को बटोर ला।"

कालूराम इधर-उधर बिखरी हड्डियों को बटोर लाया। उन हड्डियों पर पानी का बरतन रखकर परमहंसजी ने कहा—"फूँक मार दे।"

ज्योंही उसने फूँक मारी त्योंही हड्डियाँ जल उठीं। इस भयानक दृश्य को देखते ही कालूराम हजामत की पेटी वहीं छोड़कर भाग गया।

+ \+ \+ \+

भगीनिया तालाब से परमहंसजी का विशेष प्रेम देखकर जुगलकिशोर बिड़ला ने एक घाट पक्का बनवा दिया। इस घाट पर उनकी स्मृति में 'गणेश लाट' के नाम से एक स्तूप भी बनवाया। यह वि० संवत् १९५५ की बात है। इस स्तूप से पिलानी दिखाई देता है और चिड़ावा का सारा दृश्य भी।

संवत् १९६९ पौष मास सुदी नवमी को आपने अपना नश्वर शरीर चौरासियों के शिवाला में त्याग दिया था। यहाँ आपका समाधि-मंदिर है जहाँ नित्य लोग दर्शन करने जाते हैं। पास ही अपने पूज्य पिता बलदेवदास बिड़ला के नाम पर जुगलकिशोर बिड़ला ने एक लाट बनवा दिया है।

प्रस्तुत आलेख चिड़ावा निवासी पण्डित सागरमल शर्मा की पुस्तक से तैयार की गयी है। शर्माजी के प्रति लेखक कृतज्ञ है।

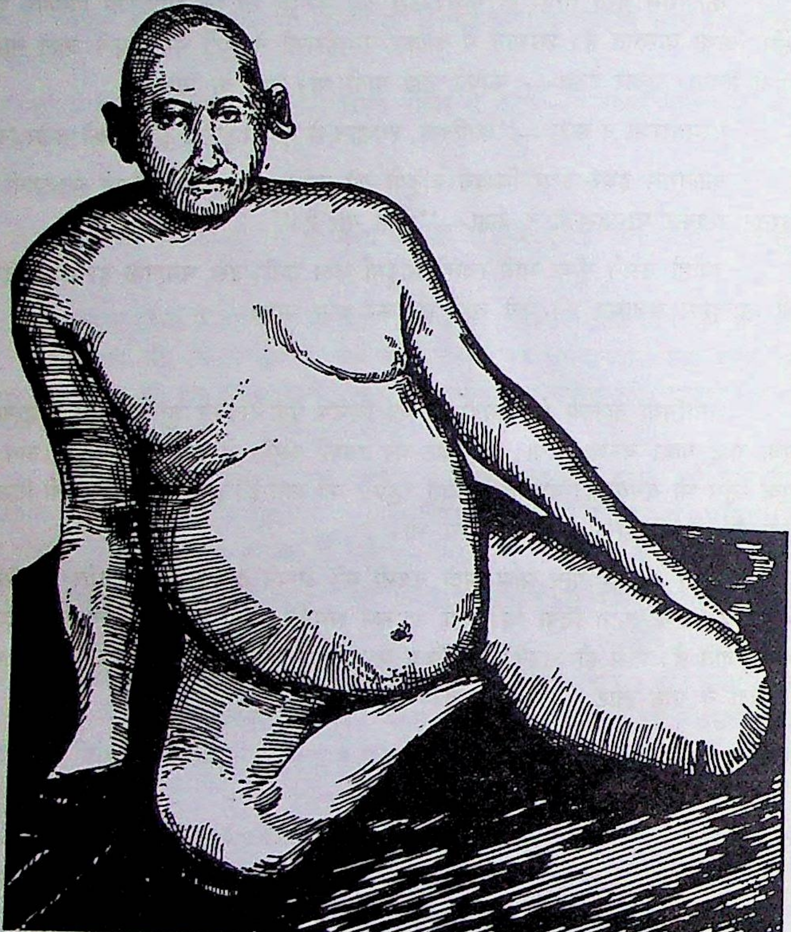

अवधूत अमृतनाथ

अवधूत अमृतनाथ

अपने पूर्वपुरुषों की जन्मभूमि छोड़कर चेतनराम ने बऊ (सीकर-राजस्थान) में बसने का निश्चय किया। बिसाऊ में लगान अधिक है और पानी आवश्यकता से कम प्राप्त होती है। परिवार के लोगों ने उनके इस निश्चय का विरोध नहीं किया। केवल चेतनराम की पत्नी उदास हो गयी। बिसाऊ में सभी परिचित हैं। सुख-दुःख में काम आते हैं। अब नयी जगह जाकर नये सिरे से परिचय प्राप्त करना होगा। पता नहीं, वहाँ के लोग किस स्वभाव के होंगे।

सारा सामान लाद देने के पश्चात् खाली गाड़ी पर चेतनराम का परिवार सवार हुआ। तीन साल के बालक यशराम को गोद में उठाकर जब चेतनराम बैलगाड़ी पर बैठाने लगे तब वह जिद्द कर बैठा—"मैं पैदल चलूँगा। गाड़ी पर नहीं बैठूँगा।"

बालक की जिद्द से नाराज होकर चेतनराम ने कहा—"थक जायगा बेटा। चल गाड़ी पर माँ के पास बैठ जा।"

लेकिन लड़का नहीं माना। बाप की गोद से छिटककर दूर भाग गया। चेतनराम ने सोचा— चलने दो। थक जायगा तो खुद ही चला आयेगा। बऊ यहाँ थोड़े ही है। लम्बा सफर है। वहाँ पहुँचते-पहुँचते दोपहर ढल जायगी।

यशराम गाड़ी के आगे-आगे चल रहा था। धीरे-धीरे गाड़ी और यशराम में अन्तर बढ़ता गया। अचानक चेतनराम ने देखा— लड़का बहुत दूर निकल गया है। जैसे उसे पंख लग गया हो। गाड़ीवान से बोले—"जरा तेज चलाओ।"

थोड़ी देर तक यशराम काले धब्बे की तरह दिखाई देता रहा, फिर वह भी लुप्त हो गया। पता नहीं, किधर गया। बिसाऊ से बऊ सत्तर किलोमीटर है। तेज रफ्तार से गाड़ी चलाने पर भी शाम के कुछ पहले लोग बऊ पहुँचे। गाड़ी से उतरकर चेतनराम की निगाहें यशराम को खोजने लगीं। लोगों ने बताया कि वह तो यहाँ तीसरे पहर आ गया था।

यह बात सुनकर चेतनराम ने लड़के की जिद्द की बातें बतायीं। लोग लड़के का साहस देखकर चकित रह गये। उसके इस साहस की चर्चा गाँव भर में फैल गयी। इस बालक को देखने के लिए काफी लोग आये।

चेतनराम के पिता बिसाऊ (पिलानी) गाँव के राजस्थानी जाट थे। अब वे स्वयं बऊ (सीकर) के निवासी बन गये। यहाँ आने के कुछ दिनों बाद चेतनराम की पत्नी ने सभी से आत्मीयता स्थापित कर ली।

कुछ प्रतिभाएँ ऐसी होती हैं जिन्हें ईश्वर-प्रदत्त यौगिक-शक्ति बिना गुरु की सहायता अथवा साधना बिना किये अनायास प्राप्त हो जाती हैं। चेतनराम का पुत्र ऐसे ही भाग्यशालियों में रहा। बिसाऊ से बऊ सत्तर किलोमीटर तीन वर्ष का बालक पैदल कैसे चला आया, इस चमत्कार से लोग प्रभावित ही नहीं हुए बल्कि इसे अनूठा कार्य माना।

यशराम की एक बड़ी बहन न्योजाबाई जवानी के दिनों विधवा हो गयी थी। पति की मृत्यु के पहले से उस पर कर्ज था। खर्च बचाने के लिए यशराम उसे बऊ ले आये। बहन के यहाँ खेती होती थी। लोगों का अनुमान था कि इस बार अधिक से अधिक ६-१० मन धान होगा। लेकिन यशराम के सहयोग ने चमत्कार कर दिखाया। खेत में कुल ७० मन धान हुआ। उसे बेचकर यशराम ने बहन का सारा कर्ज चुका दिया।

इसी प्रकार एक बार यशराम खेत में पिता और भाई के साथ बैठे थे। पीने के लिए भाई मनसाराम दूर से कलश में पानी ला रहा था। अचानक कलश फूट गया और सारा पानी बह गया। राजस्थान में पानी का यों ही अकाल रहता है। पिता-भाई को प्यासा रहते देख यशराम ने मन ही मन कहा—"अगर आज रात में खेत पानी से न भरा तो मैं शरीर त्याग दूँगा।"

उस रात को चेतनराम के खेत में ही नहीं, बल्कि आसपास के खेतों में भी खूब पानी बरसा। गाँव के सभी तालाब भर गये। एक प्रकार से सोना बरस गया। सन् १८८८ ई० में उनकी माँ का देहान्त हो गया। उन दिनों यशराम की उम्र ३७ साल की थी।

एक बार अपने पिताजी के साथ यशरामजी बीकानेर आये। उनकी साधु-प्रकृति को देखकर मोतीनाथजी की शिष्य-मण्डली ने इनसे अपने साथ रहने का आग्रह किया। इस मण्डली में संत चम्पानाथ भी थे। उन्होंने यशराम की योगैश्वर्य को भाँप लिया। उन्होंने निश्चय किया कि इस युवक को अपना शिष्य बनाऊँगा।

यशराम स्वयं विरक्त स्वभाव के थे। संन्यासी के सभी गुण उनमें पहले से मौजूद थे। चम्पानाथ के प्रस्ताव को उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। एक प्रकार से वे 'नाथ-सम्प्रदाय' के अन्तर्गत साधु बन गये। इसके बाद गुरु-आज्ञा से वे देश भ्रमण के लिए निकल पड़े।

अपने भ्रमणकाल में वे कठोर-साधना करने लगे। भोजन के लिए आधा किलो नीम की पत्तियों का सेवन करते थे। बऊ में वे एक नीम के वृक्ष के नीचे रहते थे। गाँव के चौधरी को ज्ञात था कि बाबा नीम की पत्तियाँ खाते हैं। पता नहीं, उसे क्या सूझा कि उसने पेड़ कटवा दिया। यह देखकर बाबा ने कहा—"यह वृक्ष नहीं कटा,

बल्कि साधु का सिर कट गया।'' इनके मुँह से यह अभिशाप निकलने के कुछ ही घण्टे बाद चौधरी की मृत्यु हो गयी।

नाथ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद जब परम्परा के अनुसार यशराम का कनच्छेदन हुआ तब आपका नाम अमृतनाथ रखा गया।

इसी प्रकार एक बार आप फतहपुर थाने के पास से गुजर रहे थे तो थानेदार ने अकारण बेंत मारी। बाबा के मुँह से 'शाबाश' शब्द निकला और वह तुरंत पागल हो गया। यह दृश्य देखकर थाने के अन्य लोग घबरा उठे। बाबा से प्रार्थना की कि कृपया इसे ठीक कर दें। बाबा ने कहा—''इसे खूब छाछ पिलाओ, ठीक हो जायेगा।''

छाछ पिलाते ही थानेदार ठीक हो गया। बाबा स्वयं भी दही और छाछ के प्रेमी थे। छाछ पिलाकर अनेक असाध्य रोगियों का रोग दूर कर चुके थे। एक बार शाम के समय एक भक्त दस किलो छाछ लेकर आया। बाबा शाम के समय केवल दही का सेवन करते थे। उन्होंने अपने एक शिष्य से कहा—''इसका दही जमा दो।''

शिष्य ने चकित होकर कहा—''बाबा, यह दूध नहीं, छाछ है। यह कैसे जमेगा?''

बाबा ने कहा—''जैसा कहा, वैसा करो।''

शिष्य ने आज्ञा का पालन किया। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि छाछ पूरी तरह से दही बन गया है।

साधारण भक्त बाबा की यौगिक-शक्ति से प्रभावित थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि बाबा ने अवश्य ईश्वर को देखा होगा। इस सम्बन्ध में एक बार जब एक भक्त ने प्रश्न किया तो उन्होंने कहा-''ईश्वर अथवा ब्रह्म का न विशेष प्रकार का रूप है और न उसका मुख्य या निश्चित स्थान है। न वह कार्य, कर्त्ता और कारण आदि उपाधियों से युक्त है। वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, पूर्ण प्रकाश स्वरूप, शक्तिमान और अनन्त है। जगत् उसका रूप है, माया उसकी छाया है और जीव उसका अभिन्न अंश है।''

प्रश्नकर्त्ता ने पूछा-''माया जब छाया है तब तो ईश्वर उनके सहगामी होंगे?''

बाबा ने कहा-''नहीं। माया सनातन है, वह न सत् है और न असत् है। वह अनादि है, अनन्त है, क्योंकि ईश्वर अनादि और अनन्त है। इसलिए उसकी छाया-माया भी अनादि और अनन्त है। ब्रह्म के बल से माया के द्वारा जीव के आधार हेतु जगत् की सृष्टि हुई है, यह परिवर्तनशील है। सृष्टि की रचना का सूक्ष्म तत्व यह है कि ब्रह्मरूप महाकाश में भरे महाप्राण में स्पन्दन से नाद हुआ। नाद से परमाणु उत्पन्न हुए। परमाणु से सृष्टि हुई। गुणात्मक परमाणु ही सत्त्व, रज और तम है। इन्हीं गुणों से कार्य-कारण-सम्बन्ध होता है, जगत् की रचना होती है। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच भूतों के तत्त्वों से स्थूल शरीर की रचना होती है। चित्त, मन, बुद्धि और अहंकार- इन चार अन्तःकरणों, पाँच तन्मात्रा से सूक्ष्म शरीर बनता है। चित्त का स्थान हृदय है, मन का स्थान नाभि के अन्तर्गत मणिपुर चक्र है। बुद्धि अहंकार का निवास स्थान मस्तिष्क है।''

"नाथ सम्प्रदाय" के विद्वान श्री रामलाल श्रीवास्तव ने बंगला, अंग्रेजी, मराठी आदि विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित ग्रन्थों से 'नाथ-सम्प्रदाय' पर विस्तार से प्रकाश डाला है। यद्यपि आपके ग्रंथ में अनेक तथ्य हैं, पर अनेक विवादास्पद घटनाएँ भी हैं जिसे विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है। बौद्ध-तंत्र का काफी प्रभाव नाथ-सम्प्रदाय पर पड़ा है। कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि कापालिक साधना का भी प्रभाव पर्याप्त रूप में अघोर-तंत्र पर पड़ा है। जहाँ तक दर्शन और साधना का प्रश्न है, उस परम्परा का पालन बीसवीं शताब्दी के अनेक संतों पर भी पड़ा है।

+ \+ \+ \+

बाबा के एक शिष्य थे— नारायण गिरि। बिलोचिस्तान में हिन्दुओं का पवित्र स्थल हिंगलाज तीर्थ है। देश के बँटवारे के पहले अधिकांश लोग यहाँ स्थित देवी मूर्ति का दर्शन करने जाते थे। इस ग्रंथमाला के पाठकों को ज्ञात होगा कि इस स्थान पर ८०० से १००० वर्ष के योगी रहते थे जो केवल साधकों को दर्शन देते रहे। इस स्थान का दर्शन करने के लिए नारायण गिरि ने बाबा से अनुमति माँगी।

बाबा ने कहा—"जाने को तुम जा सकते हो, पर दर्शन की तीव्र इच्छा हो तो यहीं देवी का दर्शन कर सकते हो।"

यह बात सुनकर नारायण ने कहा—"इससे बढ़कर कौन-सा सौभाग्य होगा?"

आधी रात के समय बाबा ने नारायण गिरि से कहा—"देवी आ रही हैं। उनका चरण-स्पर्श करना।"

थोड़ी देर में एक प्रकाश हुआ और उस प्रकाश के भीतर से सिंह पर सवार देवी मूर्ति आविर्भूत हुई। इस प्रकार अमृतनाथ ने अपने शिष्य की मनोकामना पूरी की।

अमृतनाथ में एक विशेषता थी। वे एक स्थान पर जमकर नहीं रहते थे। हमेशा भ्रमण करते रहते थे। अपने निवास स्थान से दो रोटी और करील का साग खाकर रवाना हो जाते और चौबीस घंटे में १५६ किलोमीटर की यात्रा करने के बाद वापस आ जाते थे।

इसी भ्रमण काल में एक बार रामगढ़ कस्बे से गुजरते समय एक खेत में गाजर देखा तो किसान से कहा कि बच्चा, कुछ गाजर खाने की इच्छा है। किसान अपने कार्य में व्यस्त था। उसने कहा—"महाराज, खेत से जितनी इच्छा हो, खा लें।"

महाराज को काफी भूख लगी थी। तीन क्यारी गाजर उखाड़कर खा गये। यह देखकर किसान की आँखें फटी-फटी-सी रह गयीं। उसकी रोनी सूरत देखकर बाबा उसकी मनःस्थिति समझ गये। उन्होंने कहा—"देख, तेरा खेत तो पहले की तरह हरा-भरा है।"

अब जब किसान ने अपने खेत की ओर देखा तो चकित रह गया। तुरंत उसने महाराज के चरण पकड़ लिए।

सन् १६१२ में महाराज ने निश्चय किया कि अब वे भ्रमण नहीं करेंगे। कहीं

स्थान बनाकर स्थायी रूप से रहेंगे। इसके साथ ही एक विचित्र आदत भी उन्होंने अपनायी। अब अपना सारा कार्य लेटकर करने लगे। अपने अनुभवों के आधार पर शिष्यों को सहज-योग के बारे में समझाते रहे। सहज-योग के बारे में उनका कथन है—"मूलाधार चक्र शरीर में स्थित व्यर्थ मल को शरीर के बाहर निकालता है। इसका आकार हाथी के सूँड़ के समान है। आधार-चक्र के अशुद्ध रहने पर सारा शरीर दोषयुक्त रहता है। स्वाधिष्ठान-चक्र लिंगस्थानीय है। यह मूत्र-विसर्जन में सहायता करता है। मूलाधार में ४० मिनट तक और स्वाधिष्ठान में ८० मिनट तक वृत्ति संयमित करने से धैर्य, विवेक और बल की प्राप्ति होती है। मणिपुर चक्र से सारे शरीर को पोषण मिलता है। इसमें प्राण-अपान का मेल होता है, श्वास ऊर्ध्वमुखी हो शिखर में पहुँचता है। इस चक्र में १६० मिनट तक ध्यान करने से शान्ति, आनन्द, समता, निर्मोहता, वैराग्य, तन्मयता और एकान्तप्रियता होती है। अनाहत चक्र का स्थान हृदय है। यहाँ प्राणवायु का निवास है। इस वायु से शरीर का रक्षण और पोषण होता है। इस चक्र में ३२० मिनट तक चित्तवृत्ति एकाग्र करने से अथवा ४८०० बार श्वास लेने से निर्लोभता, प्रेम, सत्यता, समदर्शिता, अहिंसा-भावना, दया, क्षमा की प्राप्ति होती है। विशुद्ध चक्र का स्थान कण्ठ है। आज्ञाचक्र का स्थान भ्रूमध्य-त्रिकुटी है। यहाँ २०० मिनट तक ध्यान के द्वारा ३००० श्वास की आवृत्तियाँ पूरी होने पर वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं। त्रिकुटी में नेत्र स्थिर करने से मन की चंचलता मिट जाती है। बाहर-भीतर के अंग-प्रत्यंग दिखाई देने लगते हैं। आत्मतत्त्व में स्थिरता होती है। सहस्रार का स्थान मस्तिष्क है। यही समस्त ज्ञान की उत्पत्ति का स्थान है। इसमें सद्‌गुरु रहते हैं, यही ब्रह्मस्थान, अमरलोक, भ्रमरगुफा कहलाता है। महाशक्ति कुण्डलिनी का प्रवेश इसी में होता है। यहीं से अद्वैतानुभूति होती है। यहीं से अमृत झरता है। इस स्थान पर वृत्ति का स्थिर होना सहज समाधि है।"

जो लोग योग के लिए व्याकुल रहते हैं, उन्हें चाहिए योग की परिभाषा का ज्ञान वे योग्य गुरु से लें। बाबा अमृतनाथ ने सहज-समाधि के बारे में जो प्रवचन दिया, वह अन्य योगियों द्वारा वर्णित परिभाषा से अपेक्षाकृत सरल है। आज योग-शिक्षा देनेवाले अधकचरे ज्ञानी योग के नाम पर केवल पाखण्ड करते हैं। इनसे बचना चाहिए।

सन् १६१३ में बाबा ने निश्चय किया कि अब वे प्रकृति प्रदत्त मधु का सेवन करेंगे। अन्न या अन्य कोई सामग्री नहीं खायेंगे। लगातार दस माह तक वे नित्य एक किलो मधु का सेवन करते रहे। इसके बाद दो माह तक एक किलो नीबू का रस पीते रहे। इसके बाद चार माह तक प्रत्येक घंटा एक किलो दूध पीने लगे यानी चौबीस घंटे में चौबीस किलो दूध। इन दिनों जितने रोगी आपके निकट आते रहे, सभी को उपचार बताकर स्वस्थ करते रहे।

जीवन का अंतिम काल आया जानकर अमृतनाथजी ने अपने शिष्य ज्योतिनाथ को अपना उत्तराधिकारी बनाया। सन् १६१६ में आपने शरीर त्याग दिया। एक वर्ष बाद फतहपुर शेखावाटी में बाबा का समाधि-मंदिर बनाया गया जिसका दर्शन करने के लिए भक्त तथा नाथ-सम्प्रदाय के संत बराबर आते हैं।

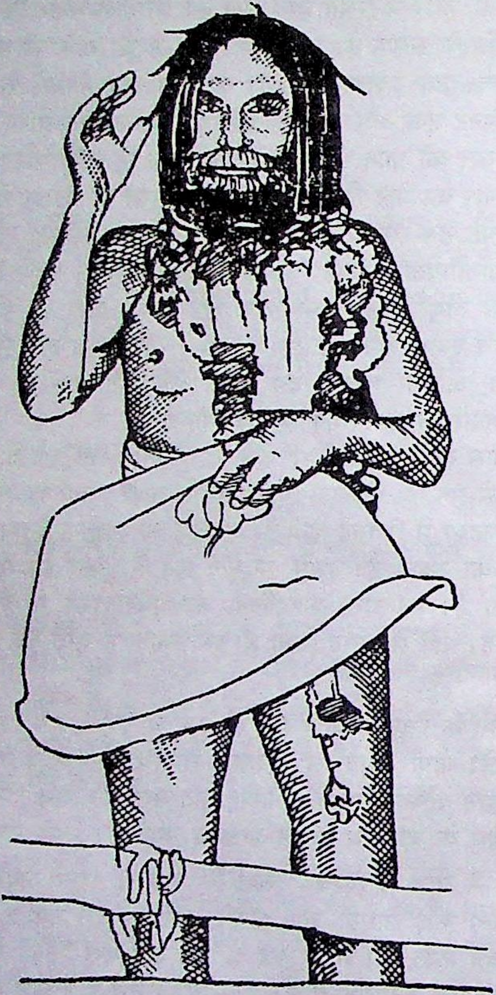

देवराहा बाबा

देवराहा बाबा

घर में बाहर से अनेक मेहमान आये थे। इन लोगों को सैर कराने का कार्यक्रम बनाया गया। मेहमानों में से किसी ने कहा—"नगर के दर्शनीय स्थानों को हम देख चुके हैं। उस पार रामनगर चलिये।"

अपने मेहमानों के साथ सपरिवार गुलाबदास वर्मा दशाश्वमेधघाट आये और नाव द्वारा रामनगर की ओर रवाना हुए। रामनगर पहुँचने के पूर्व उस पार एक मचान पर देवराहा बाबा बैठे दिखाई दिये। मचान के सामने अनेक लोग बैठे हुए थे।

सहसा गुलाबजी का विचार बदला। उन्होंने सभी लोगों से कहा—"चलिये, पहले सन्तजी का दर्शन कर लें, फिर घूमने चलेंगे। सुना है, देवराहा बाबा सिद्ध महात्मा हैं।"

नाव किनारे रुकी। गुलाबदासजी अपने परिवार के साथ बैठे हुए लोगों के पीछे जाकर बैठे। अचानक बाबा ने इन्हें इशारे से बुलाया। गुलाबजी ने अपनी जगह पर खड़े होकर पूछा—"महाराजजी, क्या मुझे बुला रहे हैं?"

देवराहा बाबा ने कहा—"हाँ, क्या कष्ट है?"

गुलाबजी को सहसा कुछ समझ में नहीं आया। साथ आये छोटी बच्ची को गोद में उठाकर बोले— "महाराज, यह लड़की पाँच वर्ष की हो गयी है। ठीक से बोल नहीं पाती। बाकी आपकी कृपा से सब ठीक है।"

देवराहा बाबा ने मंच पर रखे फलों में से एक केला फेंकते हुए कहा—"ले, प्रसाद खिला दे। सब ठीक हो जायगा। घबराने की बात नहीं है।"

इसके बाद बाबा ने गुलाबजी के परिवार के कई सदस्यों को प्रसाद के रूप में केले दिये। बाद में उन्होंने कहा—"बच्चा, अब तुम तुरन्त घर वापस चले जाओ। रामनगर घूमने मत जाना। यहाँ रुको मत। भयंकर आँधी आनेवाली है।"

गुलाबजी ने आसमान की ओर देखा— वह धुले हुए स्लेट की तरह स्वच्छ था। आँधी आने के एक भी लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे। ब्राह्मण और संतों के प्रति गहरी आस्था रहने के कारण गुलाब ने बाबा की आज्ञा का पालन किया। वे रामनगर की सैर बिना किये नाव से घर की ओर रवाना हो गये। एक घण्टे बाद नाव दशाश्वमेधघाट

पर आकर रुकी। पूरे परिवार के साथ वे सीढ़ियों को पार करते हुए ज्योंही सड़क पर आये त्योंही प्रबल आँधी आयी। इस तूफान से काफी नुकसान हुआ। कुछ दिनों बाद लड़की की जबान ठीक हो गयी और आज तक वह सकुशल है।

ठीक इसी प्रकार की एक घटना बाबा के अनन्य भक्त रामकृष्णजी के साथ हुई थी। देवरहा बाबा जब कभी काशी आते तब वे उस पार गंगा किनारे डेरा लगाते थे। उनके अधिकांश भक्त नियमित रूप से वहाँ पहुँचते थे।

एक दिन रामकृष्णजी अपनी पुत्री तथा एक भाँजे के साथ बाबा का दर्शन करने के लिए रवाना हुए। रामकृष्णजी महाकवि रत्नाकरजी के पौत्र थे। बनारस के शिवाला मुहल्ले में रहते थे।

इन्हें देखते ही बाबा ने बेचैनी के साथ कहा—''आज क्यों चले आये। लो, प्रसाद लो और तुरंत वापस लौट जाओ।''

बाबा ऐसा आदेश क्यों दे रहे हैं, इस बात का अनुमान रामकृष्णजी नहीं लगा सके। लेकिन इतना विश्वास हो गया कि किसी खास वजह से ऐसा आदेश दे रहे हैं। इस बारे में वे कोई प्रश्न करते तब तक बाबा ने अपने एक शिष्य से कहा—''किसी नाववाले को बुला लाओ।''

नाववाले मल्लाह के आते ही बाबा ने कहा—''चौधरी, बाबू और इनके साथ आये बच्चों को लेकर तुरंत सामने घाट चले जाओ। बाबू के कहने पर भी शिवाला-घाट मत जाना। जाओ देर मत करो।''

रामकृष्णजी असमंजस की स्थिति में चलने के लिए तैयार हुए तो बाबा ने कहा—''तूफान आ रहा है। सामने घाट उतरकर वहीं ठहर जाना। जब तूफान शान्त हो जाय तब घर जाना।''

अब रामकृष्णजी को बाबा की बेचैनी समझ में आ गयी। आसमान में अंधेरा छा रहा था। मझधार पहुँचने के पूर्व तूफान पूरी गति से आ गया। उसका विकराल रूप देखकर सभी काँप उठे। रामकृष्णजी मन ही मन देवरहा बाबा का स्मरण करते हुए कहने लगे–''इससे अच्छा था, बाबा उस पार ही रोक लेते। गंगा में ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। दस गज की दूरी के आगे ताण्डव नृत्य हो रहा था। दोनों बच्चे भयभीत होकर रामकृष्णजी से लिपट गये। लेकिन रामकृष्ण को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नाव के चारों ओर का जल बिलकुल स्थिर है। तूफान का कोई प्रभाव यहाँ नहीं है।''

नाव घाट किनारे लगी। ज्योंही सभी लोग नाव से नीचे उतरे त्योंही मुँह के बल गिर पड़े। नाव को तूफान न जाने कहाँ उड़ा ले गया। रामकृष्णजी बच्चों के साथ कब तक बेहोश पड़े रहे, यह स्मरण नहीं रहा। रात के प्रथम पहर में घर लौटे। उन्हें लगा कि जैसे नया जीवन मिला है।

इन दोनों घटनाओं का जिक्र भुक्तभोगियों ने लेखक से किया था। रामकृष्णजी का देहावसान हो गया है, पर श्री गुलाबदास वर्मा आज भी जीवित हैं।

+ + + +

२१ जून, १९९० में जब बाबा ब्रह्मलीन हो गये तब तमाम पत्रों में उनके बारे में विचित्र बातें छपने लगीं। यहाँ तक कि उनकी उम्र ८०० वर्ष तक बतायी गयी। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद जब बचपन में उनका दर्शन करने गये थे तब बाबा १५० वर्ष के थे। एक भक्त चार जन्मों से उनकी सेवा करता रहा। किसी श्मशान पर बाबा ३० वर्ष, अमरकण्टक में ५० वर्ष, सरयू नदी के किनारे ९० वर्ष साधना करते रहे। नेपाल, तिब्बत, चीन तथा मानससरोवर में न जाने कितने वर्ष वे तपस्या करते रहे। दरअसल यह सब बातें उनके भक्तों द्वारा फैलायी गयी अफवाहें हैं।

हिमालय के क्षेत्र में अलक्ष्य संन्यासी भले ही दीर्घजीवी हों, पर लोकालय में रहनेवाले योगी इतनी लम्बी आयु के नहीं होते। ऐसे संतों में महात्मा तैलंग स्वामी ही २८० वर्ष तक जीवित रहे। संस्कृत में एक श्लोक में कहा गया है—

अश्वत्थामो बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः ।
कृप परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥

अर्थात् ये सातों व्यक्ति अमर हैं, ऐसी हम सबकी धारणा है। अगर यह बात सत्य है तो इन सातों में से किसी एक को महाभारत युद्ध के बाद से अब तक किसी ने देखा है? इस श्लोक का वास्तविक अर्थ यह है कि इस प्रकृति के पुरुष प्रत्येक युग में रहते हैं—

१- अश्वत्थामा— कोरे पशुबल या शारीरिक बलवाला व्यक्ति।

२- बलि— सत्य संकल्प का दानशील व्यक्ति जो सत्य के निर्वाह के लिए अपने जीवन को समर्पण करता है।

३- व्यास— ज्ञानशील व्यक्ति जिसमें त्रिलोकी ज्ञान संकलित हो और जो लोक और वेद दोनों के बीच समन्वय करता हो।

४- हनुमान— वह व्यक्ति जो सेवा धर्म को ही जीवन का मूल मानता है और सेव्य की भक्ति ही जिसका प्राण है। यह दास्य भाव का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

५- विभीषण— यह घर का भेद बाहर प्रकट करने वाले स्वभाव का द्योतक है।

६- परशुराम— यह क्षात्र तेज का उदाहरण है, जैसे ब्राह्म-धर्म के लिए व्यास, ऐसे ही क्षात्रधर्म के लिए परशुराम।

७- कृपाचार्य— यह एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण है जो पढ़ा-लिखा बहुत हो, पर गुण कुछ भी न हो।[1]

देवराहा बाबा के बारे में विस्तार से सारी बातें प्रकाशित करने के बाद समाचार पत्रों ने उनका जीवन परिचय नहीं छापा। कहाँ के निवासी थे? किसके पुत्र थे? कौन गुरु था? केवल एक पत्र ने लिखा कि देवरिया में रहने के कारण उनका नाम देवरिया बाबा की जगह देवराहा बाबा हो गया। ऐसा अनुमान किया जाता है। लेकिन यह बात गलत है।

+ + + +

देवराहा बाबा का जन्म बस्ती जिले के उमरिया गाँव में हुआ था। आपके पिता पं० रामयश गाँव के दबंग आदमी थे। पं० रामयशजी के तीन पुत्र थे— सर्वश्री सूर्यबली, देवकली और जनार्दन दत्त। ब्राह्मण परिवार होने के कारण घर पर संस्कृत का सामान्य पठन-पाठन होता रहा। सबसे छोटे पुत्र को आगे पढ़ने की इच्छा थी, पर गाँव में कोई साधन नहीं था। दूसरी ओर रामयशजी चाहते थे कि सभी बच्चे खेती पर अधिक ध्यान दें। गाँव में यादवों का दबदबा था और उनकी संख्या अधिक थी, पर सभी पं० रामयश से दबते थे।

इसी बीच सन् १९२६ में जनार्दन दत्त घर से भागकर काशी चले गये। उन्हें यह मालूम हो गया था कि काशी में संस्कृत की शिक्षा दी जाती है। सेठों द्वारा संचालित पाठशालाओं में निवास के अलावा मुफ्त में भोजन दिया जाता है। यहाँ आकर वे व्याकरण पढ़ने लगे।

आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी ने अपने एक पत्र में लिखा है—"सन् १९२६ में देवराहा बाबा १२-१३ वर्ष की अवस्था में, देवरिया (बस्ती) जिले के किसी गाँव से व्याकरण पढ़ने के लिए काशी आये थे। यहाँ भदैनी में पंडित गयाप्रसाद ज्योतिषी के पास रहते थे। व्याकरण कहीं और जगह पढ़ते थे। सन् १९३० ई० के दिनों हरिद्वार के श्री निरंजन देव सरस्वती उन्हें अपने साथ ले गये। उसके बहुत दिनों बाद देवरिया जिले के तुर्तीपार रेलवे स्टेशन के पास सरयू नदी के किनारे मचान बनवाकर रहने लगे। मुझे वे भलीभाँति जानते थे। पंडित विजयानन्द त्रिपाठी के पूरे परिवार को भी। उन्होंने ८०० वर्ष की कोई घटना नहीं सुनाई। अभी फरवरी-मार्च (१९९०) को एक सज्जन रतन[2] को साथ लेकर उनसे मिलने मथुरा जा रहे थे। मैंने उनसे कहा कि जाकर उनसे कहना ये (रतन) सीताराम चतुर्वेदी के पुत्र हैं। जब यह परिचय उन्हें प्राप्त हुआ तब वे दो घण्टे तक इन लोगों से बातें करते रहें। मेरा, मेरे ससुराल तथा पं० विजयानन्द त्रिपाठी के परिवार के बारे में जानकारी प्राप्त करते रहे।"

---

[1] भारत सावित्री, भाग २, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल।

[2] पं० सीताराम चतुर्वेदी के चौथे पुत्र प्रियशील चतुर्वेदी।

चतुर्वेदी के पत्र से कई बातें साफ हो जाती हैं। बाबा ८०० वर्ष के नहीं थे। बाबा सन् १६२६ में जब १२-१३ वर्ष के थे तब काशी आये थे। इस प्रकार उनका जन्म सन् १६१३-१४ माना जा सकता है। पं० सीताराम चतुर्वेदी उम्र में बाबा से ७-८ वर्ष बड़े हैं। सन् १६३० में वे स्वामी निरंजन देव सरस्वती के साथ हरिद्वार चले गये। अब यह बताना कठिन है कि उक्त स्वामीजी आपके गुरु थे या अन्य कोई संत या योगीपुरुष था।

कहा जाता है कि पंडित रामयशजी हरिद्वार के कुंभ मेला में स्नान करने गये थे। वहीं उनकी मुलाकात जनार्दन दत्त से हो गयी। उस समय तक वे केवल ब्रह्मचारी थे। पिता का आतंक मन में था। चुपचाप पिता के साथ घर चल पड़े। अयोध्या आकर पंडित रामयश श्रीराम मंदिर दर्शन करने गये। दर्शन करने के पश्चात् न जाने कैसे उनका निधन हो गया। जनार्दन दत्त बेहद घबरा गया। पास में रकम नहीं थी ताकि दाह-संस्कार करते। पिताजी की झोली में जितनी रकम थी, उसी के सहारे गाँव आकर उन्होंने पिता के निधन का समाचार दिया।

सभी लोग अयोध्या आये। यहीं पर पंडित रामयश का दाह-संस्कार करने के बाद लोग गाँव वापस गये। रामयश के निधन के बाद यादवों का साहस बढ़ गया। दुबे और यादव की लड़ाई में चार मौतें हुईं। काफी लोग घायल हुए। कहा जाता है कि जनार्दन दत्त पर भी मुकदमा कायम हुआ था। वे गाँव से भागकर देवरा जंगल में जाकर छिप गये। बस्ती जिले में एक प्रकार का छोटा पौधा होता है जिसे 'देवरा' कहा जाता है। उस जंगल में भोर के वक्त गाँव की महिलाएँ प्रात:क्रिया करने जातीं तो एक व्यक्ति को उकड़ूँ बैठा देखतीं जिसके सिर तथा दाढ़ी के बाल बढ़ गये थे। स्थानीय महिलाओं द्वारा प्रचारित हो गया कि देवरा जंगल में कोई देवरा बाबा हैं। इस प्रकार आपका नाम देवराहा बाबा पड़ा।

यहाँ से आप कुछ दिनों बाद हरिद्वार अपने गुरु के पास चले गये। कई वर्षों के बाद देवरिया जिले के मइल गाँव में सरयू किनारे आकर रहने लगे। आपके बारे में कहा जाता है कि शरीर पर वस्त्र धारण नहीं करते थे। श्रद्धालुओं के आगमन पर लंगोटी पहन लेते थे। सर्वदा मचान पर रहते थे। जब कभी इच्छा होती तब काशी, मथुरा, वृन्दावन, झूँसी और अयोध्या चले जाते थे। यह भी कहा जाता है कि आपको वेद, पुराण, गीता, स्मृति, उपनिषद, रामायण का ज्ञान था। विदेशियों से उनकी भाषा में बातें करते थे।

+ \+ \+ \+

देवराहा बाबा के पूर्व जीवन में जो भी घटनाएँ हुई हों, पर इसमें संदेह नहीं कि वे योगीपुरुष थे। अपनी साधना के माध्यम से एषणा-शक्ति प्राप्त कर चुके थे। सिद्ध योगी ही विभूति का प्रदर्शन करने में सक्षम होते हैं। सामान्य संत विद्वान, भक्त और ज्ञानी जरूर होते हैं, पर योगी नहीं।

बिहार के एक भूतपूर्व मंत्री थे श्री ज्ञानेश्वर प्रसाद। १७ जून, सन् १९६६ को उनकी लड़की का विवाह होनेवाला था। एक मंत्री की लड़की का विवाह और वह भी बिहार की राजधानी पटना में सम्पन्न होगा। फलस्वरूप काफी जोरशोर के साथ तैयारियाँ हो रही थीं।

१२ जून को तिलक भेजना था। उस दिन ज्ञानेश्वर प्रसाद बिहार के राजस्व मंत्री वीरचन्द्र पटेल से इस बारे में परामर्श कर रहे थे। बातचीत के सिलसिले में सहसा वीरचन्द्र ने पूछा—"सब तो ठीक है, पर एक बात यह बताइये कि इस विवाह के सम्बन्ध में देवरहा बाबा से आशीर्वाद ले लिया था न?"

वीरचन्द्र पटेल स्वयं बाबा के भक्त थे और बाबू ज्ञानेश्वर प्रसाद तो उन्हें ईश्वर समझते थे। उन्होंने उत्तर दिया—"प्रत्यक्ष रूप से मैंने उनसे आशीर्वाद प्राप्त नहीं किया है, पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनकी कृपा से मैं वंचित नहीं रहूँगा।"

इस जवाब से श्री पटेल को संतोष नहीं हुआ। उनका दृढ़ विश्वास था कि किसी भी शुभकार्य में सबसे पहले गुरुदेव का आशीर्वाद लेना चाहिए। प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने कुछ नहीं कहा, पर मन में खटका उत्पन्न हो गया था। तिलक भेजने के बारे में बातचीत करने के बाद वे वापस चले गये।

उसी दिन दोपहर को समाचार आया कि रांची से लौटते समय खगड़िया में दूल्हा भयंकर रूप से आहत हो गया है। पटना के अस्पताल में लोग उसे ले आये हैं। डाक्टरों का कहना है कि शायद पेट में अपेण्डिसाइटिस है।

इस समाचार को सुनते ही लड़कीवालों के [illegible] मातम छा गया। लड़की की माँ तुरन्त अस्पताल चली गयी। घर में आशंका और अशुभ की कल्पना होने लगी।

अस्पताल के डॉक्टरों ने कहा—"केस जरूर संगीन है, पर आपरेशन की जरूरत शायद नहीं होगी।"

इस आश्वासन के आधार पर शादी की तैयारियाँ चलने लगीं। सभी लोग ऊहापोह की स्थिति में थे। इधर १४ जून तक लड़के की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ था। ज्ञानेश्वर प्रसाद यह समझ नहीं पा रहे थे कि ऐसी हालत में क्या किया जाय। एक सहयोगी मंत्री की इस स्थिति से मुख्यमंत्री भी चिन्तित थे।

१४ तारीख को नाना प्रकार की चिन्ताओं के बीच उन्हें वीरचन्द्र पटेल की एक बात याद आ गयी। उन्होंने महसूस किया कि श्री पटेल की चेतावनी में दैवी आदेश था। शायद इसीलिए उन पर यह आफत आ गयी है।

मन में यह विचार उत्पन्न होते ही वे देवरहा बाबा के चित्र के सामने बैठकर आकुल भाव से प्रार्थना करने लगे। मन में उन्हें इस बात का विश्वास हो गया कि इस मुसीबत से बाबा बचा सकते हैं।

शाम के समय देवराहा बाबा के अनन्य भक्त राजेन्द्र किशोर से उनकी मुलाकात हुई। ज्ञानेश्वर प्रसाद ने अपना दुखड़ा रोते हुए उनसे कहा—"सारी बातों से आप परिचित हैं। कृपया इस मुसीबत से छुटकारा दिलाने का कोई उपाय करें। बाबा ही मुझे परित्राण दे सकते हैं। उनसे प्रार्थना कीजिए।"

इस आग्रह को सुनने के बाद राजेन्द्र किशोर अपनी आँखें बंदकर ध्यान लगाने लगे। राजेन्द्र बाबू बाबा के प्रिय भक्त हैं। उनसे दीक्षा ले चुके हैं। देवराहा बाबा द्वारा दिये गये मंत्र का प्रभाव इनके जीवन में फलीभूत हुआ है।

आँखें खोलते हुए राजेन्द्र किशोर ने कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। बाबा की कृपा से आपकी मुसीबत दूर हो जायेगी।"

बात सन् १९६४ ई० की है जब बाबा पटना आये थे। उन दिनों बाबा की सेवा में राजेन्द्र किशोर लगे हुए थे। ठीक इन्हीं दिनों इनकी पत्नी विमला देवी अचानक अस्वस्थ हो गयीं। डॉक्टरों की समझ में नहीं आया कि कौन-सी बीमारी है। इस कारण घर के लोग चिन्तित हो उठे।

इस हालत में वे बाबा का दर्शन करने गयीं। इन्हें देखते ही बाबा ने पूछा—"क्या बात है बेटी?"

विमला देवी ने कहा—"आजकल अस्वस्थ हूँ। आप आये हैं, सुनकर दर्शन करने चली आयी।"

बाबा ने कहा—"तुम्हें कुछ नहीं हुआ है। तुम तो भलीचंगी हो। लो, यह प्रसाद खा लो।"

प्रसाद खाने के कुछ देर बाद विमला देवी ने महसूस किया कि जैसे सारा अवसाद दूर हो गया।

राजेन्द्र किशोर की पत्नी की इस घटना से पटना के अनेक लोग परिचित थे। लोगों के मन में यह बात बैठ गयी थी कि राजेन्द्र बाबू पर बाबा की असीम कृपा है।

इधर डॉक्टरों ने निर्णय लिया कि ज्ञानेश्वर बाबू के दामाद का आपरेशन करना पड़ेगा। यह बात सुनकर कन्या पक्ष के लोग चिन्तित हो उठे। समय कम है, निमंत्रण कार्ड बँट चुके हैं, सारी तैयारियाँ हो गयी हैं, अब क्या होगा? विवाह की तिथि टालने का अर्थ सारा आयोजन चौपट हो जायगा। इस वर्ष का यही आखिरी लगन है। आपरेशन के बाद पता नहीं, कब तक लड़का स्वस्थ हो।

१४ जून की रात को लड़के का आपरेशन सकुशल हो गया। १७ जून को बारात आयी और विवाह बिना किसी बाधा के हो गया।

+ \+ \+ \+

सारन जिले के गुठनी थाने के इंचार्ज थे— श्री सत्यनारायण सिंह। वे पिछले कई वर्षों से अपनी लड़की के विवाह के लिए परेशान थे। प्रत्येक रिश्ते में बाधा आ जाती थी। यह सन् १९५६ की घटना है।

उनकी पत्नी ने एक दिन सुझाव दिया कि किसी सन्त से आशीर्वाद लिया जाय। शायद किसी ग्रहदोष के कारण विवाह नहीं हो पा रहा है। लड़की मंगली रहती तो एक बात थी। यह दोष भी नहीं है।

सिंहजी देवरहा बाबा का नाम सुन चुके थे। अन्य किसी सन्त के बारे में उन्हें जानकारी नहीं थी। देवरहा बाबा पड़ोस में थे। पत्नी की बात जम गयी। उन्होंने सोचा— इसी बहाने बाबा की योगविभूति का अन्दाजा लग जायगा। गुठनी से लार रोड केवल १४ मील दूर है।

एक दिन वे सपत्नीक देवरहा बाबा के आश्रम की ओर रवाना हो गये। जाड़े का मौसम था। आश्रम तक पहुँचने में १२ बज गये। आश्रम के सामने काफी भीड़ थी। यहाँ पुलिसिया रोब नहीं चलेगा, इसे वे समझ गये थे। भीड़ के पीछे वे बैठ गये। बाबा एक-एक कर लोगों को बुलाते, उनकी समस्या सुनते और प्रसाद देकर निराकरण करते रहे। सत्यनारायण सिंह के बाद आये लोगों की पुकार हुई और वे लोग चले गये, पर अभी तक इनकी पुकार नहीं हुई। यह देखकर वे मन ही मन क्षुब्ध होते रहे। इस दरबार में उनके क्रोध का कोई मूल्य नहीं है, इसका अनुभव उन्हें प्रतिक्षण हो रहा था।

धीरे-धीरे दिन ढलता गया। उन्हें इस बात की चिन्ता सताने लगी कि अभी यहाँ से वापस जाना है। पश्चिमी बिहार का क्षेत्र कैसा है, उन्हें इसकी जानकारी थी। साथ में पत्नी तथा बेटी भी है। इधर के डाकू सामान्य बात पर हत्या करने से नहीं चूकते। केवल संतोष इस बात का था कि साथ में पिस्तौल है और काफी कारतूस भी।

अनेक लोगों के जाने के बाद सत्यनारायण सिंह की पुकार हुई। एक तो ठाकुर, दूसरे दरोगा, क्रोध से अपना पिस्तौल लगड़ने लगे। बाबा के पास जाते ही वे चौंक उठे।

बाबा कह रहे थे—''तू अपनी लड़की के विवाह के लिए आशीर्वाद माँगने आया है? मेरा आशीर्वाद है तेरी लड़की का विवाह जल्द होगा। तू जहाँ चाहता है, वहीं होगा।''

बाबा की बातें सुनकर सत्यनारायण सिंह ही नहीं, बल्कि उनकी पत्नी भी चौंक उठी। अभी तक हमने अपने आने का उद्देश्य नहीं बताया, फिर बाबा को कैसे जानकारी हो गयी? बाबा की बातें सुनकर दरोगा का क्रोध पानी-पानी हो गया। पति-पत्नी और बेटी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।

सत्यनारायण सिंह कोई सवाल करते, उसके पहले ही बाबा ने कहा—''क्यों बेटा, तेरा पिस्तौल असली है या नकली?''

सत्यनारायण सिंह ने आत्मविश्वास के साथ कहा—"मेरा पिस्तौल असली है, बाबा। हम नकली पिस्तौल क्यों रखेंगे?"

"तब तो तेरे पास गोलियाँ भी होंगी?"

"जी हाँ।"

बाबा ने मुस्कराते हुए कहा—"जरा पिस्तौल चलाकर दिखा। देखूँ, कैसी आवाज होती है?"

बाबा के मनोरंजन के लिए दरोगा ने हवा में पिस्तौल दागी। एक-दो बार नहीं, कई बार ट्रिगर दबाने पर भी पिस्तौल से गोली नहीं छूटी। शर्म से उनका चेहरा लाल हो उठा। जीवन में ऐसी घटना कभी नहीं हुई थी। कई बार पिस्तौल को उलट-पुलटकर देखने के बाद उन्हें कोई खराबी नजर नहीं आयी।

बाबा ने हँसकर कहा—"इसी पिस्तौल के भरोसे तू यहाँ चला आया। यह इलाका कैसा है, इसे तू अच्छी तरह जानता है। ऐसी पिस्तौल से कैसे मुकाबला करेगा?"

सत्यनारायण सिंह पसीने-पसीने हो गये। सहसा उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि कहीं बाबा ने कोई जादू तो नहीं कर दिया? यह बात मन में आते ही वे व्याकुल भाव से बोले—"महाराज, मेरी रक्षा कीजिए। आपकी लीला को मैं समझ गया। दया करिये वर्ना मैं बेमौत मर जाऊँगा।"

सत्यनारायण सिंह की परेशानी देखकर बाबा ने हँसते हुए कहा—"आदमी को अपनी शक्ति पर अभिमान नहीं करना चाहिए। ठीक है, अब तुझे घबराने की जरूरत नहीं है। पिस्तौल चला। सब ठीक है।"

देवराहा बाबा से आशीर्वाद पाने के पश्चात् दरोगा ने पिस्तौल का ट्रिगर दबाया और तेज आवाज के साथ गोली दग गयी। यह दृश्य देखकर उपस्थित सभी लोग दंग रह गये। देवराहा बाबा की अलौकिक शक्ति ने कमाल कर दिया।

प्रसन्न मन से दरोगा साहब सपत्नीक चलने के पहले बाबा को अंतिम प्रणाम करते हुए बोले—"आपकी कृपा बनी रहे।"

दरोगा साहब जहाँ चाहते थे, वहीं उनकी पुत्री का विवाह हो गया।

+ \+ \+ \+

अपने प्रवचनों में देवराहा बाबा नवयुवकों तथा नवयुवतियों से कहा करते थे—माता को जानकी और पिता को राम के रूप में समझना चाहिए। जन्म देनेवाले माता-पिता ही देवता हैं। इनकी सेवा से देव-सेवा होती है। तुम लोगों को आमिष भोजन करना चाहिए। इससे सात्त्विक प्रवृत्ति मन में जन्म लेती है। तामसिक भोजन सभी रोगों का मूल है। इससे बचना चाहिए।

इलाहाबाद निवासी वीरेश्वर मुखर्जी तथा उनकी पत्नी बाबा के एकनिष्ठ भक्त थे। बाबा जब इलाहाबाद आते तब दोनों ही व्यक्ति नियमित रूप से दर्शन करने जाते थे।

वीरेश्वर मुखर्जी के यहाँ मोटर मरम्मत करने का कारखाना है। लोहा-लक्कड़ के कार्य में एक प्रकार के रसायन का उपयोग होता है जो तेज जहर होता है। उसे खाने को कौन कहे अगर कटे स्थान पर रसायन छू जाय तो आदमी को बचाना मुश्किल हो जाता है। कारखाने के सभी लोगों को इस बात की चेतावनी दे दी गयी थी।

इस चेतावनी के बाद भी होनी होकर रही। मुखर्जी बाबू के ड्राइवर का भाई जिसका नाम टुन्नी था, पता नहीं क्या सोचकर उसने एक दिन इस रसायन को चखा और कड़वा लगने पर थूकने लगा। मुखर्जी बाबू की पत्नी खिड़की से बाहर झाँक रही थीं। सहसा उनकी नजर टुन्नी पर पड़ी। यह दृश्य देखते ही वे ऊपर से चीखती हुईं नीचे की ओर दौड़ीं।

इधर तेज विष अपना प्रभाव जमाने लगा था। कारखाने में हलचल मच गयी। टुन्नी की आँखें उलट गयीं। वह बेहोश हो गया। उस वक्त सभी लोग हतप्रभ रह गये। उपस्थित कारीगर तुरंत अस्पताल ले जाने की तैयारी करने लगे।

तभी मुखर्जी बाबू की पत्नी को याद आया कि देवरहा बाबा का प्रसाद और अमृत की बूटी घर पर है। अस्पताल ले जाने के पहले इसके मुँह में डाल दूँ। संभवतः बाबा की कृपा से विष की प्रतिक्रिया में कमी आ जाय। वे तेजी से घर के भीतर गयीं। बतासा तथा अमृत बूटी ले आयीं। जबरन मुँह खोलकर उसके मुँह में देकर पानी डाल दिया गया।

इस प्रसाद तथा अमृत बूटी ने अपना चमत्कार दिखाया। टुन्नी ने आँखें खोलकर चारों ओर देखा और तब धीरे से उठ बैठा। लेकिन विष ने अपना चिह्न उसकी जीभ पर दाग के रूप में हमेशा के लिए रख दिया था।

इसी प्रकार की अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ बाबा के भक्तों के जीवन में हुई हैं।

देवरहा बाबा का प्रचार अधिक हो जाने के कारण कुछ अवांछनीय तत्त्व आश्रम में जम गये थे जो सामान्य लोगों को बाबा के पास जाने नहीं देते थे। उसके पहले ही परिचय आदि पूछकर केवल धनिकों को उनके पास भेजते थे और उनसे रकम वसूल करते थे।

धीरे-धीरे बाबा को इस बात की जानकारी हो गयी और वे हमेशा के लिए लार रोड छोड़कर मथुरा में आकर रहने लगे। यहीं २१ जून, सन् १९९० को उन्होंने जल-समाधि ले ली।

❑❑

अध्यात्मपरक साहित्य

महामानव महावीर	डॉ॰ गुणवन्त शाह
करुणामूर्ति बुद्ध	डॉ॰ गुणवन्त शाह
मनीषी की लोकयात्रा म॰ म॰ पं॰ गोपीनाथ कविराज का जीवन-दर्शन	डॉ॰ भगवतीप्रसाद सिंह
साधुदर्शन एवं सत्प्रसंग भाग-१-२	पं॰ गोपीनाथ कविराज
साधुदर्शन एवं सत्प्रसंग भाग-३	पं॰ गोपीनाथ कविराज
सूर्य-विज्ञान प्रणेता योगिराजाधिराज स्वामी विशुद्धानंद परमहंसदेव : जीवन और दर्शन	नंदलाल गुप्त
ज्ञानगंज	पं॰ गोपीनाथ कविराज
योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी	सत्यचरण लाहिड़ी
योग एवं एक गृहस्थ योगी : योगिराज सत्यचरण लाहिड़ी (प्रपौत्र महायोगी लाहिड़ी महाशय)	शिवनारायण लाल
तैलंग स्वामी	विश्वनाथ मुखर्जी
प्रकाशपथ का यात्री	डॉ॰ भानुकुमार नायक
भारत के महान योगी १ से १० भाग	विश्वनाथ मुखर्जी
मारण पात्र (योगी, साधकों तथा त्रांत्रिकों के चमत्कार)	अरुणकुमार शर्मा
जपसूत्रम (द्वितीय खण्ड)	स्वामी श्री प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती
शक्ति का जागरण और कुण्डलिनी	पं॰ गोपीनाथ कविराज
श्रीसाधना	पं॰ गोपीनाथ कविराज
दीक्षा	पं॰ गोपीनाथ कविराज
सनातन साधना की गुप्तधारा	पं॰ गोपीनाथ कविराज
अखण्ड महायोग	पं॰ गोपीनाथ कविराज
तन्त्राचार्य गोपीनाथ कविराज और योग-तंत्र-साधना	रमेशचन्द्र अवस्थी
कृष्ण और मानव सम्बन्ध	हरीन्द्र दवे
भ्रमरगीत	करपात्रीजी महाराज
गोपी-गीपी	करपात्रीजी महाराज

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य : एक सौ रुपये